अर्हम्

आचार्यप्रवरश्रीशान्तिसूरिविरचितं

# धर्मरत्नप्रकरणम्

तपोगच्छीय-आचार्यश्रीमद्देवेन्द्रसूरिसंदब्धविस्तृतव्याख्योपेतम् ।

## द्वितीयो भागः

संपादकः सुश्रावकहर्षचन्द्रात्मजः पं. भगवानदासः

इदं पुस्तकं सुगृहीतनामधेयमुनिमहाराजगुलाबविजयजीशिष्यश्रीमन्मुनिमङ्गलविजयोपदेशलब्ध-
द्रव्यसाहाय्येन घोघाबंदरवास्तव्यश्रेष्ठिवर्य 'काळा मीठा' इत्यनेन प्रकाशितम् ।

प्रतयः ५०० विक्रम संवत् १९९२ मूल्यं रूप्यकद्वयम्

इदं पुस्तकं श्रीशारदामुद्रणालये तदधिपतिना
श्रावकहर्षचंद्रात्मजेन पण्डितभगवानदासेन मुद्रितम्.
जैनसोसाइटी नं० १५.-अमदावाद

# सम्पादकीयं निवेदनम् ।

अस्य धर्मरत्नप्रकरणस्य श्रीमदाचार्यशान्तिसूरिसंदब्धस्य तपोगच्छीयश्रीमदाचार्यदेवेन्द्रसूरिविरचितविस्तृतव्याख्योपेतस्य प्रथमभागस्य प्रकटीकरणानन्तरं द्वितीयो भागो मुद्रयित्वा प्रकाश्यते । तस्य संशोधनविषये चतस्रः प्रतय उपयुक्ता वर्तन्ते—

१–२ प्रतिद्वयमणहिल्लपुरपत्तनभाण्डागारसत्कं प्रवर्तकपदप्रतिष्ठितश्रीमत्कान्तिविजयजीमहाराजप्रशिष्यविद्वद्वर्यमुनिश्रीपुण्यविजयेन प्रेषितम् । तत्र एका प्रतिः प्राचीना प्रान्ते चाखुभक्षिताक्षरा प्रायः शुद्धा च । द्वितीया च प्राचीना सुवाच्यवर्णावल्युपेता च शुद्धप्राया च ।

३ तृतीया भावनगरसंघभाण्डागारीया प्रतिः श्रीमच्छ्राद्धवर्य 'कुंवरजीभाई आणंदजी' द्वारा प्राप्ता नवीना प्रायः शुद्धा च ।

४ चतुर्थी श्रीमन्मुनिमहाराजहंसविजयजीशास्त्रसंग्रहसत्का 'नवाब साराभाई मणिलालद्वारा लब्धा नातीव शुद्धा च ।

इत्येताश्चतस्रः प्रतीरवलम्ब्य संशोधनं कृतम्, तथापि दृष्टिदोषाद् भ्रमाद् प्रमादाद् अक्षरयोजकदोषाद् मुद्रायन्त्रदोषाद्वा याः काश्चन स्खलनाः त्रुटयो वा भवेयुः ता कृपां विधाय विद्वद्भिः परिशोधनीयाः क्षन्तव्याश्च ।

यैर्महाशयैर्हस्तलिखितप्रतीनां प्रेषणद्वारा संशोधनविषये साहाय्यं विहितं तेषामुपकारं कृतज्ञतापूर्वकं स्मृतिपथमानये ।

सुगृहीतनामधेयश्रीमन्मुनिमहाराजगुलाबविजयजीशिष्यतपोऽनुष्ठाननिरतमुनिमहाराजश्रीमङ्गलविजयोपदेशेन अस्य द्वितीयभागस्य मुद्रणे याभ्यां महाशयाभ्यां द्रव्यसाहाय्यं कृतं तयोर्नाम्नी–

२००–०–० शाह मगनलाल वेलजी लुणावाडा

१००–०–० शाह जेठालाल दोलतभाई ,,

तयोरिदं कृत्यमनुकरणीयमनुमोदनीयं च ।

सम्पादकः

# धर्मरत्नप्रकरणस्य द्वितीयभागस्य विषयानुक्रमः ।


| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
|---|---|---|
| ४२ | तृतीयं गुणवत्स्वरूपं भावश्रावकलक्षणम् | ...१५१—१ |
| ४३ | भावश्रावकस्य स्वाध्यायोद्युक्तत्वादयो पञ्च गुणाः ... ... ... | ...१५१—१ |
| ४४ पू. | तेषु स्वाध्यायकरणं प्रथमो गुणः ... | ...१५१—१ |
| | तत्र श्येनश्रेष्ठिकथा... ... | ...१५१—२ |
| ४४ उ. | करणं-तपोनियमवन्दनादिसमाचरणं द्वितीयो गुणः ... | ...१५४—१ |
| | तत्र नन्दश्रेष्ठिकथा ... ... | ...१५४—१ |
| ४५ पू. | अभ्युत्थानादिविनयस्य करणं तृतीयो गुणः | १५६—२ |
| | तत्र पुष्पसालसुतकथा ... | ...१५७—१ |
| ४५उ. | अनभिनिवेशश्चतुर्थो गुणः ... | ...१५७—२ |
| | तत्र श्रावस्तीश्रावकसमुदायकथा | ...१५८—१ |

| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
|---|---|---|
| ४६ | जिनवचनश्रद्धासंयुक्तः श्रवणानुष्ठानयोस्तीव्राभिलाषः पञ्चमो गुणः... ... | ...१५९—१ |
| | तत्र जयन्तीश्राविकाकथा ... | ...१५९—२ |
| ४७ | ऋजुव्यवहारीति चतुर्थं भावश्रावकलक्षणम् | ...१६५—१ |
| ,, | ऋजुव्यवहारस्य चतुर्धा कथनम् ... | ...१६५—१ |
| ,, | तस्मिन् प्रथमो यथार्थकथनरूपऋजुव्यवहारभेदः, तत्र कमलश्रेष्ठिकथा ... | ...१६५—२ |
| ,, | अवञ्चिकाक्रियारूपं द्वितीयं ऋजुव्यवहारलक्षणम् | १६८—१ |
| | तत्र हरिनन्दिकथा ... ... | ...१६८—२ |
| ,, | भाव्यपायप्रकाशनं तृतीयं ऋजुव्यवहारलक्षणम् | १६९—२ |
| | तत्र भद्रश्रेष्ठिकथा ... ... | ...१७०—१ |
| ,, | सद्भावतो मैत्रीभावश्चतुर्थो ऋजुव्यवहारभेदः | ...१७१—१ |

| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
|---|---|---|
| | तत्र सुमित्रकथा ... ... | ...१७१—२ |
| ४८ | विपर्यये दोषदर्शनम् ... ... | ...१७३—२ |
| ४९ | गुरुशुश्रूषक इति पञ्चमं भावश्रावकलक्षणम्. | १७४—१ |
| ५० पू. | गुरोः पर्युपासनम् ... ... | ...१७४—२ |
| | तत्र जीर्णश्रेष्ठिकथा... ... | ...१७४—२ |
| ५० उ. | गुरुसेवायामन्येषां प्रवर्तनम् ... | ...१७५—२ |
| | तत्र पद्मशेखरमहाराजकथा ... | ...१७५—२ |
| ५१ पू. | ३ गुरवे औषधभेषजप्रदानम् | ...१७७—२ |
| | तत्राभयघोषकथा ... ... | ...१७७—२ |
| ५१ उ. | ४ गुरौ बहुमानः ... ... | ...१७८—२ |
| | तत्र सम्प्रतिमहाराजनिदर्शनम् | ...१७९—१ |
| ५२ | प्रवचनकुशल इति षष्ठं भावश्रावकलक्षणम् | १८०—१ |
| ५३ पू. | १ श्रावकभूमिकाया उचितं सूत्राध्ययनम् | १८०—२ |
| | तत्र जिनदासकथा ... ... | ...१८०—२ |
| ५३ पू. | २ सूत्रार्थश्रवणम् ... ... | ...१८१—२ |
| | तत्र ऋषिभद्रपुत्रकथा ... | ...१८१—२ |

| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
|---|---|---|
| ५३ उ. | ३-४ उत्सर्गापवादविषयविभागज्ञानम् | ...१८३—१ |
| | तत्राचलपुरश्रावकसमुदायकथा | ...१८३—१ |
| ५४ पू. | ५ विधिसारे धर्मानुष्ठाने पक्षपातः | ...१८४—२ |
| | तत्र ब्रह्मसेनश्रेष्ठिकथा ... | ...१८४—२ |
| ५४ उ. | ६ देशकालानुरूपगीतार्थव्यवहारकौशलम् | १८६—२ |
| | तत्र अभयकुमारकथा ... | ...१८७—१ |
| ५५ | एवं प्रवचनकुशल इत्येतस्य भावश्रावकलक्षणस्य षड्भेदोपसंहारः, भावश्रावकस्य लिङ्गषट्कोपसंहारश्च ... ... | ...१८८—१ |
| ५६ | श्रावकस्य भावगतानि सप्तदश लिङ्गानि | ...१८८—२ |
| ५७-५९ | सप्तदशानां स्त्रीन्द्रियादिलिङ्गानां नाममात्रेण संकीर्तनम् ... ... ... | ...१८८—२ |
| ६० | १ स्त्रिया अवशवर्तित्वम् ... | ...१८९—१ |
| | तत्र काष्ठश्रेष्ठिकथा ... | ...१८९—२ |
| ६१ | २ इन्द्रियनिरोधः ... ... | ...१९१—२ |
| | तत्र विजयकुमारकथा ... | ...१९२—२ |

| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
|---|---|---|
| ६२ | ३ धनविषये लोभाभावः... ... | ...१९५—२ |
| | तत्र चारुदत्तदृष्टान्तः ... | ...१९६—१ |
| ६३ | ४ संसारमसारं ज्ञात्वा तत्र रतिर्न कर्तव्या | ...१९८—२ |
| | तत्र श्रीदत्तश्रेष्ठिदृष्टान्तः ... | ...१९८—२ |
| ६४ | ५ विषये गृद्धिस्त्याज्या ... ... | ...२००—१ |
| | तत्र जिनपालितकथा ... | ...२००—२ |
| ६५ | ६ तीव्रारम्भवर्जनम् ... ... | ...२०३—१ |
| | तत्र स्वयंभूदत्तकथा ... | ...२०३—२ |
| ६६ | ७ गृहवासं पाशं मत्वा तत्र दुःखेनावस्थानम् | २०५—१ |
| | तत्र शिवकुमारकथा ... | ...२०५—१ |
| ६७ | ८ निर्मलसम्यग्दर्शनस्य धारणम्... | ...२०६—२ |
| | तत्रामरदत्तदृष्टान्तः ... ... | ...२०७—१ |
| ६८ | ९ गड्डरिकाप्रवाहत्यागः ... ... | ...२१२—१ |
| | तत्र कुरुचन्द्रनरेन्द्रकथा ... | ...२१२—२ |
| ६९ | १० आगमपुरस्सरं सर्वासां क्रियाणां करणम् | ...२१४—१ |
| | तत्र देववन्दनविधिः ... | ...२१४—२ |

| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
|---|---|---|
| | ,, गुरुवन्दनविधिः ... | ..२१६—१ |
| | ,, प्रत्याख्यानविधिः ... | ...२१८—१ |
| | ,, प्रतिक्रमणविधिः ... | ...२१९—१ |
| | तत्र वरुणज्ञातम् ... ... | ...२१९—२ |
| ७० | ११ यथाशक्ति दानादौ प्रवर्तनम् ... | ...२२१—२ |
| | तत्र चन्द्रोदरराजचरितम् ... | ...२२२—१ |
| ७१ | १२ सम्यक् क्रियाऽनुष्ठाने लज्जात्यागः | ...२२७—२ |
| | तत्र वृत्तकथा ... ... | ...२२८—१ |
| ७२ | १३ धनादिष्वरक्तद्विष्टः ... ... | ...२२८—२ |
| | तत्र ताराचन्द्रनरेन्द्रकथा ... | ...२२९—२ |
| ७३ | १४ मध्यस्थः ... ... ... | ...२३२—२ |
| | तत्र प्रदेशिमहाराजकथा ... | ...२३३—१ |
| ७४ | १५ धनादिष्वप्रतिबद्धः ... | ...२४७—२ |
| | तत्र नरसुन्दरनरेश्वरकथा ... | ...२३८—१ |
| ७५ | १६ परार्थकामोपभोगी ... | ...२४०—१ |
| | तत्र पृथ्वीचन्द्रनरेन्द्रकथा ... | ...२४०—१ |

| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
| --- | --- | --- |
| ७६ | १७ गृहवासे निराशंसः ... | ...२४४—२ |
| | तत्र सिद्धकथा ... ... | ...२४४—२ |
| ७७ | भावश्रावकस्य सप्तदशानां गुणानामुपसंहारः | २४५—२ |
| ७८-७९ | भावसाधोः सप्त लक्षणानि ... | ...२४६—१ |
| ८० | १ मार्गानुसारिणी क्रिया भावसाधोः प्रथमं लक्षणम् ... | ...२४६—२ |
| ८१ | संविग्नगीतार्थाचरितं प्रमाणम् ... | ...२४७—२ |
| ८२-८३ | संविग्नगीतार्थाचरणाया दर्शनम् | ...२४८—१ |
| ८४ | गीतार्थाचरणायाः प्रमाणत्वेन निरूपणम् | ...२४८—२ |
| ८५ | तस्मिन् विषये पूर्वाचार्यसंमतिप्रदर्शनम् | ...२४९—१ |
| | तत्र दुर्बलिकापुष्पमित्रकथा | ...२४९—१ |
| ८६ | कीदृश्या आचरणाया अप्रमाणत्वमित्येतस्य निरूपणम् ... ... | ...२५२—१ |
| ८७ | अप्रमाणभूताया आचरणाया उल्लेखः | ...२५२—१ |
| ८८ | बहुभिरपि आचरितं न प्रमाणम् | ...२५२—२ |
| ८९ | गीतार्थपारतन्त्र्यात् द्विविधं मार्गमनुसरतो | |

| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
| --- | --- | --- |
| | भावयतित्वम् ... ... | ...२५३—१ |
| | धर्मे प्रवरा श्रद्धेति भावसाधोर्द्वितीयं लक्षणम् | ...२५३—१ |
| ९० | प्रवरश्रद्धायाश्चत्वारि लक्षणानि | ...२५३—१ |
| ९१ | १ विधिसेवा-विधिपक्षपातः प्रथमं लक्षणम् | ...२५३—२ |
| ९२ | तस्या दृष्टान्तद्वारा निरूपणम् ... | ...२५३—२ |
| ९३ | दृष्टान्तमभिधाय दार्ष्टान्तिकयोजना... | ...२५४—१ |
| | तत्र संगमसूरिकथा... ... | ...२५४—२ |
| ९४ | २ अतृप्तिस्वरूपं द्वितीयं लक्षणम् | ...२५६—२ |
| | तत्राचलमुनीश्वरकथा ... | ...२५७—१ |
| ९५ | ३ शुद्धदेशनास्वरूपं तृतीयं लक्षणम् | ...२६०—१ |
| ९६ | शुद्धोपदेशकस्वरूपम् ... ... | ...२६०—२ |
| | देशनाविधिः ... ... | ...२६०—२ |
| | तत्र निर्ग्रन्थसाधु कथा ... | ...२६१—२ |
| ९७ | पात्रस्वरूपमवगम्य देशना विधेया, तस्मिन् युक्त्यन्तरम् ... ... | ...२६७—२ |
| ९८ | अपात्रे श्रुतदानादिकं न देयम् ... | ...२६४—२ |

| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
| --- | --- | --- |
| ९९ | चिररूढस्यानुष्ठानस्यादूषणम् ... | ...२६४—१ |
| १०० | पूर्वाचार्यैरदूषितस्यानुष्ठानस्यानिवारणम् | ...२६४—२ |
| १०१ | जानानैरपि उत्सूत्रप्ररूपणा क्रियते तदति-साहसम् ... ... ... | ...२६५—१ |
| १०२ | दुःषमानुभावाद् निजमतिप्रयुक्तयुक्तिभिर्विधिनिषेधप्रवृत्ता अतिसाहसिकाः | ...२६५—१ |
| १०३ | श्रुतसंवादं विनाऽकथनम्, श्रुतानुरूपं च प्ररूपणा ... ... ... | ...२६५—२ |
| १०४ | स्खलितपरिशुद्धिश्चतुर्थं श्रद्धालक्षणम् | ...२६५—२ |
| | तत्र शिवचन्द्रमुनिकथा ... | ...२६६—१ |
| १०५ | प्रज्ञापनीय इति भावसाधोस्तृतीयं लक्षणम् ... ... ... | ...२७०—१ |
| १०६ | मतिमोहसद्भावे बहुविधानि सूत्राणि कारणम् ... ... ... | ...२७०—१ |
| १०७ | सूत्राणां विषयविभागज्ञानाभावे मतिमोहः | ...२७०—२ |
| १०८ | प्रज्ञापनीयः शिष्यः विज्ञाय संविग्नगुरुणा बोधनीयः ... ... ... | ...२७१—१ |
| १०९ | असद्ग्रहत्यागाद् दर्शनं ज्ञानं चाराधयितुं समर्थो भवति ... ... ... | ...२७१—१ |
| | तत्र सुनन्दराजर्षिकथा ... | ...२७१—१ |
| ११० | क्रियास्वप्रमाद इति चतुर्थं भावसाधोर्लक्षणम् ... ... ... ... | ...२७४—२ |
| १११ | प्रमादस्य विशेषतोऽपायहेतुत्वम् ... | ...२७५—२ |
| | तत्र आर्यमङ्गुकथा ... ... | ...२७६—१ |
| ११२ | प्रमादस्य युक्त्यन्तरेण निषेधः ... | ...२७७—१ |
| ११३-१४ | अप्रमादिनः स्वरूपम् ... | ...२७७—१ |
| ११५ | शक्यानुष्ठानारम्भ इति भावसाधोः पञ्चमं लक्षणम् ... ... ... | ...२७८—१ |
| ११६ | शक्यानुष्ठानकरणे न प्रत्यपायः ... | ...२७८—२ |
| ११७ | सत्क्रियाया विशेषतः करणम् ... | ...२७९—१ |
| | तत्रार्यमहागिरिकथा... ... | ...२७९—१ |

| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
|---|---|---|
| ११८ | शक्यानुष्ठानस्य स्वरूपम्... ... | ...२८०—२ |
| ११९ | अशक्यानुष्ठाने दोषप्रदर्शनम् ... | ...२८०—२ |
| | तत्र शिवभूतिकथा ... ... | ...२८१—१ |
| १२० | गुणानुराग इति षष्ठं भावसाधोर्लक्षणम् | ...२८५—१ |
| १२१ | गुणानुरागस्य लिङ्गम् ... ... | ...२८५—१ |
| | तत्र पुरुषोत्तमचरितम् ... | ...२८५—२ |
| १२२ | गुणानुरागस्य लिङ्गान्तरम्... ... | ...२८७—२ |
| १२३-२४ | प्रकारान्तरेण गुणानुरागस्य लक्षणम् | ...२८८—१ |
| १२५ | गुणानुरागस्य फलम् ... ... | ...२८९—१ |
| १२६ | गुर्वाज्ञाराधनरूपं सप्तमं भावसाधोर्लक्षणम् | ...२८९—१ |
| | गुरोः षट्त्रिंशद् गुणाः ... | ...२८९—२ |
| | चारित्रार्थिना गुरुकुलवासे स्थेयम् | ...२९२—१ |
| १२७ | गुरुकुलवासप्रामाण्ये आचाराङ्गस्य प्रथमसूत्र-व्याख्यानम् ... ... ... ... | ... |
| १२८ | गुरुकुलवासत्यागे दोषः ... ... | ...२९२—२ |
| | तत्र संविधानकसंप्रदायः ... | ...२९३—१ |



| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
|---|---|---|
| १२९ | गुर्वाज्ञाकारिणः प्रशंसा ... ... | ...२९४—१ |
| | धर्मक्रियायां प्रद्वेषकरणे कुन्तलदेवीज्ञातम् | ...२९४—२ |
| १३० | यथार्थगुरुशब्दभाजनस्य गुरोर्यथोक्तफलदा-यकत्वम्... ... ... ... | ...२९५—१ |
| १३१ | कियद्गुणविशिष्टो गुरुराश्रयणीय इति निरूपणम् ... ... ... | ...२९६—१ |
| १३२ | सुशिष्येण प्रमादिनोऽपि गुरुश्चारित्रे प्रवर्तयितव्यः ... ... ... | ...२९६—२ |
| | तत्र पन्थकसाधुकथानकम् ... | ...२९६—२ |
| १३३ | एवं कुर्वतः शिष्यस्य गुरुबहुमानादयो गुणाः ... ... ... ... | ...२९८—१ |
| १३४ | विपर्यये दोषाः ... ... ... | ...२९९—१ |
| १३५ | दोषलवसद्भावे गुरोरवर्जनीयता ... | ...३००—१ |
| १३६ | आत्मन्यपि सर्वगुणसम्प्रयोगमपश्यता मध्यस्थेन निजगुरोरत्यागः ... | ...३००—२ |
| १३७ | गुरुत्यागकारिणः सूत्रे पापश्रमणत्वोक्तिः | ...३००—२ |

| गाथा | विषयः | पत्रम् पृष्ठम् |
|---|---|---|
| | गुणाधिके विनेये गुरोर्गौरवम्, तत्र श्री-वज्रस्वामिकथा ... ... ... | ...३०१—१ |
| १३८ | गुणाधिकेन शिष्येण गुरोरवज्ञा त्याज्या | ...३०२—२ |
| १३९ | साधुलक्षणानां निगमनं तत्फलस्य च प्रदर्शनम् ... ... ... | ...३०२—२ |
| १४० | द्विविधस्यापि धर्मरत्नस्याराधने योग्यता-प्रतिपादनम् ... ... ... | ...३०३—१ |
| | तत्र श्रीप्रभमहाराज कथा ... | ...३०३—१ |
| १४१ | एकविंशतिगुणयुक्तो धर्मरत्नस्य योग्य इति पूर्वाचार्यैः प्रतिपादनम् ... | ...३१२—१ |
| १४२-१४३ | धर्मरत्नप्रकरणस्योपसंहारः ... | ...३१२—२ |
| १४४ | शास्त्रार्थपरिज्ञानस्यानन्तरं फलम् ... | ...३१२—२ |
| १४५ | परम्परफलम् ... ... ... | ...३१३—१ |
| | ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः ... ... | ...३१४—२ |

समर्थितः शीलवतः परुषवचनाभियोगत्याग इति षष्ठो भेदः । तत्समर्थने च समाप्तं शीलवदिति षट्प्रकारमपि भावश्रावकस्य द्वितीयं लक्षणम्, अधुना तृतीयं भावश्रावकलक्षणं गुणवत्स्वरूपं निरूरूपयिषुः सम्बन्धगाथामाह—

जइवि गुणा बहुरूवा तहावि पंचहिं गुणेहिं गुणवंतो।
इह मुणिवरेहिं भणिओ सरूवमेसिं निसामेहि ॥ ४२ ॥

'यद्यपि' इत्यभ्युपगमे, अभ्युपगतमिदमस्माभिर्यदुत गुणा 'बहुरूपाः' बहुप्रकारा औदार्यधैर्यगाम्भीर्यप्रियंवदत्वादयस्तथापि पञ्चभिर्गुणैर्गुणवान् 'इह' भावश्रावकविचारे 'मुनिवरैः' गीतार्थसूरिभिर्भणितः उक्तः, 'स्वरूपं' स्वतत्त्वम्, 'एषां' गुणानां 'निशामय' आकर्णयेति शिष्यप्रोत्साहनाय क्रियापदम् । प्रमादी शिष्यः प्रोत्साह्य श्रावणीय इति ज्ञापनार्थमिति ।

स्वरूपमेवाह—

सज्झाए १ करणंमि य २ विणयंमि य ३ निच्चमेव उज्जुत्तो ।
सव्वत्थणभिनिवेसो ४ वहइ रुइं सुट्ठु जिणवयणे ५ ॥ ४३ ॥

शोभनमध्ययनं स्वेनात्मना वाऽध्यायः स्वध्यायः स्वाध्यायो वा, तस्मिन्नित्यमुद्युक्त इति योगः १, तथा 'करणे' अनुष्ठाने २, 'विनये' गुर्वाद्यभ्युत्थानादिरूपे ३ 'नित्यं' सदैव उद्युक्तः' प्रयत्नवान् भवतीति प्रत्येकमभिसम्बन्धादिति गुणत्रयम् । तथा 'सर्वत्र' सर्वप्रयोजनेष्वैहिकामुष्मिकेषु न विद्यतेऽभिनिवेशः—कदाग्रहो यस्य सोऽनभिनिवेशः प्रज्ञापनीयो भवतीति चतुर्थो गुणः ४ । तथा

'वहति' धारयति 'रूचिम्' इच्छां श्रद्धानमित्यथः 'सुष्ठु' बाढं 'जिनवचने' पारगतगदित आगमे इति ५।

इत्थं गणनया पञ्चापि गुणानुपदर्श्य सम्प्रति तानेव भावार्थकथनतो विवरीषुः प्रथमं स्वाध्यायगुणं गाथापूर्वार्द्धनाह—

प णाई सज्झायं वेरग्गनिबंधणं कुणइ विहिणा।

'पठनम्' अपूर्वश्रुतग्रहणम्, आदिशब्दात् प्रच्छनापरावर्त्तनानुप्रेक्षाधर्मकथा गृह्यन्ते, ततः पञ्चप्रकारमपि स्वाध्यायं करोति। किंविविशिष्टम्? 'वैराग्यनिबन्धनं' विरागताकारणं 'विधिना' शास्त्रोक्तेन, श्येनश्रेष्ठिवत्।

तत्र पठनविधिः—

"पर्यस्तिकामवष्टम्भं, तथा पादप्रसारणम्। वर्जयेद् विकथां हास्यमधीयन् गुरुसन्निधौ"॥ इति।

पृच्छाविधिरयम्—

"आसणगओ न पुच्छिज्जा, नेव सिज्जागओ कयाइवि। आगम्मुक्कुडओ संतो पुच्छिज्जा पंजलीउडो"॥ इति।

परावर्त्तनविधिरेषः—

"इरियं सुपडिक्कंतो कडसामइओ व सुट्ठुपिहियमुहो। सुत्तं दोसविमुत्तं सपयच्छेयं गुणइ सड्ढो"॥ इति।

अनुप्रेक्षाऽर्थचिन्तनम्, तद्विधिरसौ—

"जिणवरपवयणपायडणपउणगुरुवयणओ सुणियपुव्वे। एगग्गमणो धणियं चित्त चिंतइ सुयवियारे"॥ इति।

धर्मकथाविधिरयम्—

सुद्धं धम्मुवएसं, गुरुप्पसाएण सम्ममवबुद्धं । सपरोवयारजणगं, जोगस्स कहिज्ज धम्मत्थी" ।। इति ।

श्येनश्रेष्ठिकथा चेयम्—

इह अत्थि पुरी कंची, कंचणबिंबइयचेइहरकलिया । तत्थ य सेणो सिट्ठी, कुवलयमाला पिया तस्स ।।१।।
ताणं च तिन्नि पुत्ता, सिट्ठिगिहे मासखवणपारणए । भिक्खत्थमणुपविट्ठो, कयावि साहू चउण्णाणो ।।२।।
गहिउं सत्तुगथालं, सिट्ठी उट्ठेइ झत्ति से दाउं । संसत्ता सुहुमजिएहिं, मम न कप्पंति भणइ मुणी ।।३।।
को पच्चओ त्ति वुत्तंमि सिट्ठिणा दंसए मुणी तस्स । तव्वण्णजिए उ अलत्तपुंभदावणउवाएण ।।४।।
तो तइयदिवसदहियंमि, ढोइए दंसए तहेव जिए । अह सिट्ठी से ढोएइ, मोयगाणं भरिय थालं ।।५।।
विसमोयगा इमे मुणिकहिए स भणइ कहं ? मुणी आह । जा इह लग्गइ सा, मरइ मच्छिया पिच्छ नणु सिट्ठि ! ।।६।।
तो सो विम्हियहियओ, जंपइ विसदायगं कहसु मज्झ । पच्चाह साहुपवरो, जा कम्मयरी मया कल्ले ।।७।।
किं तीइ कयमिमं ? इय, पुट्ठे साहू भणेइ जह तुमए । सकुडुंबेणवि अमुगे, अवराहे तज्जिया सा उ ।।८।।
तो तीए तुम्ह कए, विसजुत्ता मोयगा इमे विहिया। तह अत्तणो निमित्तं, विसरहिया मोयगा दुन्नि ।।९।।
तो अइछुहाइयाए, संभंतमणाइ मोयगा तीए । विससंजुत्ता भुत्ता, पंचत्तं तक्खणं पत्ता ।।१०।।
विसमविसवज्जियं इह, थाले पुण मोयगाण दुगमेव । सेसा सव्वे सविसा, ता मज्झ इमे न कप्पंति ।।११।।
जइ कहवि इमे तुमए, सकुडुंबेणावि भक्खिया हुंता । तो पावंतो मरणं, तमसरणो धम्मपरिमुक्को ।।१२।।

तत्तो सेणो पुच्छइ, धम्मं पत्तो मुणी उ सट्ठाणं। भिक्खागएहिं धम्मो, न कहिज्जइ इय भणेऊण ॥१३॥
अह मज्झण्हे सिट्ठी, सकुडुंबो गंतु साहुमूलंमि। पणमिय पुच्छइ धम्मं, एवं से कहइ साहूवि ॥१४॥
जह सुरकरी करीसुं, अमरेसु हरी गिरीसु कणयगिरी। तह धम्मेसु पहाणो, दाणाई चउह जिणधम्मो ॥१५॥
तत्थवि सुनिकाइयकम्मघम्मजलहरसमो तवो पवरो। तत्थवि य विसेसिज्जइ सज्झाओ जेणिमं भणियं ॥१६॥
कम्ममसंखिज्जभवं, खवेइ अणुसमयमेव आउत्तो। अन्नयरंमिवि जोगे सज्झायंमी विसेसेण ॥१७॥
बारसविहंमिवि तवे, सब्भिंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे। नवि अत्थि नवि य होही, सज्झायसमं तवोकम्मं ॥१८॥

जओ—

सज्झाएण पसत्थं, झाणं जाणइ य सव्वपरमत्थं। सज्झाए वट्टंतो, खणे खणे जाइ वेरग्गं ॥१९॥
उड्ढमहतिरियनरए, जोइसवेमाणिया य सिद्धी य। सव्वो लोगालोगो, सज्झायविउस्स पच्चक्खो ॥२०॥
इय सोउं तुट्ठमणो, सेणो सम्मं गहित्तु गिहिधम्मं। सज्झायभिग्गहजुयं, नमिउं च मुणिं गओ सगिहं ॥२१॥
तो धम्मकम्मनिरए, सज्झायपरे सयावि सिट्ठिम्मि। वड्ढियविहवे पसरियपुत्तपपुत्ताइसंताणे ॥२२॥
बहुयाओ बहुयाओ, जहा तहा करगरंति अन्नुन्नं। गलियसिणेहा तव्वयणाओ य कलहंति पुत्ता वि ॥२३॥
ते कलहंते दट्ठुं सिट्ठी भिन्ने करेइ तो ते उ। मग्गंति मूलगेहं, तयंपि सिट्ठी पयच्छेइ ॥२४॥
अह सो पियाइवुत्तो, दविणजुयं नियघरंपि पुत्ताणं। दाउं संपइ कह तं, होहिसि तो भणइ इय सिट्ठी ॥२५॥

जस्स मणआलवाले, वट्टइ जिणनाहधम्मकप्पतरू । भवणेण धणेण परेण, वा वि का तस्स किर गणणा ? ॥२६॥
सा पुण तं पइ जंपइ, संपइ भिक्खं भमेसु गहियवयं । तह निवसेसु सुसाणे, देवउले सुण्णगेहे वा ॥२७॥
स भणइ हवेसु धीरा, इमंपि काहं कमेण नणु सुयणु ! । दंसेमि ताव इह लोइयंपि धम्मप्पभावं ते ॥२८॥
इय वुत्तु झत्ति नियमित्तमंतिगेहंमि गंतु साहेइ । सव्वं कुडुंबवत्तं, तप्पुरओ मग्गइ गिहंपि । २९॥
मंती वि भणइ मह गिहमेगं अत्थि त्ति मुग्गडपविट्ठं । किंतु सदोसं न कयावि कोवि निवे(व)सेइ तं गिण्ह ॥३०॥
जइ पुण धम्मपभावेण, पभविही वंतरो न तुह किंचि । सो तयणु सउणगंठिं, बंधिय पत्तो गिहे तम्मि ॥३१॥
निस्सीहियं करेउं, अणुजाणाविय गओ गिहस्संतो । पडिकमिऊण य इरियं, एवं च करेइ सज्झायं ॥३२॥

तथाहि—

गयमेअज्जमहामुणिखंदगसीसाइसाहुचरियाइं । सुमरंतो कह कुप्पसि, इत्तियमित्तेवि रे जीव ! ॥३३॥
पिच्छसु पाणविणासेवि, नेव कुप्पंति जे महासत्ता । तुज्झ पुण हीणसत्तस्स, वयणमित्तेवि एस खमा ॥३४॥
रे जीव ! सुहदुहेसुं, निमित्तमित्तं परो जियाणं ति । सकयफलं भुंजंतो, कीस मुहा कुप्पसि परस्स ? ॥३५॥
हा ! हा ! मोहविमूढा, विहवे य घरे य मुच्छिया जीवा । निहणंति पुत्तमित्ते, भमंति तो चउगइभवंमि ॥३६॥
एवं सो सज्झायं, करेइ जा जामिणीइ जामदुगं । ता वंतरेण सुणिउं, पहिट्ठचित्तेण इय भणियं ॥३७॥
महभवजलहिम्मि निमज्जिरस्स पोयाइयंतए साहू । सो हं अमरो एयं, गेहं उव्वासियं जेण ॥३८॥

तो कहइ सेणपुट्ठो, स वंतरो भद्द! एयगेहस्स । अहमासि पुरा सामी, अहेसि पुत्ता दुवे मज्झ ॥३९॥
तेसु लहू अइइट्ठो, दिन्नं सव्वंपि तस्स गिहसारं । दाऊणं किंपि मए, भिन्नगिहे ठाविओ जिट्ठो ॥४०॥
तो कहिउं रायउले, तेणं माराविओ अहं सहसा । लहुभायरं धराविय, गेहमिणं अप्पणा गहियं ॥४१॥
लहुबंधू गुत्तीए, मओ अहं इत्थ वंतरो जाओ । जिट्ठसुयविलसियमिणं, नायं मे निययनाणेण ॥४२॥
ततो कुविएण मए जिट्ठसुओ विहणिओ सपरिवारो। अन्नोवि वसइ जो इह, रयणीइ तयं हणेमि धुवं ॥४३॥
संपइ तुह सज्झायं, सोउं बुद्धो विमुक्कवइरो य । तं मज्झ गुरू तो तुह, सनिहाणमिणं गिहं दिन्नं ॥४४॥
निहिठाणं च कहेउं, खणेण अमरो अदंसणीहूओ । सिद्धिवि इमं गोसे, साहइ निवमंतिमाईणं ॥४५॥
तो विम्हिओ नरिंदो, तुट्ठा वरसचिवसयणपमुहजणा । पुत्ता उवसंतप्पा, जाया जाया वि धम्मपरा ॥४६॥
जियअंतरिउसेणो, सेणो वि चिरं करेवि गिहिधम्मं । गहिऊण य पव्वज्जं, पत्तो सासयपयं कमसो ॥४७॥

श्येनः सदैवं स्फुटशुद्धभावः, स्वाध्यायनिष्ठोऽजनि निष्ठितार्थः ।
विवेकपीयूषमयूखवार्द्धौ, तदत्र सन्तः सततं यतन्ताम् ॥ ४८ ॥

इति श्येनश्रेष्ठिकथा ।

तत्र करणे नन्दश्रेष्ठि-कथा।

उक्तो गुणवतः स्वाध्याय इति प्रथमो भेदः, सम्प्रति करण इति द्वितीयभेदं व्याचिख्यासुर्गाथोत्तरार्द्धमाह —

॥१५३॥

तवनियमवंदणाईकरणंमि य निच्चमुज्जमइ ॥ ४४ ॥

तपोनियमवन्दनादीनां करणे—समाचरणे चकारात् कारणानुमोदनयोश्च 'नित्यं' प्रतिदिनमुद्यच्छति—प्रयतते। तत्र तपोऽनशनादि द्वादशधा, तदुक्तम्—

"अनशनमूनोदरता, वृत्तेः संक्षेपणं रसत्यागः। कायक्लेशः संलीनतेति बाह्यं तपः षोढा ॥१॥

प्रायश्चित्तध्याने वैयावृत्त्यविनयावथोत्सर्गः। स्वाध्याय इति तपः षट्प्रकारमाभ्यन्तरं भवति" ॥२॥ इति। नियमा यतिविश्रामणोत्तरपारणकृतलोचसाधुघृतदानादिविषयाः।

उक्तं च—

पइसंतगिलाणेसु य आगमगाहीसु तह य कयलोए। उत्तरपारणगंमि य दाणं सुबहुप्फलं होइ" ॥ त्ति वन्दना चैत्यगुरुविषया, आदिशब्दाज्जिनादिपूजापरिग्रहः, तेषां करणे नित्यमुद्यच्छति, नन्दश्रेष्ठिवत्।

तत्कथा चैवम्—

सुहवासा मोयजुया, महुरपुरी अत्थि गंधगुलिय व्व। तत्थ य नंदो सिट्ठी, बहुवित्तो पगइउवसंतो ॥१॥

तस्स पिया नंदसिरी, सिरीइ गिद्धा सहावओ कुद्धा। ताणं चउरो पुत्ता, उदारचित्ता सया भत्ता ॥२॥

अह तत्थ समोसरिओ, अइसयनाणी खमाइगुणखाणी। निस्संगचंगबहुसीससंगमो संगमो सूरी ॥३॥

तं नमणत्थं जंते, पउरे पउरे निएवि नंदो वि। पत्तो नमिय निसण्णो, तो सूरी कहइ इय धम्मं ॥४॥

पंचमहव्वयपालणसारो सव्वुत्तमो सुजइधम्मो । तदसत्ताणं सत्ताण, समुचिओ होइ गिहिधम्मो ॥५॥
तं सोउं सो नंदो, सानंदो गिण्हिऊण गिहिधम्मं। सुकयत्थं अप्पाणं, मण्णंतो नियगिहे पत्तो ॥६॥
पुच्छइ कयावि सुगुरुं, इमिणा बहुणा धणेण किं नाह! । नणु होइ किंपि पुण्णं, तो सूरी भणइ इय वयणं ॥७॥
बज्झमणिच्चमसारं, परव्वसं तुच्छयं धणं ठविउं । गिण्हंति बुहा सिवसुक्खमक्खयं सत्तखित्तीए ॥८॥
तं सोउं परितुट्ठो, सिट्ठी नमिउं गुरुं गओ सगिहं । नियदविणेणं विहिणा, कारावइ जिणगिहं पवरं ॥९॥
सिरिवीरनाहबिंबं, तत्थ पइट्ठवए इमो रम्मं । तह बंभसंतिजक्खं, जिणपवयणरक्खणसुदक्खं ॥१०॥
तुममेव नेव पूएमि, देव ! जा ताव नविय जेमेमि । इय गिण्हइ अइघोरं, नियमं पूएवि जिणनाहं ॥११॥
दुक्करतवनियमरओ, निच्चं जिणपूयणंमि उज्जुत्तो । मुणिजणवंदणपवणो, सुद्धमणो गमइ बहुकालं ॥१२॥
पुव्वकयकम्मवसओ, विहवभरो से कयावि परिणट्ठो । तो सयणपरियणाणवि, जाओ सो परिभवट्ठाणं ॥१३॥
नंदमनिंदियचित्तं गयवित्तं नंदणावि निंदन्ति । भज्जा वि हीलइ तयं, बहुयाउ वि कुरकुरायंति ॥१४॥
पुत्ता भणंति दढमूढ, वूढ ! जह जह करेसि जिणधम्मं । तह तह रउद्ददारिद्दपायवो फलइ तुह गेहे ॥१५॥
तो जंपइ स महप्पा, मा इय असमंजसाइं पभणेह । जं पुव्वजम्मनिम्मियकम्मफलं लहइ सव्वोवि ॥१६॥
एमाइजुत्तिजुत्तं, वुत्ता पुत्ता उ कोवसंतत्ता । पकुणंति नंदसिट्ठिं, भिन्नं ते भिन्ननयमग्गा ॥१७॥
तहवि इमो एगागी, महाणुभागो अभिन्नमुहरागो । चिट्ठइ गिहेगदेसे, तहेव कयउज्जमो धम्मे ॥१८॥



तत्र करणे
नन्दश्रेष्ठि-
कथा

रयणीइ चरिमजामे, सज्झायावस्सयं कुणइ विहिणा । पढइ अपुव्वं पढमे, दिणजामे आगमरहस्सं ॥१९॥
गंतूण बीयजामे, विक्किय लोणाइ संनिहियगामे । ववहारसुद्धिसारो, भोयणमित्तं समज्जेइ ॥२०॥
आगंतुं नियगेहे, सुइभूओ गंतु नियजिणभवणे । गंधेहिं सुगंधेहिं, पूइय वंदइ जिणवरिंदे ॥२१॥
सम्मं कम्मविवागं, जाणंतो अप्पणा कुणइ पागं । भुत्तुं विहिणा विहिउं, संवरणं कुणइ अणुपेहं ॥२२॥
आवस्सयाइकिरियं, करेइ नियवीरियं अगूहंतो । इय नंदो गयदंदो, दिणकिच्चं आयरइ निच्चं ॥२३॥
तोसविय भवियसत्ते, कयावि अट्ठाहियामहे पत्ते । कयउववासो एसो, जा पत्तो जिणगिहदुवारे ॥२४॥
उल्लसिरबहलपरिमलपसरंताकुसुमचउसरं एगा । से मालिणी समप्पइ, सो भणइ इमस्स किं मुल्लं ? ॥२५॥
सा जंपइ मुल्लेणं, आणंदसमुद्दचंदनंद ! कयं । तुम्ह पसाएणं चिय, अम्ह इमे सारलंकारा ॥२६॥
इय भणिओवि न गिण्हइ, स मोरउल्लाइ जाव फुल्लाइं । ता मालिणी सविणयं, रूवद्धं मुल्लमुल्लवइ ॥२७॥
तो दाउ फुल्लमुल्लं, हरिसपरो कुसुमचउसरं गहिउं । पविसिय जिणभवणं तो, भत्तीइ जिणिंदमच्चेइ ॥२८॥
पूइत्तु नमित्तु जिणं, वंदारुजणे गयंमि सट्ठाणे । विहिणा वंदिय देवे, नंदो इय थुणइ जिणनाहं ॥२९॥
"जय जय सामिय जिणवर !, वरकेवलकलियवत्थुपरमत्थ ! । मत्थयमणिकरभासुरसुरवरसयनमियकमकमल ! ॥३०॥
मलरोगमुक्कविग्गह ! गहवइदिप्पंतकंतभावलय ! । लयपत्तझाणसोहिय !, हियकर ! नीसेससत्ताणं ॥३१॥
धन्नो हं जेण मए, अणोरपारंमि भवसमुद्दंमि । भवसयसहस्सदुलहं, जं पहु ! तुह दंसणं लद्धं ॥३२॥

चक्कहरअसुरनरवरखेयरकमलाउ इत्थ सुलहाओ । पहु ! तुह पणीयतवचरणनियमरिद्धी उ पुण दुलहा ॥३३॥
दालिद्ददुक्खदलणी, सुहाण जणणी दुहाण निट्ठवणी । भवजलहिपोयभूया जीवाणं देव ! तुह पूया ॥३४॥
तिहुयणपहु ! तुह पयकमलवंदणं चंदणं व लहिऊण । भवसंतावं उवसमिय, निव्वुया हुंति भवियजणा ॥३५॥
तुमपुव्वो कप्पतरू, सामिय ! चिंतामणी तुममपुव्वो । अवितक्कियंपि जं पहु !, वियरसि सग्गापवग्गसुहं ॥३६॥
देविंदमुणिंदनरिंदविंदवंदिय ! जिणिंद ! मज्झ सया । नियनिम्मलआणाकरणलालसं माणसं कुणसु ॥३७॥
अह तत्थागयसंगमगुरुणो विणएण नमइ जा एस । तो तेहि इमो भणिओ, किं सिट्ठि ! इमा अवत्था ते ? ॥३८॥
स भणइ भयवं ! मेवं, तुब्भेवि भणेह किं खु मह ऊणं । नूणं जा फुरइ मणे, अचिंतचिंतामणी धम्मो ॥३९॥
किं तु दुहमसममेयं, जं पहु ! सुयणा भणंति मूढमणा । जिणपवयणपडिकूलं, अणंतसंसारतरुमूलं ॥४०॥
अह बंभसंतिजक्खो, पच्चक्खो होउ भणइ तुट्ठो हं । तुह गरुयभत्तिसाहसगुणेण ता सिट्ठि ! वरसु वरं ॥४१॥
सो भणइ न मे कज्जं, केणवि जक्खो पुणाह मग्गेसु । सो वयइ धणं ता, देसु तस्स रूवद्धपुण्णस्स ॥४२॥
जक्खो अवहीए नाउं, भणइ लक्खे बहूवि तुह देमि । रूवद्धविढत्तसुपुण्णभारपारं न उण जामि ॥४३॥
तं सोउ भणइ सिट्ठी, सविम्हओ जक्ख ! वयसु सट्ठाणं । जिणधम्मपभावाओ, कयावि न हु किंपि मह खूणं ॥४४॥
जइवि निरीहो सि तहावि सिट्ठि ! नियतणयमाइ संठविउं । कुणसु मह वयणमेगं, तेणाणुमए भणइ जक्खो ॥४५॥
नियगिहचउकोणठिए, महानिहाणे गहिज्ज इय कहिउं । जक्खो गओ सट्ठाणं, सिट्ठीवि सगेहमणुपत्तो ॥४६॥

तत्र करणे
नन्दश्रेष्ठि-
कथा।

सविसेसधम्मनिरयं, तं दट्ठुं दुट्ठमाणसा भज्जा । जंपइ दढमूढ ! मुहा, मरेसि किं धमधमीहूओ ॥४७॥

पुत्ता भणंति निम्मेर !, थेर ! मुंचसि किमज्जवि न धम्मं । किं जीवंते अम्हे, निरिक्खिउं न तरसि हयास ! ॥४८॥

सिट्ठी भणइ किमेवं, निंदह सिवसग्गदायगं धम्मं । एयस्स असारधणस्स, कारणा तेवि बिंति तओ ॥४९॥

सिवसग्गेहि अलं णे, धणमिक्कं चिय वयं समीहेमो । अणहुंतया वि जेणं, हुंति गुणा पायडा सव्वे ॥५०॥

तथा चोक्तम्—

"हुंतीइ हुंति अणहुंतयावि जंतीइ जंति हुंतावि । जीइ समं नीसेसा सगुणगणा जयउ सा लच्छी" ॥५१॥

तथा—

"जाई रूवं विज्जा, तिन्निवि निवडंतु कंदरे विउले । अत्थु च्चिय परिवड्ढउ, जेण गुणा पायडा हुंति" ॥५२॥

तो पडिभणेइ सिट्ठी, धणत्थिणो जइ तुमे तहावि इमं । धम्मं करेह जं एस, देहिणं कामधेणुसमो ॥५३॥

तद्यथा—

"धर्मोऽयं धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः, सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किमथवा पुत्रार्थिनां पुत्रदः ।
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमपरं नानाविकल्पैर्नृणां, तत् किं यन्न ददाति किञ्च तनुते स्वर्गापवर्गावपि" ॥५४॥

अन्यत्राप्युक्तम्—

धणु चिंततउ धम्म करि, धम्मेण य धणु होइ । धणु चिंततउ जइ मरइ, दुण्हवि इक्कु न होइ" ॥५५॥

ते बिंति ताय ! जइ णे, देसि धणमिहावि किंपि तो धम्मं । कुणिमो तयणु पयंपइ, सिट्ठी नणु झत्ति देमि त्ति ॥५६॥
तत्तो तेवि हु धणलाभलालसा नंदसिट्ठिणा सद्धिं । जिणभवणाइसु गच्छंति, साहुणो तह नमंसंति ॥५७॥
अह ते लुद्धा कत्थत्थि तं धणं जाव बिंति ता सिट्ठी । दंसइ कंचणकलसं, गिहेगकोणं खणावेउं ॥५८॥
एवं कलसचउक्के, लद्धे ते अंतरायविगमेणं । पुव्वं व रिद्धिमंता, जाया जिणधम्मअणुरत्ता ॥५९॥
अह तेण सयणवग्गो, गिहिधम्मं गाहिओ गुरुसमीवे । सिवसुक्खदाणदक्खा, सयं च कक्खीकया दिक्खा ॥६०॥
मूलुत्तरगुणकलिओ, सज्झायावस्सयाइकिरियरओ । उप्पाडियदुहकंदो, पत्तो परमं पयं नंदो ॥६१॥

श्रुत्वेति लोकद्वितयेऽपि सौख्यं, नन्दस्य नित्यं करणोद्यतस्य ।
निःशेषदुःखद्रुकुठारकल्पे, भव्या ! जनास्तत्र विधत्त यत्नम् ॥६२॥

इति नन्दश्रेष्ठिकथा ।

उक्तो गुणवतः करण इति द्वितीयो भेदः, सम्प्रति तृतीयं विनयभेदं प्रचिकटयिषुर्गाथापूर्वार्द्धमाह–

**अब्भुट्ठाणाईयं विणयं नियमा पउंजइ गुणीणं ।**

अभिमुखमुत्थानमभ्युत्थानं तदादिर्यस्य सः अभ्युत्थानादिः, आदिशब्दात् सम्मुखयानादिपरिग्रहः । तदुक्तम्–
"दट्ठुं अब्भुट्ठाणं, आगच्छंताण संमुहं जाणं । सीसे अंजलिकरणं, सयमासणढोयणं कुज्जा ॥१॥
निविसिज्ज निसन्नेसुं, गुरूसु वंदणमुवासणं ताणं । जंताणं अणुगमणं, इय विणओ अट्ठहा होइ" ॥ इति ।



तत्र विनये
पुष्पसाल-
सुतकथा ।

तमित्थंभूतं 'विनयं' प्रतिपत्तिं 'नियमात्' निश्चयेन 'प्रयुङ्क्ते' विदधाति 'गुणिनां' गुरुगौरवार्हाणाम्। पुष्पसालसुतवत्। तत्कथा चैवम्—

मगहाजणवयमज्झे, गुब्बरगामंमि गिहवई आसि। नामेणं पुप्फसालो, भज्जा भद्दाभिहा तस्स ॥१॥
पगईइ विणयकरणुज्जुओ सुओ ताण पुप्फसालसुओ। सो धम्मसत्थपाढयमुहाउ कइयावि इय सुणइ ॥२॥
विहडियतमेसु जो उत्तमेसु इह कुणइ विणयमणवरयं। सो लहिय उत्तमगुणे, पावइ सव्वुत्तमं ठाणं ॥३॥
इय सुणिय पिऊण अणूणभत्तिजुत्तो स रत्तिदिवसंपि। जं जह उचियं तं तह सम्मं विणयं विणिम्मेइ ॥४॥
कइयावि गामपहुणो, विणयप्पवणे निएवि नियपिउणो। ते पुच्छिय तं उत्तमतरं ति ओलग्गिउं लग्गो ॥५॥
तेण सह गामसामी, पत्तो कइयावि रायगिहनयरे। अभयकुमारसमीवे, गरुयं विणयं कुणइ तस्स ॥६॥
तो पुप्फसालपुत्तो, पुच्छइ को एस सामि! सो भणइ। सिरिसेणियनिवतणओ, गुरुयणसंजणियबहुविणओ ॥७॥
सज्जणवणनवमेहो, उत्तमलोयंमि लद्धधुरिरेहो। कयजणवयजणसंती, अभयकुमारु त्ति वरमंती ॥८॥
इय सोउ गामसामिं, पुच्छिय सो अभयकुमरमल्लीणो। विणय कणयं व सुयं, तं पइ पइवासरं कुणइ ॥९॥
अभयकुमारो गोसे, तोसेण नमेइ निवइचरणजुगं। तुम्ह वि पुज्जो को एस, सामि! इय पुच्छए एसो ॥१०॥
पभणइ मंती भो पुप्फसालसुय! भुवणविस्सुयजसोहो। ओहामियरिउसेणो, पसेणजियनरवरंगभवो ॥११॥
भवबलकारणमिच्छत्तसुहडभडवायभंजणपवीरो। वीरपयभत्तिजणओ, जणओ मह सेणिओ राया ॥१२॥

तं सोउ पमोयजुओ, विगएणं पुच्छिऊण वरमंतिं । सेणियनिवपयकमलं, सो सेवइ रायहंसु व्व ॥१३॥
अह तत्थ वीरनाहं, समोसढं वंदिउं निवो चलिओ । पुट्ठो तेणं को एस ? नाह ! तुब्भंपि जो पुज्जो ॥१४॥
भणइ नरिंदो अमरिंदचंदनागिंदनमियचरणजुगो । जुगवं समत्तसत्ताण, सयलसंसयसमूहहरो ॥१५॥
हरहासधवलजसभरपरिमलसुरहियतिलोयआभोओ । भोयनिरत्तिक्खअइतिक्खगरूयतवचरणसिद्धत्थो ॥१६॥
सिद्धत्थनराहिवकुलविसालनहयलदिणेसरसमाणो । माणकरिकेसरिसमो समोसढो इत्थ वीरजिणो ॥१७॥
तं सुणिय हरिसियमणो, पत्तो सह सेणिएण जिणपासे । नमिय पहुं असिखेडयहत्थो इय भणइ विगएण ॥१८॥
पहु ! तुह करेमि सेवं, भुवणगुरू भणइ कीरए भद्द ! । मुहपत्तियधम्मज्झयविहत्थहत्थेहि णे सेवा ॥१९॥
इय होउ त्ति पयंपिय, सो दिक्खं गिण्हए पहुसमीवे । संसाहियविणयरसो, जाओ कल्लाणआभागी ॥२०॥
इत्यवेत्य बहुलाभकृत्तमं पुष्पसालसुतवृत्तमुत्तमम् । हे जना ! विनयकर्मलालसाः सन्ततं भवत शुद्धमानसाः ॥२१॥

इति पुष्पसालसुतकथा ॥



निरूपितो गुणवतो विनय इति तृतीयो भेदः, साम्प्रतमनभिनिवेश इति चतुर्थभेदं व्याचिख्यासुर्गाथोत्तरार्द्धमाह—

**अणभिनिवेसो गीयत्थभासियं नन्नहा मुणइ ॥ ४५ ॥**

'अनभिनिवेशः' अभिनिवेशरहितो 'गीतार्थभाषितं' बहुश्रुतोपदिष्टं 'नान्यथा' सद्भावरूपतया 'मुणति' प्रतिपद्यते, मोहोद्रेकाभावे कदाग्रहाभावाद् ।

उक्तं च—

"न मोहोद्रेकताऽभावे स्वाग्रहो जायते क्वचित् । गुणवत्पारतन्त्र्यं हि तदनुत्कर्षसाधनम्" ॥ इति ।

इदमुक्तं भवति–तीर्थकरगणधरगीतार्थगुरूपदिष्टं तथेति प्रतिपद्यते श्रावस्तीश्रावकसमुदायवत् ।

तत्संविधानकमेवम्—

अत्थि पुरी सावत्थी, नेसत्थीआवणु व्व बहुसस्सा । तत्थ य सावयपवरो, संखो संखोज्जलगुणोहो ॥१॥

सययं सेवियजिणचलणउप्पला उप्पला पिया तस्स । अन्नेवि तत्थ बहवे, वहवेरविवज्जिया सड्ढा ॥२॥

अह तत्थ समोसरियं, वीरजिणं वंदिउं पडिनियत्तो । ते सावए वयासी, एवं संखो निरवकंखो ॥३॥

भो ! भो ! उवक्खडावह, विउलं असणाइ तं च जिमिऊण । विहरिस्सामो गिण्हितु, पक्खियं पोसहं सम्मं ॥४॥

तेसु वि तहेव भणिउं, सड्ढागगएसु चिंतए संखो । नो खलु कप्पइ तं मज्झ, विउलमसणाइयं भुत्तुं ॥५॥

किं तु विमुक्कालंकारसत्थकुसुमस्स बंभयारिस्स । एगागिणो य पोसहसालाए पोसहं घित्तुं ॥६॥

पुच्छित्तु उप्पलं तो, संखो गिण्हेइ पोसहं इत्तो । ते मिलिया सावया लहु, असणाई उवक्खडाविंति ॥७॥

जंपंति य भो भद्दा !, संखेणुत्तं जहा जिमेऊण । विहरिस्सामो गिण्हितु, पक्खियं पोसहं अम्हे ॥८॥

ता किं अज्जवि संखो, न एइ अह आह पुक्खली सड्ढो । जाएमि तमाहूउं, ता तुब्भे ठाह सुविसत्था ॥९॥

इय भणिय संखगेहे, सो पत्तो तं च उप्पला इंतं । दट्ठुं अब्भुट्ठइ जाइ सम्मुहं तह सगट्ठपए ॥१०॥

वंदिय निमंतिउं, आसणेण पुच्छइ आगमणकज्जं । स भणइ भद्दे ! संखो, संखु व्व निरंजणो कत्थ ? ॥११॥
सा जंपइ पोसहिओ, पोसहसालाइ अत्थि सो तत्तो । गंतुं पोसहसालं, गमणागमणाइ पडिक्कमइ ॥१२॥
वंदिय संखं पुक्खलहरिसपरो पुक्खली भणइ भद्द ! । तं असणाई सव्वं, सिद्धं ता एह लहु तुब्भे ॥१३॥
संखो भणेइ भद्दा !, पोसहिओ हं तओ सइच्छा भे । इय पुक्खली निसामिय, पत्तो सड्ढाण पासंमि ॥१४॥
तं कहइ संखवुत्तं, तमुत्तमं ते वि सावया तत्तो । किंपि कयअभिनिवेसा, जिमंति तं असणमाईयं ॥१५॥
संखो उण निसि चरिमे, जामे चिंतइ पए जिणं वीरं । नमिउं सोउं धम्मं, पारिस्सं पोसहं अहयं ॥१६॥
अह उग्गए दिणिंदे, संखो अक्खोहवासणाजुत्तो । पत्तो नंतुं तिहुयणपहुपाए पायचारेण ॥१७॥
वीरं नमिय निसन्नो, समागया सावया तहिं तेवि । वंदिय जिणमुवविट्ठा, तो भयवं कहइ इय धम्मं ॥१८॥
भो ! लहिय मणुयजम्मं, भविया भवियव्वयानिओगेण । नीसेसकिलेसकरं, सयावि वज्जह अभिनिवेसं ॥१९॥
अह बिंति अभिनिविट्ठा, ते सड्ढा संख ! तुज्झ किं जुत्तं । जं कल्ले कहिय सयंपि पोसहं जिमिय काहामो ॥२०॥
पच्छा तं पुण अजिमिय, गिण्हिसि ता सुट्ठु णं तुमं अम्हे । देवाणुपिया हीलसि, निंदसि खिंसेसि गरिहेसि ॥२१॥
अह भणइ पहू मेवं, संखं हीलह तुमे जओ एसो । पियधम्मो दढधम्मो, जग्गेइ सुदक्खु जागरियं ॥२२॥
तो संखो संखो इव, महुरसरो पुच्छए पहुं नमिउं । कोहवसट्टे भंते ! जीवे किं अज्जए कम्मं ? ॥२३॥
साहइ सामी संखा !, कोहवसट्टे जिए समज्जेइ । सत्तट्ठ व कम्माइं, भमेइ संसारकंतारं ॥२४॥

तत्र अनभिनिवेशेश्रावस्तीश्रावकसंविधानकम् ।

तं सोउं ते सड्ढा, भयभीया अभिनिवेसपरिमुक्का । खामंति विणयपुव्वं, संखं संखं व सुपवित्तं ॥२५॥
तत्तो अणभिनिवेसा, ते सव्वे वंदिउं जिणं वीरं । संपन्ना सड्ढाणे, पहूचि अभत्थ विहरेइ ॥२६॥
संखो असंखभवियं, कम्मं खविउं सुहम्मकप्पंमि । अरुणाभंमि विमाणे, चउपलियठिई सुरो जाओ ॥२७॥
तत्तो चविय विदेहे, सिवंगमी अभिनिवेसपरिमुक्को । ते सेसावि हु सड्ढा सुगईए भायणं जाया ॥२८॥
इत्यभिनिवेशपङ्कं, श्रावस्तीश्रावकाः परित्यज्य । प्रापुः फलममलमलं तदत्र यत्नं जनाः ! कुरुत ॥२९॥

॥ इति शङ्खविधानकम् ॥

उक्तो गुणवतोऽनभिनिवेश इति चतुर्थो भेदः, सम्प्रति जिनवचनरुचिरूपं पञ्चमं भेदं व्याख्यानयन्नाह–

**सवणकरणेसु इच्छा, होइ रुई सद्दहाणसंजुत्ता ।**
**एईइ विणा कत्तो, सुद्धी सम्मत्तरयणस्स ॥ ४६ ॥**

श्रवणम्–आकर्णनम्, करणम्–अनुष्ठानम्, तयोरिच्छा–तीव्राभिलाषो भवति 'रुचिः' 'श्रद्धानसंयुक्ता' प्रतीतिसङ्गता, जयन्तीश्राविकाया इवेति । अस्या एव प्राधान्यख्यापनायाह–एतया द्विस्वरूपया रुच्या विना–अभावेन कुतः शुद्धिः ? न कुतोऽपीत्याकूतम् । सम्यक्त्वरत्नस्य प्रतीतस्य, शुश्रूषाधर्मरागरूपत्वात्तस्य, तयोश्च सम्यक्त्वसहभाविलिङ्गतया प्रसिद्धत्वात् ।

उक्तं च—

"सुस्सूस धम्मराओ गुरुदेवाणं जहासमाहीए। वेयावच्चे नियमो सम्मद्दिट्ठिस्स लिंगाइं" ॥१॥

इति पञ्चमगुणभावना।

अन्ये तु पञ्च गुणानित्थमभिदधति —

"सुत्तरुई अत्थरुई, करणरुई चेव णभिनिवेसरुई। गुणवंते पंचमिया, अणिट्ठिउच्छाहया होइ" ॥१॥

अत्रापि सूत्ररुचिः पठनादिस्वाध्यायप्रवृत्तिः, 'अर्थरुचिश्चाभ्युत्थानादिविनयं गुणिनां प्रयुङ्क्ते, करणानभिनिवेशौ तुल्यावेव। अनिष्ठितोत्साहता पुनरिच्छावृद्धिरेवेति न विरोध आशङ्कनीय इति।

तत्र जिनवचनरुचौ जयन्ती श्राविका-कथा।

जयन्तीश्राविकाकथा चैवम्—

अत्थि पुरी कोसंबी, कोसं बीयं विणावि अंकुरिया। जस्स गुरुकित्तिवल्ली, सो तत्थ निवो उदयणु त्ति ॥१॥
माया मायारहिया, सुसीलकलिया मियावई तस्स। जिणवयणरुई सच्छासया पिउच्छा तह जयंती ॥२॥
सा समए समणाणं, पढमा सिज्जायरित्ति सुपसिद्धा। सिद्धत्थपत्थिवसुओ, अह तत्थ समोसढो सामी ॥३॥
तिहुयणपहुपणमणपउणमाणसा सयणपरियणसमेया। पत्ता तत्थ जयंती, भत्तीई जयंपि विजयंती ॥४॥
नमिउं वीरजिणिंदं, पुरओ काऊण उदयणनरिंदं। सा निसुणइ चारुरुई, एवं पहुदेसणं सुमई ॥५॥
"नरजम्माइ समग्गं, सामग्गिं लहिय कहमवि उदग्गं। सक्किरियं रुइरुइरं, कुणेह गुरुकम्मगिरिवइरं ॥६॥
जियअजियपुन्नपावासवसंवरनिज्जराउ बंधंमि। मुक्खत्ति तत्तनवगे, सया रुई होइ कायव्वा ॥७॥

तत्थ जिया एगविहा, दुहा तिहा चउह पंचहा छद्धा । चेयण तस इयरेहिं, वेयगईकरणकाएहिं ॥८॥
भूमीजलजलणानिलवणस्सई थावरा इमे पंच । बियतियचउपंचिंदियतस चउहा नवविहा सव्वे ॥९॥
एगिंदियसुहुमियरा सन्नियरपणिंदिया सबितिचऊ । अपज्जत्तापज्जत्ता चउदसहा अहव हुंति जिया ॥१०॥
सुहमियरभूजलानलपवणाणंतवण इयरवणविगला । सन्निअसन्निपणिंदी अपजत्तापज्जत्त बत्तीसं ॥११॥
ते सुक्ककिण्हयपक्खियभेएहिं अहव भव्वभव्वेहिं । चउसट्ठिविहा कम्मप्पगईभेएहिं बहुहा वा ॥१२॥
पंच अजीवा धम्माधम्मागासद्धपुग्गला तत्थ । पढमा चउरो अकिरिय अरूविणो रूविणो चरिमा ॥१३॥
तेसिं भेयालक्खणसंठाणपमाणअप्पबहुभावा । नेया भेया तियतियतियइगचउ इय अजीवचउदसगं ॥१४॥ (गीतिः)
धम्मत्थिकायदव्वं, तस्स य भागो विवक्खिओ देसो । अविभागो उ पएसो, एवमधम्मे नभेवि तियं ॥१५॥
कालो एगविहो चिय भावपरावत्तिहेउ निच्छइओ । ववहारिओ उ रविगइगम्मो समयाइणेगविहो ॥१६॥
समयावलियमुहुत्ता, दिवसअहोरत्तपक्खमासा य । संवच्छरजुगपलिया सागरओसप्पिपरियट्टा ॥१७॥
पुग्गलनिचओ खंधो, देसपएसा तहेव परमाणू । केवलअणुओ सुहुमो दुफासइगवन्नगंधरसो ॥१८॥ दारं
गइलक्खणो य धम्मो, पुग्गलजीवाण गइपरिणयाण । गमणोवग्गहहेऊ, जलयरजीवाण सलिलं व ॥१९॥
ठिइलक्खणो अहम्मो, पुग्गलजीवाण ठिइपरिणयाण । ठाणोवग्गहहेऊ पहियाण व बहलतरुच्छाया ॥२०॥
सपइट्ठं सव्वगयं, अवगासपयं च होइ आगासं । भावपरावत्तिलक्खणमद्धादव्वं तु नेयव्वं ॥२१॥

उवचयअवचयआयाणसो(मो)क्खरसगंधवन्नमाईयं । छायायवतममाईण लक्खणं पुग्गलाणं तु ॥२२॥ दारं
धम्माधम्मालोगागिई उ कालो उ वत्तणारूवो । नियसंठाणविमुक्को उवयारा दव्वपज्जाओ ॥२३॥
सज्झुसिरवट्टुलगोलगसरिसागारो अलोगआगासो । लोगो वेसाहट्ठियकडित्थकरजुगनरसरिच्छो ॥२४॥
अचित्तमहाखंधो, लोगसमाणो य अट्ठसामइओ । पोग्गल णेगागारा, संखासंखट्ठिई सेसा ॥२५॥ दारं
एगजियपएससमो धम्मो, अधम्मो य लोगआगासो । कालं दव्वं एगं अणंतया पोग्गलअलोगा ॥२६॥ दारं
थोवो कालो लोगो, धम्मोऽधम्मो असंख तिन्नि समा । दुन्नि अणंता पुग्गलअलोगखपएस्या कमसो ॥२७॥ दारं
धम्माधम्मागासा, कालो परिणामिए इहं भावे । उदयपरिणामिए पुग्गला उ सव्वेसु पुण जीवा ॥२८॥
भावा छ खोवसमियखइयखओवसमउदयपरिणामा । दुनवट्ठारिगवीसातिगभेया सन्निवाओ य ॥२९॥
सम्मचरणाणि पढमे, बीए वरनाणदंसणचरित्ता । तह दाणलाभभोगोवभोगविरियाणि सम्मं च ॥३०॥
चउन्नाणन्नाणतिगं दंसणतिगं पंच दाणलद्धीओ । संमत्तं चारित्तं च संजमासंजमो तइए ॥३१॥
चउगइचउक्कसाया लिंगतिगं लेसछक्कमण्णाणं । मिच्छत्तमसिद्धत्तं, असंजमो तुरियभावंमि ॥३२॥
पंचमगंमि य भावे जीवाभव्वत्तभव्वयाईणि । पंचण्हवि भावाणं, भेया एमेव तेवन्ना ॥३३॥
सुहहेउ कम्मपगई, पुण्णं दुहहेउ वुच्चई पावं । बायालीसं बासीइ, तेसिं भेया इमे कमसो ॥३४॥
तिरियाउसायमुच्चं, तित्थयरपणिंदिजाइतसदसगं । सुखगइसुवण्णचउगं आइमसंघयणसंठाणं ॥३५॥

निमिणायवनरसुरतिगपरघाउस्सासगुरुलहुज्जोयं । पणतणुउवंगतियमिय बायालं पुण्णपगिईओ ॥३६॥ पुण्यतत्त्वम् ।
थावरदसनिरयतिगं सेसा संघयणजाइसंठाणा । तिरिदुगुवघायकुखगइवण्णचउक्कं च अपसत्थं ॥३७॥
नाणंतरायदसगं, नव बीए नीयगोयमस्सायं । मिच्छं कसायपणुवीस पावपगिईउ बासीई ॥३८॥ पापतत्त्वम् ।
भवभमणहेउकम्मं, जीवो अणुसमयमासवइ जुत्तो । सो आसवो त्ति तस्स उ, बायालीसं भवे भेया ॥३९॥
इंदिय अव्वय जोगा, कसाय किरियाउ तेसिमे भेया । कमसो पंच य पंच य, तिन्नि य चउरो य पणवीसं ॥४०॥
सोयं चक्खुं घाणं, रसणा फरिसणमिइंदिया पंच । तह अव्वयजियवहमोसदिन्नमेहुणपरिग्गहया ॥४१॥
मणवयतणुजोगतियं, अपसत्थं तह कसाय चत्तारि । कोहो माणो माया, लोभो किरिया उ अह एया ॥४२॥
काइय अहिगरणीया, पाउसिया पारितावणी किरिया । पाणाइवायरंभियपरिगहिया मायवत्तीय ॥४३॥
मिच्छादंसणवत्ती अप्पच्चक्खाण दिट्ठि पुट्ठी य । पाडुच्चिय सामंतोवणीय नेसत्थि साहत्थी ॥४४॥
आणवण वियारणिया, अणभोगा अणवकंखपच्चइया । अन्ना पओग समुदाण पिज्ज दोसेरियावहिया ॥४५॥

एतासामर्थलेशोऽयम्—

कायेनायतमानेन निवृत्ता कायिकी क्रिया १, पशुवधादिप्रवर्त्तनेन वा खड्गादिनिर्वर्त्तनेन वाऽधिकरणिकी २, जीवाजीवयोरुपरि प्रद्वेषेण प्राद्वेषिकी ३, निर्वेदात् क्रोधादेश्च स्वपरयोः परितापनेन पारितापनिकी ४, एवं प्राणातिपातेन प्राणातिपातिकी ५, कृष्याद्यारम्भेणारम्भकी ६, धान्यादिपरिग्रहेण पारिग्रहिकी ७, मायया परवञ्चनेन मायाप्रत्ययिकी ८, जिनवचनाश्रद्धानेन

मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी ९, अविरत्या अप्रत्याख्यानिकी १०, कौतुकान्निरीक्षणेन दृष्टिकी ११, रागद्वेषाज्जीवाजीवस्वरूपप्रच्छनेन रागादश्वादीनां हस्तस्पर्शनेन वा पृष्टिकी स्पृष्टिकी वा १२, जीवाजीवौ प्रतीत्य कर्मबन्धनेन प्रातीत्यकी १३, गवाश्वादिकं किञ्चिद् द्रष्टुं समन्तादुपनिपतन्तं प्रशंसन्तं च लोकमवलोक्य हर्षकरणेन अनाच्छादितभाजने त्रसानां समन्तादुपनिपातेन च सामन्तोपनिपातिकी १४, राजाद्यादेशाभितरां यन्त्रशस्त्राद्याकर्षणेन नैशस्त्रिकी १५, जीवेन श्वानादिना अजीवेन शस्त्रादिना शशकादिकं मारयतः स्वाहस्तिकी १६, जीवाजीवयोराज्ञापनेन आनयनेन वा आज्ञापनिकी आनयनिकी वा १७, जीवाजीवयोः स्फोटनेन विदारणिकी १८, अनुपयोगाद्वस्त्वादानग्रहणेनानाभोगिकी १९, इहपरलोकविरुद्धाचरणेन अनवकाङ्क्षप्रत्ययिकी २०, दुष्प्रणिहितयोगत्रयेण प्रायोगिकी २१, अष्टानां कर्मणां येन समुपादानं भवति तेन सामुदानिकी २२, मायालोभनिश्रिता प्रेमिकी २३, क्रोधमाननिश्रिता द्वेषिकी २४, अकषायिणां केवलकाययोगबन्धेन ऐर्यापथिकी २५ । आश्रवतत्वम् ।

पिहियदुवारे गेहे, सरे य पविसइ जहा न रेणुजलं । तह पिहियासवदारे, न विसइ जीवेवि पावमलं ॥४६॥
तो असुहासवनिग्गहहेऊ इह संवरो विणिद्दिट्ठो । सो पुण पेगविहो विहु, इह भणिओ सत्तवन्नविहो ॥४७॥
तत्थ परीसहसमिईगुत्तीभावणचरित्तधम्मेहिं । बावीसपणतिबारसपणदसभेएहि जहसंखं ॥४८॥
खुहा पिवासा सीउण्हं दंसाचेलारइत्थिओ । चरिया निसीहिया सिज्जा अक्कोस वह जायणा ॥४९॥
अलाभरोगतणफासा, मलसक्कारपरीसहा । पण्णाअण्णाणसम्मत्तं इय बावीसं परीसहा ॥५०॥
इरिया भासा एसण, आयाणुस्सग्ग पंच समिईओ । मणगुत्ती वयगुत्ती, तणुगुत्ती गुत्तितियभेयं ॥५१॥



तत्र जिनवचनरुचौ जयन्ती श्राविका-कथा ।

भाविज्ज भावणाओ, बारस ताओ अणिच्च असरणया । चउगइभवस्सरूवं एगत्तण्णत्तअसुइत्तं ॥५२॥
आसवसंवरनिज्जरलोगसरूवाणि सुट्ठु देसित्तं । धम्मे जिणाण अइदुल्लहं च सम्मत्तवररयणं ॥५३॥
सामाइयं च छेओवट्ठावणियं च सुद्धपरिहारं । तह सुहमसंपरायं अहखायं पंचमचरित्तं ॥५४॥
सावज्जजोगविरइ त्ति, तत्थ सामाइयं दुहा तं च । इत्तरियमावकहियं पढमं पढमंतिमजिणाणं ॥५५॥
तित्थेसु अणारोवियवयस्स सेहस्स थोवकालीयं । सेसाणमावकहियं तित्थेसु विदेहयाणं च ॥५६॥
परियायस्स उ छेओ जत्थोवट्ठावणं वएसु च । छेओवट्ठावणमिह, तमणइयारेयरं दुविहं ॥५७॥ (ग्रन्थाग्रं ५०००)
सेहस्स निरइयारं तित्थंतरसंकमे व तं होज्ज । मूलगुणघाइणो साइयारमुभयं च ठियकप्पे ॥५८॥

स्थितास्थितकल्पः पुनरेवम्—

आचेलुक्कुद्देसिय, सिज्जायर रायपिंड किइकम्मे । वय जिट्ठ पडिक्कमणे, मासं पज्जोसवणकप्पो ॥५९॥
आचेलुक्कुद्देसिय, पडिक्कमणे रायपिंडमासेसु । पज्जुसणाकप्पंमि य अट्ठियकप्पो मुणेयव्वो ॥६०॥
आचेलुक्को धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स । मज्झिमयाण जिणाणं, होइ सचेलो अचेलो वा ॥६१॥
इह पुरिमपच्छिमाणं, जिणाण एगं मुणिं जमुद्दिस्स । आहारमाइविहियं, तं सव्वेसिं न कप्पेइ ॥६२॥
मज्झिमयाणं तु इमं, जं कयमुद्दिस्स तस्स चेव त्ति । नो कप्पइ सेसाण उ, तं कप्पइ एस मेर त्ति ॥६३॥
सपडिक्कमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स । मज्झिमयाण जिणाणं, कारणजाए पडिक्कमणं ॥६४॥

असणाइचउक्कं वत्थपत्तकंबलगपायपुंछणयं । निवपिंडंमि न कप्पइ, पुरिमंतिमजिणजईणं तु ॥६५॥
पुरिमेयराण ठियओ, मासकप्पो उ मज्झिमाणं तु । अट्ठियओ एमेव य, नेओ पज्जोसवणकप्पो ॥६६॥
चाउम्मासुक्कोसो, जहण्णओ सयरि दिवस थेराणं । पज्जोसवणाकप्पो, जिणाण उक्कोसओ चेव ॥६७॥
सिज्जायरपिंडंमि य, चाउज्जामे य पुरिसजिट्ठे य । किइकम्मस्स य करणे, ठिइकप्पो मज्झिमाणं पि ॥६८॥
सिज्जायरो पहू वा, पहुसंदिट्ठो य होइ कायव्वो । एगो णेगेवि पहू, पहुसंदिट्ठेवि एमेव ॥६९॥
सागारियसंदिट्ठे, एगमणेगे चउक्कभयणाओ । एगमणेगा वज्जा, णेगेसु य ठावए एगं ॥७०॥
अन्नत्थ वसेऊणं, आवस्सगचरिममन्नहिं कुणइ । हुंति तया दोवि तरा सत्थाइसु अन्नहा भयणा ॥७१॥
जइ जग्गंति सुविहिया, करंति आवस्सयं तु अन्नत्थ । सिज्जायरो न होइ, सुत्ते व कए व सो होइ ॥७२॥
दाऊण गेहं तु सपुत्तदारो, वणिज्जमाईहि उ कारणेहिं । तं चेव अन्नं व चइज्ज देसं सिज्जायरो तत्थ स एव होइ ॥७३॥
लिंगत्थस्सवि वज्जो, तं परिहरओ व भुंजओ वा वि । जुत्तस्स अजुत्तस्स व रसायणो तत्थ दिट्ठंतो ॥७४॥
तित्थयरप्पडिकुट्ठो, अन्नायं उग्गमोवि य न सुज्झे । अविमुत्तिअलाघवया, दुल्लहसिज्जाइ वुच्छेओ ॥७५॥
पुरपच्छिमवज्जेहिं, अविकम्मं जिणवरेहिं लेसेण । भुत्तं विदेहएहिय, न य सागरियस्स पिंडो उ ॥७६॥
बाहुल्ला गच्छस्स उ, पढमालियपाणगाइकज्जेसु । सज्झायकरणआउट्टिया करे उग्गमेगयरं ॥७७॥
दुविहे गेलन्नंमी १ निमंतणे, २ दव्वदुल्लहे ३ असिवे ४ । उमोयरिय ५ पओसे ६ भए ७ य गहणं अणुण्णायं ८ ॥७८॥

असणाईया चउरो, पाउंछणवत्थपत्तकंबलयं । सूइखुरकण्णसोहणनहरणिया सागरियपिंडो ॥७९॥
तणडगलछारमल्लगसिज्जासंथारपीढलेवाई । सिज्जायरपिंडो सो, न होइ सेहो य सोवहिओ ॥८०॥
शेषाः स्थितकल्पाः प्रतीताः ।
धिइसंघयणजुयाणं, विसिट्ठतवसुत्तसत्तजुत्ताणं । होइ नवण्ह मुणीणं, परिहारविसुद्धिओ कप्पो ॥८१॥
लोभाणुं वेयंतो, जो खलु उवसामओ व खवओ वा । सो सुहुमसंपराओ, अहखाया ऊणओ किंचि ॥८२॥
अकसायमहक्खायं, चरणं छउमत्थकेवलीणं च । उवसंतखीणमोहे सजोगजोगिंमि तं कमसो ॥८३॥
खंती य मद्दवज्जव, मुत्ती तवसंजमे य बोधव्वे । सच्चं सोअं आकिंचणं च बंभं च जइधम्मो ॥८४॥ संवरतत्त्वम् ।
पुव्वनिबद्धं कम्मं, महातवेणं सरंमि सलिलं व । निज्जिज्जइ जेण जिए, बारसहा निज्जरा सा उ ॥८५॥
अणसणमूणोयरिया, वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ । कायकिलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ ॥८६॥
पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ । झाणं उस्सग्गो वि य, अब्भिंतरओ तवो होइ ॥८७॥ निर्जरातत्त्वम् ।
जह तुप्पियस्स बंधो, रएण पहसंठियस्स होइ दढं । तह रागदोसजुत्तस्स, कम्मुणा होइ तं चउहा ॥८८॥
पुट्ठं बद्धनिधत्तं, निकाइयं च त्ति चउविहो बंधो । पयइट्ठिइअणुभागप्पएसभेएहि वा चउहा ॥८९॥ बंधतत्त्वम् ।
जह कंचणोवलाणं, अणाइसंजोगसंजुयाणं पि । पबलबहलप्पओगा, अच्चंतं होइ हु विजोगो ॥९०॥
तह जियकम्माणं पि हु, वरसुक्कज्झाणहुयवहवसेण । जो अच्चंतविओगो, सो मुक्खो नवविहो सो उ ॥९१॥

संतपयपरूवणया, दव्वपमाणं च खित्तफुसणा य । कालो य अंतरं भाग भाव अप्पाबहुं चेव ॥९२॥
संतं सुद्धपयत्ता, विज्जंतं खकुसुमं व न असंतं । मुक्खु त्ति पयं तस्स उ, परूवणा मग्गणाईहिं ॥९३॥
नरगइपणिंदितसभवसन्निअहखायखइयसम्मत्ते । मोक्खोणहारकेवलिदंसणनाणे न सेसेसु ॥९४॥ (दारं)
दव्वपमाणं सिद्धाण, जीवदव्वाणि हुंति णंताणि । लोगस्स असंखंसो(से) एगो सव्वेवि खित्तंमि ॥९५॥
फुसणा अहिया कालो, इगसिद्धमविक्ख साइओऽणंतो । पडिवायाभावाओ, सिद्धाणं अंतरं नत्थि ॥९६॥
सव्वजियाणमणंते, भागे ते तेसि दंसणं नाणं । खइए भावे परिणामिए च पुण होइ जीवत्तं ॥९७॥
थोवा नपुंससिद्धा, थीनरसिद्धा कमेण संखगुणा । इय मुक्खतत्तमेवं संखेवेणं समक्खायं ॥९८॥
आहारे आधेओवयारओ इत्थ मुक्खसद्देण । वुच्चंति फुडं सिद्धा, ते पुण पनरसविहा एवं ॥९९॥
जिणसिद्धअजिणसिद्धा तित्थसिद्धा य अतित्थसिद्धा य । तित्थंमि वट्टमाणे, जे सिद्धा तित्थसिद्धा ते ॥१००॥
तित्थे अवट्टमाणे, जाइसरणाइणा मुणियतत्ता । जे सिद्धिपयं पत्ता, अतित्थसिद्धा उ ते नेया ॥१०१॥
सयमेव बुद्धसिद्धा, तहेव पत्तेयबुद्धसिद्धा य । पढमा दुविहा एगे, तित्थयरा तदियरा अवरे ॥१०२॥
तित्थयरवज्जियाणं, बोही उवही सुयं च लिंगं च । नेयाइं तेसि बोही, जाईसरणाइणा होइ ॥१०३॥
मुहपत्ती रयहरणं, कप्पतिगं सत्तपायनिज्जोगो । इय बारसहा उवही, होइ सयंबुद्धसाहूणं ॥१०४॥
हवइ इमेसि मुणीणं, पुव्वाहीयं सुयं अहव नेव । जइ होइ देवया से, लिंगं अप्पइ अहव गुरुणो ॥१०५॥

तत्र जिनवचनरुचौ जयन्ती श्राविका-कथा ।

जइ एगागी वि हु विहरणक्खमो तारिसी व से इच्छा । तो कुणइ तमन्नह गच्छवासमणुसरइ नियमेण ॥१०६॥

पत्तेयबुद्धसाहूण, होइ वसहाइदंसगा बोही । पुत्तियरयहरणेहिं, तेसि जहण्णो दुहा उवही ॥१०७॥

मुहपत्ती रयहरणं, तह सत्तयपत्तयाइनिज्जोगो । उक्कोसोवि नवविहो, सुयं पुणो पुव्वभवपढियं ॥१०८॥

इक्कारस अंगाइं, जहण्णओ होइ तं तहुक्कोसं । देसेण असंपुण्णाइं, हुंति पुव्वाइं दस तस्स ॥१०९॥

लिंगं तु देवया देइ, होइ कइयावि लिंगरहिओ वि । एगागि च्चिय विहरइ, नागच्छइ गच्छवासे सो ॥११०॥

तह बुहबोहियसिद्धा, नपुंसलिंगंमि इत्थिलिंगंमि । नरलिंगे तह सिद्धा, गिहअन्नसलिंगसिद्धा य ॥१११॥

ते इह एगगसिद्धा इक्किक्का इक्कसमयसिद्धा जे । इक्कसमए अणेगे, जे सिद्धा णेगसिद्धा ते ॥११२॥

एमाइ सुयवियारो जयंति ! उल्लसिरजुत्तिपब्भारो । निच्चंपि जस्स रुच्चइ, सो मुच्चइ झत्ति कम्मेहिं ॥११३॥"

तएणं सा जयंती समणोवासिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासि—

"कहन्नं भंते ! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति ? जयंती ! पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं । भवसिद्धियत्तणं भंते ! जीवाणं किं सहावओ ! परिणामओ ? जयंती ! सहावओ, नो परिणामओ । सव्वेवि णं भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति ? हंता जाव सिज्झिस्संति । जइ णं भंते ! सव्वे भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति तम्हा णं भवसिद्धियविरहिए लोए भविस्सइ ? नो इणट्ठे समट्ठे । से केणट्ठेणं भंते ! एवमुच्चइ—"सव्वेवि णं भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति, नो चेव णं भवसिद्धियजीवविरहिए लोए भविस्सइ ?" जयन्ती !

से जहानामए सव्वागाससेढी सिया अणाइया अणवदग्गा परित्ता [एकप्रदेशिकत्वेन विष्कम्भाभावेन परिमिता] परिवुडा [श्रेण्यन्तरैः परिकरिता], सा णं परमाणुपुग्गलमेत्तेहिं खंडेहिं समए २ अवहीरमाणी २ अणंताहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरइ, नो चेव णं अवहिया सिया, से एएणट्ठेणं जयंती ! एवं वुच्चइ–"सव्वेवि णं जाव भविस्सइ"। सुत्तत्तं भंते ! साहू, जागरियत्तं साहू ? जयंती ! अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, अत्थेगइयाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू। से केणट्ठेणं तं चेव ? जयंती ! जे इमे जीवा अहम्मिया अहम्माणुया अहम्मिट्ठा अहम्मक्खाई अहम्मोवजीवी अहम्मपलोई अहम्मपलज्जणा अहम्मसीलसमुदायारा अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति एएसिणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, एए णं जीवा सुत्ता समाणा नो बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं दुक्खणयाए जाव परियावणयाए वट्टंति, एएणं जीवा सुत्ता समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा नो बहूहिं अहम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोयति, एएसिणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू। जयंती ! जे इमे जीवा धम्मिया जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति एएसिणं जीवाणं जागरियत्तं साहू। एए णं जीवा जागरा समाणा बहूणं पाणाणं ४ अदुक्खणयाए जाव अपरियावणयाए वट्टंति, एएणं जीवा जागरा समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा बहूहिं धम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोइत्तारो भवंति, एए णं जीवा जागरा समाणा पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरइत्तारो भवंति, एएसिणं जीवाणं जागरियत्तं साहू। से एएणट्ठेणं जयंती ! एवं वुच्चइ अत्थेगइयाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, अत्थेगइयाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू। एवं बलियत्तं दुब्बलियत्तं। नवरं एएणं जीवा बलिया समाणा बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमाइएहिं विचित्ततवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति। एवं दक्खत्तं आलसियत्तं। नवरं एएणं जीवा दक्खा समाणा बहूहिं आयरियवेयावच्चेहिं उवज्झायथेरसेहगिलाणतवस्सिकुलगणसंघसाहम्मियवेयावच्चेहिं अत्ताणं संजोइतारो भवंति" इति।



तत्र जिनवचनरुचौ जयन्ती श्राविकाकथा।

इय जिणवरमुहकमलाउ निग्गयं सुहुमअत्थमयरंदं । भमरी इव रुइसारं, पियइ जयंती अतिप्पंती ॥१॥
अह सा दढसंमत्ता, उदयणमापुच्छिउं भवविरत्ता । पव्वज्जइ पव्वज्जं, पच्चक्खिय सव्वसावज्जं ॥२॥
इक्कारसअंगधरा, बंधुरसद्धा विसुद्धचरणभरा । निहणेवि कम्मजालं, पत्ता ठाणं सुहविसालं ॥३॥

इति शुचिरुचिरां रुचिं दधत्या, शिवसुखमक्षयमाश्रितं जयन्त्या ।
भवभवभयभारभीतचित्ता, भवत तदत्र कृताशयाः समन्तात् ॥४॥

॥ इति जयन्तीकथा ॥

इत्युक्तो गुणवतो जिनवचनरुचिरिति पञ्चमो भेदः, तदुक्तौ च समर्थितं तृतीयं गुणवानिति भावश्रावकलक्षणम्, अधुना ऋजुव्यवहारीति चतुर्थं तदाह ।

**उजुववहारो चउहा, जहत्थभणणं १ अवंचिगा किरिया २ ।**
**हुंतावायपगासणं ३ मित्तीभावो य सब्भावा ४ ॥४७॥**

ऋजु–प्रगुणं व्यवहरणम् 'ऋजुव्यवहारो' भावश्रावकगुणः 'चतुर्द्धा' चतुष्प्रकारो भवति । तद्यथा–'यथार्थभणनम्'–अविसंवादिवचनम्, धर्मव्यवहारे क्रयविक्रयव्यवहारे साक्षिव्यवहारादौ वा, अस्य भावार्थः—

परवंचणबुद्धीए, धम्ममधम्मं अधम्ममवि धम्मं । न भणंति भावसड्ढा, भणंति सच्चं च महुरं च ॥१॥

कयविक्कयसट्टीसुवि, ऊणब्भहियं कहति न हु अग्घं । सक्खित्तेवि निउत्ता, न अन्नहा वाइणो हुंति ॥२॥
रायसभाइ गयावि हु, जणं न दूसंति अलियभणिएहिं । धम्मोवहासजणगं, वयणं वज्जंति धम्मरया ॥३॥ कमलश्रेष्ठिवत् ।

तत्कथा चैवम्—

इह विजयपुरे नगरे, न गरीयःसंपदापरित्यक्ते । आसीद्दासीकृतरिपुभूपो भूपो यशोजलधिः ॥१॥
जिनधर्मसारसहकारकीरसदृशः सुसत्यवचनरतः । नगरश्रेष्ठी कमलः, कमलश्री प्रणयिनी तस्य ॥२॥
पुत्रस्तयोश्च विमलो, नाम्ना निजचेष्टया पुनः समलः । दोषाकरः कलानां, कुलसद्म तथापि न हि सोमः ॥३॥
वारयतोऽपि पितुः स तु, वृषभगणैरुचितपण्यमादाय । मलयपुरे सोपारकसीमपुरेऽगात् स्थलपथेन ॥४॥
विक्रीय तत्र निजपण्यमन्यदादाय निजपुराभिमुखम् । स हि यावदचलदचलां चलयन्निव वृषभपदपातैः ॥५॥
तावदकालघनाघनघनमुक्तजलैः प्रपूरिता मार्गाः । कतिपयदिनानि सोऽस्थात्, तत्रैव च्छादनीं कृत्वा ॥६॥
अथ सागराभिधानः, सागरमुत्तीर्य तत्र सम्प्राप्तः । निजनगरवणिक् ददृशे, विमलेनैवं स उक्तश्च ॥७॥
भद्रैहि निजं नगरं, यावो यमकमपि सागरोऽप्याह । आगमयस्व सखे ! मां पक्षं सोऽप्याख्यदामेति ॥८॥
अथ सागरस्य पण्यं, विनिमेययतोऽन्तरा कमलसूनुः । जग्राह हस्तसंज्ञादिना सहस्राणि दश हेम्नः ॥९॥
सागरविमलौ तुरगारूढौ तौ सोमभीमगुणकलितौ । स्वपुरमभि सोमभीमाविवेह चलितौ विहितकार्यौ ॥१०॥
यावन्निजनगरसमीपमगमतां तावदाययौ कमलः । सूनोः सम्मुखमेतौ, प्रणेमतुस्तस्य पदकमलम् ॥११॥

४ ऋजुव्यवहारीति भावश्रावकलक्षणम् ।

तत्र यथार्थभणने कमलश्रेष्ठिकथा ।

चेलुस्त्रयोऽपि सममेत्र, सागरः स्माह तदनु हे मित्र ! । दृष्टवददृष्टमपि ते, किञ्चन कथयामि शुद्धमते ! ॥१२॥
किञ्चिदितः परतः खलु, गच्छति गन्त्री भृता प्रधानान्नैः । खेटयति तां च विप्रो, निकृष्टकुष्ठप्रसरविधुरः ॥१३॥
तत्र च दक्षिणपक्षे, समस्ति युक्तो गलिः सुरभिसूनुः । खञ्जश्च वामचरणे, वामे पार्श्वे वहति वृषभः ॥१४॥
खेटयति चरणचारी, वेल्लकगन्त्रीमसंस्पृशन् श्वत्रवः । कस्यापि वधू रुष्टा, पश्चादागात्तनयगर्भा ॥१५॥
कृतकुङ्कुमाङ्गरागा, बकुलश्रीदामविरचितवतंसा । सव्रणदेहा रक्तोत्तरीयका प्रसविनी शीघ्रम् ॥१६॥
वेल्लकगन्त्र्यारूढा, सा गच्छति तदनु कमलसुत ऊचे । ज्ञानीव किमिति जल्पसि, विकल्पसंकल्पनाविकलम् ॥१७॥

यतः—

मुखमस्तीति वक्तव्यं, यद्वा तद्वापि बालिशाः । जल्पन्ति न जितात्मानो विशेषेण भवादृशाः ॥१८॥
सागरः स्माह हे भ्रातरभ्रान्तमुदितं मया । शक्यते नान्यथा कर्तुं, कथश्चिच्छुद्धहेतुवत् ॥१९॥
हस्ते सत्कङ्कणे प्राप्ते, कार्यं किं दर्पणेन वा । प्रत्यासन्नैव सा गन्त्री, याति मित्र ! विनिश्चिनु ॥२०॥
विमलोऽवोचदेवं किं धृष्टतामवलंबसे ? । स प्रोचे धृष्ट एवास्मि, त्वया धृष्टेन वच्मि यः ॥२१॥
विमलस्तद्धने लुब्धः, प्रोचे सत्यमिदं यदि । तत्ते स्यान्मम सर्वस्वं, तावकं त्वन्यथा मम ॥२२॥
क्रुध्यंस्तद्वचसाऽऽहत्य हस्तं हस्तेन सागरः । बभाषे कमलं श्रेष्ठिन् ! साक्षिकोऽत्र त्वमावयोः ॥२३॥
श्रेष्ठ्याह यद्ययं मूर्खस्तत् किं त्वमपि सागर ! । विमलः प्राह किं तात ! लाघवं कुरुषे मम ॥२४॥

सागरो व्याकरोदेवं, श्रेष्ठिन् ! यद्येष ते सुतः। मत्पादयोर्लगत्युच्चैर्हुड्डातस्तु त्यजाम्यहं ॥२५॥
विमलोऽवक् लगिष्यन्ति, कुर्कुरास्तव पादयोः। नित्यं बम्भ्रमतो भिक्षां, गृहीते त्वद्धने मया ॥२६॥
एवं विवदमानौ तौ, यान्तौ गन्त्र्या अमीलताम्। अवीक्ष्य योषितं तत्र, हर्षुलो विमलोऽजनि ॥२७॥
पृष्टश्च सारथिस्तेन, सा योषित् किं न वीक्ष्यते। स ऊचे भद्र ! सा गुर्वी, प्रसवाय वने ययौ ॥२८॥
अत्रैव पत्तनेऽमुष्या विद्यते जननी ततः। तस्मै कथयितुं वार्तां, मातङ्गः प्रैषि तत्र हि ॥२९॥
विप्रोऽहमेषा वणिक्स्त्री रुष्टाऽगाद्धर्तृताडिता। प्रातिवेश्मिकसौहार्दान्नैवेतां त्यक्तुमुत्सहे ॥३०॥
इतश्च तत्र तन्माता, स मातङ्गोऽपि चाययौ। तस्याश्च पुत्रः संजज्ञे, विप्राय च निवेदितः ॥३१॥
इत्यवेत्य पितापुत्रौ, चेलतुः स्वगृहं प्रति। स्वपण्यं मद्गृहे प्रेष्यं, विमलं सागरोऽभ्यधात् ॥३२॥
स प्रोचे ते यथा भाति तथोपहस नः सखे !। दध्यकौ सागरः किं मे, कलहेनामुनाधुना ॥३३॥
ध्यात्वेति विमलपण्यं, सर्वं निजवाटकाश्रितं कृत्वा। निजसद्म सागरोऽगादितरावपि जग्मतुः स्वगृहम् ॥३४॥



नूतनघनमलिनमुखो, विमलः कमलस्य सम्मुखमथाख्यत्। निस्तरणीयः कथमापदापगापतिरयं तात ! ॥३५॥
तात ! विचिन्तय मध्यस्थभावमाधाय वास्तवमिहार्थम्। हसितभणितान्यपि कथं, पश्यत दूरं विलुठितानि ॥३६॥
तत् त्वं गत्वा बोधय, सागरमिव सागरं सुदुष्पूरम्। न हि कोऽपि निजं धनमर्पयिष्यते हसितभणितेन ॥३७॥
कमलः कमलसुकोमलवाचमुवाचेति सत्यकृतसन्धः। मा वत्स ! गच्छ कुपथे, स्मर निजभणितानि नयनिपुण ! ॥३८॥

यानि वचनानि नन्दन ! हसतापि सता सता प्रयुक्तानि। तन्निर्वहणे तस्योल्लसति सदा निरवधिः सन्धा ॥३९॥

यतः—

गच्छतु लक्ष्मीः परिभवतु परिजनः सज्जना विघटयन्तु। प्रतिपन्नपालने सत्पुसां यद् भवति तद् भवतु ॥४०॥

इत्युक्तः कुपितमना, विमलः समलं जगौ जरन्मूर्ख ! । जोषं पोषन्निजगृहपल्वलकमलः कमल ! भूयाः ॥४१॥

एवं प्रजल्प्य विमलः, प्राभृतभृद् भूभृदन्तिकं गत्वा। उचितस्थाने न्यषदत् विषण्णमूर्त्तिर्नृपं नत्वा ॥४२॥

राजाऽऽह किं विषण्णः, स प्रोचे सागरोऽऽग्रहीद् द्रव्यम्। किमिति क्षितिपतिनोक्ते, सोऽवोचत् पृच्छयतां सैव ॥४३॥

आकार्याथ नृपतिना, पृष्टः सागर उवाच तद्वृत्तम्। कौतुकयुक् नृप आख्यत् कथमिदमज्ञायि भो ! भवता ॥४४॥

सागर आह सविनयं, माकन्दफलानि देव ! बुबुधेऽहम्। तद्वासितभूनिपतितकोद्रवतृणनिकरगन्धेन ॥४५॥

उपविशति गलिर्बहुशो धूलिप्रतिबिम्बतः स तु ज्ञातः। वामे पार्श्वे खञ्जः, पदानुसारान्मयाऽज्ञायि ॥४६॥

गलितं करपत्र्यम्भो वालधिवालान् प्रतोदखण्डानि दृष्ट्वा शुचित्वकोपित्वतो मया निश्चितो विप्रः ॥४७॥

भग्ने तोत्रे शाखाखण्डं मुमुचे यतः क्षितौ तेन। अस्पृश्योऽज्ञायि मया गन्त्र्या उत्तीर्य विप्रोऽथ ॥४८॥

अभ्युक्ष्य तत्तु जगृहे, तत्पदरासिकां निरीक्ष्य भूलग्नाम्। बहुमक्षिकापरिगतां विप्रः कुष्ठी ततो जज्ञे ॥४९॥

वेल्लकगन्त्र्या उत्तीर्य भामिनी भामशालिनी सा तु। बदरीवणस्य मध्ये, निषसाद शरीरचिन्तायै ॥५०॥

दक्षिणहस्तोपष्टम्भतस्त्वसावुत्थितेति सुतगर्भा। संवीक्ष्य शौचसलिलं विरचितघुसृणाङ्गरागेति ॥५१॥

बदरीकण्टकलग्नांस्तदुत्तरीयस्य रक्तसूत्रलवान् । अवलोक्य रक्तचीवरपरिकलिता सा मया ज्ञाता ॥५२॥
पश्चान्मुखानि तस्याः, पदानि किल सिकतिले स्थले वीक्ष्य । अवलोकयते पश्चान्मुखमिति रुष्टा मया बुबुधे ॥५३॥
केशकलापात् पतितान् वीक्ष्यामलबकुलमालिकावयवान् । ज्ञाता सबकुलदामा व्रणयुक् पदपट्टदर्शनतः ॥५४॥
धुर्येव चूतगन्त्र्याः सारथिरुपविशति भुवि च वनितायाः । अनिरीक्ष्य पादपङ्क्तिं वेल्लकगत्री विनिश्चिक्ये ॥५५॥
राजाऽऽह कोऽत्र सागर ! साक्षी स प्राह देव ! कमल इति । नृप आख्यत् यद्येवं याति धनं तर्हि तस्यैव ॥५६॥
सागर आख्यदेवं देव ! तथापि च सुधार्मिकधुरीणः । नित्यं सत्यं वक्ता, मम प्रमाणं स एवास्तु ॥५७॥
आह्वाय्य भूमिपतिना, कमलो मधुमधुरया गिरा प्रोचे । व्यतिकरमिममखिलं, त्वं वेत्सि ततो वद यथावृत्तम् ॥५८॥
कमलः स्पष्टमभाषिष्ट, शिष्टजनगर्हितं कुगतिजनकम् । अन्योऽपि कोऽप्यलीकं न वदति किमु विदितजिनवचनः ॥५९॥
सज्जनकार्येप्ययथार्थभणनमङ्गति न सङ्गतिं देव ! । येनैष एव शुचिसत्यवचनकनकस्य कषपट्टः ॥६०॥
यदि च यथास्थितभणने, कुप्यति तनयो विरज्यते सुजनः । इत्यपि भवतु तथापि च, न युक्तमयथार्थभणनं तु ॥६१॥



यत उक्तम्—

"निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदिवा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" ॥६२॥

स्वयमेव वेत्ति देवो यो यादृक्षस्तथापि मामेवम् । पृच्छति यथास्थितं तत् सागरभणितं प्रमाणमिह ॥६३॥

श्रुत्वैवं पुलकिततनुरतनुमुदा मेदुरो विशामीशः । शुचिकमलकण्ठपीठाधारं हारं निजं चक्रे ॥६४॥
अभणच्च यथा सत्यं, नित्यं लोकं करोति कृतकृत्यम् । सत्यं सत्यङ्कारितघनसुकृतधना जनाः प्राहुः ॥६५॥
सत्येन रत्नगर्भा, सुरत्नगर्भा पदे पदे पुंसाम् । सत्याय स्पृहयालुर्हृदयालुरयं जनः सर्वः ॥६६॥
सत्यात् फलन्ति फलदा, जलदा जलदाननैपुणाः काले । सत्यस्येयं परमा, महिमा ज्वलनप्रशमनाद्या ॥६७॥
सत्ये सत्ये तस्मिन्, न दुर्गतिभवं भयं भवति पुंसाम् । दृढसत्यसत्यव्रादिषु, धुरि पट्टः कमल ! तत्तेस्तु ॥६८॥
इत्युक्त्वा मुदितमनाः सुमनायितसज्जनस्य कमलस्य । सुविशालभालपट्टे हाटकपट्टं बबन्ध नृपः ॥६९॥
विमलं निजगाद पुना रसनाच्छेदार्होऽसि रे दुष्ट ! । किन्तु कमलाङ्गभूरिति मुक्तोऽसि विमुक्तसत्यधनः ॥७०॥
अथ सागरोऽपि हृष्टो न्यगदज्जगतीश! सकलमपि पण्यम् । पुण्यात्मनोऽर्पयिष्ये गतलोभमलस्य कमलस्य ॥७१॥
क्षितिपतितिलकेन, समृद्धशुद्धिसद्बुद्धिरञ्जितेन भृशम् । सचिवशचीवरपदसलिलसागरः सागरश्चक्रे ॥७२॥
निरतो यथार्थभणने, कमलः कमलामनाविलामाप । प्रव्रज्य विमलकेवलकलितः शिवसौधमध्यास्त ॥७३॥

एवं मृषाविटपिपाटनदीप्तदन्तदन्तावलस्य कमलस्य निशम्य वृत्तम् ।
त्यक्त्वा जना ! जनितवाच्यमसत्यवाक्यं नित्यं यथार्थभणने कुरुत प्रयत्नम् ॥७४॥

॥ इति कमलश्रेष्ठिकथा ॥

इत्युक्त ऋजुव्यवहारे यथार्थभणनस्वरूपः प्रथमो भेदः, सम्प्रति द्वितीयं भेदमाह–'अवंचिगा किरिय'त्ति 'अवञ्चिका' पराव्य-

सनहेतुः क्रिया-मनोवाक्कायव्यापाररूपेति द्वितीयमृजुव्यवहारलक्षणम्-

उक्तं च—

तप्पडिरूवगविहिणा, तुलापलाईहि ऊणमब्भहियं । दिंतो लिंतो वि परं, न वंचए सुद्धधम्मत्थी ॥१॥
वंचणकिरियाइ इहंपि केवलं पावमेव पिच्छंतो । तत्तो हरिनंदी इव नियत्तए सव्वहा सुमई ॥२॥ इति ।

कः पुनरयं हरिनंदी ? तत्कथोच्यते—

उज्जेणी पुरवरीए बहिया वणवीहियाइ ववहरइ । हरिनंदिवणी दारिद्दरुद्ददंदोलिदुमविहगो ॥१॥
आसन्नसन्निवेसाउ अन्नया आगया वणे तस्स । आहीरी ववहरिउं, एगा घयमाइ घित्तूणं ॥२॥
तं विक्किणिउं किणिउं च लोणातिल्लाइ सा पयंपेइ । सिट्ठि ! बिसिट्ठं रूवगदुगस्स कप्पासमप्पेसु ॥३॥
सो य समग्घो समए, तंमि य तो तोलिउं दुवे वारे । इगरूवगस्स अप्पइ, सा मुद्धा बंधए गंठिं ॥४॥
तं तह दट्ठुं सिट्ठी, विचिंतए परपवंचणानिउणो । अज्ज मए अज्जिणिओ, अकिलेसं रूवगो एगो ॥५॥
इय चिंतिउं विसज्जइ, इमो अणुज्जु(ओ)तमुज्ज(ज्जु)यं सज्जो । इत्तो तवणिनिमित्तं, पत्ता से गेहिणी तत्थ ॥६॥
सा तवणिं उवणेउं, भणिया घयखंडसमियमाईणि । एयाइं गिण्ह सिग्घं, करेसु तं घेउरे पवरे ॥७॥
सा ताइं गहिय सगिहे, गंतुं तुट्ठा करेइ घयपुण्णे । सिट्ठी उट्ठिय हट्टाउ न्हाउं पत्तो नई इत्तो ॥८॥
कत्तो य आगओ तग्गिहंमि जामाउओ वयंसजुओ । अइऊसग त्ति भुत्तुं ते घयपुण्णे गओ तुरियं ॥९॥

४ ऋजुव्यवहारीति भावश्रावकलक्षणम् ।

तत्र अवञ्चिका क्रियायां हरिनन्दि कथा ।

अह न्हाउ गिहं पत्तो, सिट्ठी साहावियं चिय कुभत्तं । परिविट्ठं दट्ठुं सुट्ठु रुट्ठओ भणइ इय भज्जं ॥१०॥
किं अलसे ! घयपुण्णा, न कया सा भणइ ते कया किंतु । ते सव्वेवि समित्तो तुह जामाऊ गओ जिमिउं ॥११॥
इय सोउं स विसण्णो तंपि य जिमिउं पुरीबहिं गंतुं । अणुतावतावियमणो इय अप्पं निंदए सिट्ठी ॥१२॥
ही वंचिया मुहाए, धणलवलुद्धेण सा मए मुद्धा । अन्नेहि तयं भुत्तं, पावं मह चेव संजायं ॥१३॥
हद्धी इच्चिरकालं, परवंचणपवणमाणसेण मए । दूसहदुहनरयदावग्गिइंधणं कह कओ अप्पा ? ॥१४॥
इय झूरंतो जा जाइ, किंपि भूभागमग्गओ ताव । मग्गंमि मुणिं एगं, गच्छंतं दट्ठुमिय भणइ ॥१५॥
भयवं ! पडिक्खसु खणं, भणइ इमो गच्छिमो सकज्जेणं । सिट्ठीवि आह किं कोवि नाह ! परिभमइ परकज्जे ॥१६॥
अइसयनाणी साहू, भणेइ तं चिय भमेसि परकज्जे । सो मम्मे इय पुट्ठो बुद्धो तेणेव वयणेण ॥१७॥
हरिनंदी आणंदियहियओ वंदिय मुणिं भणइ कत्थ । चिट्ठह तुब्भे भयवं ?, भणइ मुणी इत्थ उज्जाणे ॥१८॥
तो मुणिकहियं धम्मं सोउं विण्णवइ पहु ! तुहसमीवे । गिण्हिस्समहं दिक्खं, नवरं पुच्छिय सयणवग्गं ॥१९॥
पणमित्तु मुणिं गेहे, पत्तो मेलित्तु जंपए सयणे । इह तारिसो न लाभो, ता दिसि जत्ताइ गच्छामि ॥२०॥
इत्थ दुवे सत्थाहा, एगो नियरयणपगगमप्पेइ । तह नेइ इच्छियपुरं पुव्वविढत्तं न मग्गेइ ॥२१॥
बीओ न देइ किंचिवि, इच्छियनयरं च नहु पराणेइ । पुव्वज्जियंपि गिण्हइ, वएमि तो भणह केण समं ? ॥२२॥
ते बिंति पढमएणं, सिट्ठी वज्जरइ नियह आगंतु । तो ते पमोयकलिया चलिया सह तेण मग्गंमि ॥२३॥

हयवसहाइ अदट्ठुं भणंति ते कत्थ सत्थवाहो सो ? । उ नियह निसन्नमसोगहिट्ठओ संसए सिट्ठी ॥२४॥
तो ते विम्हइयमणा, सयणा नमिउं मुणिं समासीणा । पणमिय पुच्छइ सिट्ठी, को इत्थ पसत्थसत्थाहो ? ॥२५॥
साहू साहइ इह दव्वभावभेया दुहा उ सत्थाहो । तत्थ य पढमो नियपोसगुज्जुओ सयणवग्गुत्ति ॥२६॥
सो दुहियस्सवि जीवस्स, देइ न य कहवि किंपि सुकयधणं । परभवपहे पयट्टस्स, तस्स न पयंपि सह चलइ ॥२७॥
कलहाइएहिं एसो, लुंपइ पुव्वज्जियंपि सुकयलवं । बीओ पुण सत्थाहो सुगुरुगुणरयणगणकलिओ ॥२८॥
जिणसासणसुद्धागरसंभूए निम्मले य सच्छाए । सो सम्मं देइ निए, पंचमहव्वयमहारयणे ॥२९॥
जं तेहिं पंच रयणेहिं, अज्जियं सुहकरं सुकयदव्वं । न य तं कयावि गिण्हइ, कमेण पावेइ सिवनयरं ॥३०॥
इय सोउं संविग्गो, हरिनंदी गिण्हए समणधम्मं । सयणावि ससत्तीए, धम्मं गहिउं गया सगिहे ॥३१॥
हरिनंदी परवंचणकिरियासरियाइ सोसणिक्करवी । कयसक्किरिओ अकिरियठाणंमि कमेण संपत्तो ॥३२॥

इत्यवेत्य हरिनन्दिवज्जनाः, पापसन्तमसदर्शयाभिनीम् ।
संविमुच्य परवञ्चिकां क्रियां, सत्क्रियाः स्थ यदि वाऽक्रियेच्छवः ॥३३॥

## इति हरिनन्दिकथा ॥

इत्युक्त ऋजुव्यवहारेऽवञ्चिका क्रियेति द्वितीयो भेदः, सम्प्रति भाव्यपायप्रकाशनस्वरूपं तृतीयं भेदमाह–'हुंतावायपगासणं' ति। 'हुंत'त्ति–प्राकृतशैल्या भाविनोऽशुद्धव्यवहारकृतो येऽपायास्तेषां प्रकाशनं प्रकटनं करोति, 'भद्र ! मा कृथाः पापानि चौर्यादीनि

४ ऋजुव्य-
वहारीति
भावश्रावक-
लक्षणम् ।

तत्र भाव्य-
पायप्रका-
शने भद्र-
श्रेष्ठिकथा ।

इह परत्र चानर्थकारीणि' इत्याश्रितं शिक्षयति, भद्रश्रेष्ठीव निजपुत्रं धनम्, न पुनरन्यायप्रवृत्तमप्युपेक्षत इति भावः ।

**भद्रश्रेष्ठिकथा चैवम्—**

हरिदेहं पिव भद्दिलपुरमत्थि सुवण्णगसंगयं सुगयं । तत्थ सुपसत्थनयकुंजकेसरी केसरी राया ॥१॥
सिट्ठी भद्दो भद्दो, दंती व दाणपसरदुल्ललिओ । तस्स पवंचणपवणो धणलुद्धमणो धणो तणओ ॥२॥
मुणिचित्तं व सकरुणं, सअज्जुणं पंडवाण सिन्नं व । ते कीलिउं कयावि हु, दुवेवि उज्जाणमणुपत्ता ॥३॥
उव्वूढखमाभारं, निव्वूढदयं परूढगुरुवंसं । सेलंपि व सुपइट्ठं, सुपइट्ठमुणिं नियंति तहिं ॥४॥
ते तं समणुत्तममुत्तमंगसुनिविट्ठकरयला नमिउं । निसियंति उचियठाणे, तो धम्मं कहइ इय सुमुणी ॥५॥
कमलसरं पिव मरुमंडलंमि तमसंमि रयणदीवं व । नरभवमिह दुलहं लहिय कुणह सत्तीइ जिणधम्मं ॥६॥
इय सुणिय पियपुत्ता पहिट्ठचित्ता गहित्तु गिहिधम्मं । मुणिचरणे जयसरणे, नमिउं पत्ता निए सरणे ॥७॥
भाविबहुभद्दसंदोहसुंदरो भद्दमाणसो भद्दो । ववहारसुद्धिनिरओ गिहिधम्मं पालइ विसुद्धं ॥८॥
हट्टंमि ठिओ निच्चं, धणो पुणो लुद्धओ धणे धणियं । कूडक्कयविक्कयतुल्लमाणमाईहिं ववहरइ ॥९॥
अणविक्खिवउं अवाए, तेणाणीयंपि लेइ पच्छन्नं । तं नाउ सो उ पिउणा मिउणा वयणेण इय भणिओ ॥१०॥
वच्छ ! अपत्थं पच्छा, अपत्थभत्तं व दोसपडिहत्थं । अन्नाएणं दविणस्स, अज्जणं सज्जणा बिंति ॥११॥
अन्नाएण विढत्तं, दव्वमसुद्धं असुद्धदव्वेणं । आहारोवि असुद्धो, तेण असुद्धं सरीरं पि ॥१२॥

देहेण असुद्धेणं, जं जं किज्जइ कयावि सुहकिच्चं । तं तं न होइ सहलं बीयं पिव ऊसरनिहित्तं ॥१३॥

किं च—

भाविअवाए अन्नयपहपहियाणं नराण चिंतेसु । निज्जियकज्जलपसरो, अजसभरो फुरइ भुवणंमि ॥१४॥

इहयंपि हुंति कारापवेसवहबंधहत्थछेयाई । परलोए पुण दारुणनरगाइसु दुक्खरिंछोली ॥१५॥

संपासंपायचलं, जलजलणनरिंदमाइसाहीणं । विहवलवं नाउं अण्णायउज्जुओ को हविज्ज इहं ? ॥१६॥

वच्छ ! वियाणसु, अन्नायअज्जियं उज्झियंपि विहवभरं । पज्जंते अइविरसं सु(दु)ज्जयभवमूलभावं च ॥१७॥

अइलोहनेहपूरियअन्नायपईवभाविणा इमिणा । नियवयभरभंजणखंजणेण को मइलए अप्पं ? ॥१८॥

इय जंपिओवि पिउणा, सो गुरुणा लोहकम्मणा मलिणो । नहु किंपि तं पवज्जइ, चिट्ठइ पुव्वं व अनयपरो ॥१९॥

अह चोरेणिक्केणं, वरकुंडलजुयलसंजुयं हारं । उवणीयं झत्ति धणो, धणेण थोवेण गिण्हेई ॥२०॥

चोरकराओ कइयावि, जाव रयणावलिं स गिण्हेइ । निवसिरिहरिओ, विमलो ता पत्तो तस्स हट्टंमि ॥२१॥

तेण य भणिओ वरसिचयसंचए दंसए धणो जाव । ताव धणउड्डियाए, पडिया रयणावली झत्ति ॥२२॥

तं गहियं उवलक्खिय, विमलो पुच्छेइ सिट्ठि ! किं एयं ? । जा किंपि न सो जंपइ, खुहिओ ता जंपए विमलो ॥२३॥

अन्नंपि इमीइ समं, नट्ठं वरहारकुंडलाईयं । तुह पासे तंपि अहं, मन्ने ता लहु समप्पेसु ॥२४॥

अन्नह निवेण नाए, धणेण देहेण वा न छुट्टिहिसि । अह हणहणित्ति भणिरो, संपत्तो तलवरो तत्थ ॥२५॥

बद्धो तेण धणो विमलपुच्छिओ सो य भणइ जह अज्ज ! । लद्धो इक्को चोरो, सोहिज्जंतेण तेण इमो ॥२६॥
कहिओ मोसट्ठाणं, नरवरआहरणमाइ सव्वाणं । तो रयणावलिसहिओ, स तेण नीओ निवसमीवे ॥२७॥
तो भिउडिभासुरेणं, निवेण सेहाविओ धणो अहियं । रयणावलिकुंडलहारमाइ सव्वं समप्पेइ ॥२८॥
इय सोऊण अखुद्दो, भद्दो गंतूण निवइपासंमि । दाउं पभूयविहवं, कहकहमवि मोयए पुत्तं ॥२९॥
तो नाउं बहुअवायं, चइऊण दुहावि दुज्जणं व धणं । दिक्खं गिण्हिय जाओ, भद्दो भद्दाण आभागी ॥३०॥
मुक्कववहारसुद्धी, सुमहंतसमुल्लसंतधणगिद्धी । परिचत्तविमलभावो, नरए पत्तो धणो पावी ॥३१॥

इत्येवमाकर्ण्य सकर्णलोका ! भद्रस्य भद्रङ्करणं चरित्रम् ।
तद् भाव्यपायप्रसरेण मुक्ताम् । श्रयन्तु नित्यं व्यवहारशुद्धिम् ॥३२॥

## ॥ इति भद्रश्रेष्ठिकथा ।

इत्युक्त ऋजुव्यवहारे भाव्यपायप्रकाशनमिति तृतीयो भेदः, सम्प्रति सद्भावतो मैत्रीभाव इति चतुर्थं भेदमाह—

'मित्तीभावो य सब्भाव' त्ति । मित्रस्य भावः कर्म वा मैत्री, तस्या भावो-भवनं सत्ता सद्भावान्निष्कपटतया सुमित्रवत् निष्कपटमैत्रीं करोतीत्यर्थः, मैत्रीकपटभावयोश्छायातपयोरिव विरोधात् ।

उक्तं च—

"शाठ्येन मित्रं कलुषेण धर्मं, परोपतापेन समृद्धिभावम् । सुखेन विद्यां परुषेण नारीं, वाञ्छन्ति ये व्यक्तमपण्डितास्ते ॥"

इति चतुर्थ ऋजुव्यवहारभेदः।

सुमित्रकथा चैवम्—

सुपुरिसपुर इव सुकरे, वरवच्छे सिरिपुरंमि नयरंमि। सिट्ठी आसि न दीणो, समुद्ददत्तो समुद्दुव्व ॥१॥
सब्भावसारमित्तीमहंतदिप्पंतकंतिकयसोहो। पुत्तो तस्स सुमित्तो, मित्तु व्व परं असत्तासो ॥२॥
निद्धम्मो चत्तगुणो, लोहमओ मग्गणु व्व पीइहरो। परमम्मवेहणपरो, मित्तो तस्सत्थि वसुमित्तो ॥३॥
अणुण्णविय कहवि पिउणो, ववहरणत्थं सुमित्तवसुमित्ता। संगहियपउरपणिया, वणिया देसंतरे चलिया ॥४॥
मित्तपओसी दोसुक्करिसपरो कोसिउ व्व वसुमित्तो। लुद्धमणो मित्तधणे, कुणइ वियारं इय पहंमि ॥५॥
जीवाण जओ धम्माउ, किं व पावाउ कहसु मह मित्त!। भणइ सुमित्तो धम्माउ, नणु जओ न उण पावाओ ॥६॥

यतः—

दविणमलं कुलममलं, आणेस्सरियं अभंगुरं विरियं। सुरसंपयं सिवपयं, धम्माउ च्चिय जियाण धुवं ॥७॥
जइ पुण पावेण बुद्धिरिद्धिसंसिद्धिमाइणो हुज्जा। तो हुज्ज न कोवि इहं, जडो दरिद्दो असिद्धो य ॥८॥
रक्खियमिगोवि मियलंछणो ससी हयमिगोवि मिगनाहो। सीहो उ तओ पावा, जउ त्ति इय भणइ वसुमित्तो ॥९॥
इय विवयंता दुन्निवि, सव्वस्सपणंमि निम्मियपइण्णा। अण्णायधम्मनामे, कमेण कंमिवि गया गामे ॥१०॥
तत्थ य वसुमित्तेणं, मच्छरभरपूरिएण नियपक्खं। पुट्ठा गामीणजणा, पावाउ जउ त्ति जंपंति ॥११॥



सद्भाववतो
मैत्रीभावे
सुमित्र-
कथा।

जे परवंचणपउणा, विगलियकरुणा सया असच्चधणा । ते पच्चक्खं पिच्छह, अतुच्छलच्छीइ संछन्ना ॥१२॥

अन्यैरप्युक्तम्—

"नातीवसरलैर्भाव्यं, गत्वा पश्य वनस्पतीन् । सरलास्तत्र छिद्यन्ते, कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥१३॥
गुणानामेव दौरात्म्याद् धुरि धुर्यो नियुज्यते । असञ्जातकिणस्कन्धः सुखं जीवति गौर्गलिः ॥१४॥
उत्तरदाणअसत्तो, तस्स सुमित्तो मुरुक्खसत्थस्स । वसुमित्तेणं सत्थाउ, धाडिओ गहिय सव्वस्सं ॥१५॥
सो एगागी अडवीइ, निवडिओ आहिदुक्खतत्तो वि । पगईइ मित्तभावेण, परिगओ चिंतए एवं ॥१६॥
भुंजंतो रे जिय ! पुव्वजम्मकडुकम्मरुक्खफलमेयं । काऊणं संतोसं, वसुमित्ते वज्जसु पओसं ॥१७॥
इय चिंतिउं सुमित्तो, निसाइ सावयगणाण बीहंतो । इक्कस्स निलुक्को गरुयविडवविडविस्स कुहरंमि ॥१८॥
इत्तो निसुणइ दीवंतराउ पत्ताण रुक्खसिहरंमि । सो पक्खीणुल्लवियं, महल्लविहगेण पुट्ठाणं ॥१९॥
भो विहगा ! कहह महं, कत्तो को इत्थ आगओ इण्हिं ? । दीवंतरंमि केणं, किं किर दिट्ठं व निसुयं वा ? ॥२०॥
तेहिवि जं जह दिट्ठं, सुयं व दीवंतरेसु तं सव्वं । तह चेव तस्स कहियं, एगो पुण भणइ तत्थ इमं ॥२१॥
ताय ! अहमज्ज पत्तो, सिंहलदीवाउ तत्थ नरवइणो । अत्थि जियमयणघरिणीरूवा धूया मयणरेहा ॥२२॥
तीसे य अच्छिवियणाइ पीडियाए तइज्जओ मासो । विज्जेहिवि पडिसिद्धा, तो पिउणा दाविओ पडहो ॥२३॥
जो मह धूयं पउणेइ, तस्स वियरेमि रज्जमद्धमहं । तीइ समं चिय न य कोवि पडहयं छिवइ पुण ताय ! ॥२४॥

अन्न·दिणं छट्ठं पडहयस्स ता तीइ नयणरोगस्स । किं नत्थि ओसहमिहं, किंवा अत्थि त्ति मह कहसु ॥२५॥
अह भणइ वुड्डपक्खी, जाणंतेहि वि जहा तहा एयं । दिवसंमि वि न कहिज्जइ, किं पुण रयणीइ हे पुत्त ! ॥२६॥
तेणुत्तं मह गरुयं कुड्डं, न य कोइ सुणइ इह ताय ! । तो कहसु आह सो वि, हु सुयपुव्वं वच्छ ! मह एयं ॥२७॥
अद्धाणपवन्नेहिं, इह निसि वसिएहि जइणसाहूहिं । सल्लक्खणु त्ति कहिओ, एस तरू नयणरोगहरो ॥२८॥
जइ कोइ एयतरुणो, पत्तरसं तीइ अच्छिसु खिविज्जा । तो सा पउणिज्जइ लहु, इय सोउं चिंतइ सुमित्तो ॥२९॥
छज्जीवहिया मित्तीइ, मंदिरं दुरियदहणजलवाहा । सन्नाणरयणजलही, न अन्नहा बिंति जइणमुणी ॥३०॥
इय निच्छिय तत्तरुणो, सरलदलाइं गहित्तु सो अप्पं । बंधइ सिंहलदीवागयभारुंडस्स चरणंमि ॥३१॥
नीओ तेण तहिं सो, छिविउं पडहं गओ निवइपासे । विहिओचियपडिवत्ती, रण्णा पुट्ठो कुसलवत्तं ॥३२॥
वाहरिय मयणरेहं, बलिमंडलमाइ काउ संझाए । लोयणवेयणरहियं, करेइ तेणं दलरसेणं ॥३३॥
परिणाविय नियकन्नं, दिन्नं रण्णा य तस्स रज्जद्धं । सो तत्थच्छइ सुत्थियहियओ सव्वेसि हियनिरओ ॥३४॥
वसुमित्तो वहणेणं, कयावि तत्थागओ वणिज्जेण । निवदंसणाय पत्तो, गहिउं कोसल्लियं बहुयं ॥३५॥
तत्थ सुमित्तं सुमहंतरायलच्छीइ दट्ठु दिप्पंतं । सो चत्तमित्तभावो धसक्किओ चिंतए एवं ॥३६॥
एसो पयडपओसो, जइ कहमवि मज्झ वइयरं रण्णो । पायडइ तओ अहुणा, हियसव्वस्सो विणस्सामि ॥३७॥
केणावि उवाएणं, ता एयं मारिमु त्ति चिंतेउं । पाहुडमप्पित्तु नमित्तु निवइपासंमि आसीणो ॥३८॥

विजणं जाणित्तु इमो, सुमित्तभवणंमि जाइ मायाए। पुच्छियकुसलोदंता परुप्परं जाव अच्छंति ॥३९॥
ता वसुमित्तेणुत्तं सुमित्त! वरमित्त! कइवयदिणाणि। मा मं जाणाविज्जसु, रण्णो तेणावि पडिवन्नं ॥४०॥
अन्नदिणे वसुमित्तो, रहंमि विण्णवइ नरवइं एवं। परदोसग्गहणं जइवि, देव! जुत्तं न पुरिसाणं ॥४१॥
तहवि हु गुरुअववाओ, पहुणो मा होउ इय पयंपेमि। एसो तुह जामाऊ, अम्ह पुरे विज्जडुंबसुओ ॥४२॥
तं सोउं सुविसण्णो, करालकुलिसाहउ व्व नरनाहो। तं वुत्तंतं सव्वं, सुबुद्धिसचिवस्स साहेइ ॥४३॥
सो पडिभणेइ जइ देव! एवमेयं तओ गुरू अयसो। ववहारियाण ठाणं, जमिमा दीवेसु तुह नयरी ॥४४॥
सहसा निवोवि जंपइ, जा पयडं हवइ न हु इमं लोए। ता पच्छन्नं एयं, वावायसु मंति! तं झत्ति ॥४५॥
आमंति मंतिणुत्ते, रहंमि पुट्ठा निवेण नियधूया। किं अकुलीगवियारो, सचविओ कोवि ते पइणा? ॥४६॥
सा भणइ अवि कलंको, ससिणो किर अत्थि न उण मह पइणो। केवलगुणमयमुत्ती पडु व्व परगुज्झरक्खट्ठा ॥४७॥
नियपच्चइयनरेहिं, इत्तो पिच्छणयपिच्छणमिसेण। सचिवेण लहु सुमित्तो, संझासमयंमि वाहरिओ ॥४८॥
पुण्णभरपेरिएणं, तेणवि नियवेसमप्पिउं तइया। पट्ठविओ वसुमित्तो, सुबुद्धिपुरिसेहि सो निहओ ॥४९॥
तं नाउ निवो कह मह, दुहिया होहि त्ति जाव झूरेइ। सा ताव तत्थ आगंतु, पुच्छए किं इमं ताय! ॥५०॥
तुह वेहव्वकरो हं, वच्छे! पावु त्ति जंपिए रण्णा। सा भणइ तुज्झ जामाउगो गिहे चिट्ठए ताय! ॥५१॥
तं आयण्णिय रण्णा, रहंमि पुट्ठो पयंपइ सुमित्तो। मज्झत्थमणो सव्वं तं, वसुमित्तस्स वुत्तंतं ॥५२॥

तो चिंतए नरिंदो, मित्तीभावत्तणं इमस्स अहो ! । मच्छरभीरुत्तमहो अहो ! अहो ! धम्मसुथिरत्तं ॥५३॥
इय चिंतिउं चमक्कियमणो निवो कहइ मंतिपउराणं । सब्भावरुइरमित्तीजुत्तं चित्तं सुमित्तस्स ॥५४॥
तयणु सुमित्तेण तहिं, पियरो आणाविया पहिट्ठेणं । नयरपिवेसो रण्णा, कराविओ गुरुविभूईए ॥५५॥
जाया य वंससुद्धी, सपरेसि सुहाण कारगो जाओ । पडिवज्जियपव्वज्जो, कमा सुमित्तो गओ सुगइं ॥५६॥
मित्तीभावविरहिओ, अहिओ सपरेसि सययवसुमित्तो । मरिऊण गओ नरए, भमिही संसारमइघोरं ॥५७॥

एवं सुमित्रस्य समस्तसत्त्वसन्दोहमित्रस्य निशम्य वृत्तम् ।
भव्या जना ! दुःखलतालवित्र्यां, सद्भावमैत्र्यां भृशमाद्रियध्वम् ॥५८॥

## ॥ इति सुमित्रकथा ॥

इत्युक्त ऋजुव्यवहारे सद्भावमैत्रीलक्षणश्चतुर्थो भेदः, तदुक्तौ निरूपितं चतुर्विधमप्यृजुव्यवहारस्वरूपम् । साम्प्रतमस्यैव विपर्यये दोषदर्शनपूर्वकं विधेयतामाह—

**अन्नहभणणाईसुं, अबोहिबीयं परस्स नियमेण । तत्तो भवपरिवुड्ढी, तो होज्जा उज्जुववहारी ॥४८॥**

'अन्यथाभणनम्' अयथार्थजल्पनम्, आदिशब्दाद्वञ्चकक्रियादोषोपेक्षाऽसद्भावमैत्रीपरिग्रहः, तेषु सत्सु श्रावकस्येति भावः । अबोधेः—धर्मप्राप्तेर्बीजं—मूलकारणं परस्य मिथ्यादृष्टेर्नियमेन—निश्चयेन भवतीति शेषः । तथाहि—श्रावकमेतेषु वर्तमानमालोक्य वक्तारः

सम्भवन्ति–धिगस्तु जैनं शासनम्, यत्र श्रावकस्य शिष्टजननिन्दितेऽलीकभाषणादौ कुकर्मणि निवृत्तिर्नोपदिश्यते इति निन्दाकरणादमी प्राणिनो जन्मकोटिष्वपि बोधिं न प्राप्नुवन्तीत्यबोधिबीजमिदमुच्यते, ततश्चाबोधिबीजाद् भवपरिवृद्धिर्भवति तन्निन्दाकारिणस्तन्निमित्तभूतस्य श्रावकस्यापि।

यदवाचि—

"शासनस्योपघाते योऽनाभोगेनापि वर्तते। स तन्मिथ्यात्वहेतुत्वादन्येषां प्राणिनामिति ॥१॥

बध्नात्यपि तदेवालं परं संसारकारणम्। विपाकदारुणं घोरं सर्वानर्थविवर्द्धनम्" ॥२॥ इति।

'ततः' तस्मात् कारणाद् 'भूयाद्' भवेत् 'ऋजुव्यवहारी' प्रगुणव्यवहारवान् प्रकृतो भावश्रावक इति।

उक्तमृजुव्यवहार इति चतुर्थं भावश्रावकलक्षणम्, सम्प्रति गुरुशुश्रूषक इति पञ्चमं भावश्रावकलक्षणमाह—

**सेवाइ कारणेण य, संपायणभावओ गुरुजणस्स। सुस्सूसणं कुणंतो, गुरुसुस्सूओ हवइ चउहा ॥४९॥**

सेवया–पर्युपासनेन १, कारणेन–अन्यजनप्रवर्तनेन २, सम्पादनं–गुरोरौषधादीनां प्रदानम् ३, भावश्चेतोबहुमानः ४, तान्नाश्रित्य सम्पादनभावतः गुरुजनस्य–आराध्यवर्गस्य। इह यद्यपि गुरवो मातापित्रादयोऽपि भण्यन्ते, तथापि धर्मप्रस्तावादिहाचार्यादय एव प्रस्तुता इति तानेवोद्दिश्य गुरुशुश्रूषो व्याख्येयः। गुरुलक्षणं चेदम्—

"धर्मज्ञो धर्मकर्ता च सदा धर्मप्रवर्तकः। सत्त्वेभ्यो धर्मशास्त्राणां देशको गुरुरुच्यते" ॥ इति।

गुरुजनग्रहणं बहुत्वप्रतिपत्त्यर्थम्, तेन ये केचित् पूर्वोक्तगुरुलक्षणलक्षितास्ते सर्वेऽपि गुरुजनशब्देन गृहीता द्रष्टव्याः, ततश्च तस्य

गुरुजनस्य 'शुश्रूषणं' पर्युपासनं कुर्वन् गुरुशुश्रूषो भवति, स च 'चतुर्द्धा' चतुष्प्रकार इति गाथाक्षरार्थः।

भावार्थं तु सूत्रकार एव व्याख्यानयन् प्रथमभेदं सेवालक्षणं गाथापूर्वार्द्धेनाह—

**सेवइ कालंमि गुरुं अकुणंतो झाणजोगवाघायं।**

'सेवते' पर्युपास्ते 'काले' अवसरे 'गुरुं' पूर्वोक्तस्वरूपम्। कथम्? 'अकुर्वन्' 'ध्यानं' धर्मध्यानादि 'योगाः' प्रत्युपेक्षणावश्यकादयस्तेषां 'व्याघातम्'—अन्तरायम्, जीर्णश्रेष्ठिवत्।

तत्कथा चेयम्—

पुरी समस्ति वैशाली, शालीनजनशालिनी। तत्रासीत् परमश्राद्धो, जिनदत्ताभिधः सुधीः ॥१॥
सदा जिनपदाम्भोजसेवनैकसितच्छदः। च्युतः श्रेष्ठिपदाज्जीर्णश्रेष्ठित्वेन च विश्रुतः ॥२॥
बहिर्देवकुले तत्र, श्रीवीरप्रभुरन्यदा। छद्मस्थोऽस्थात् प्रतिमया, काले मुदिरमेदुरे ॥३॥
अजीर्णवासनो जीर्णश्रेष्ठी त्रैलोक्यभास्करम्। दृष्ट्वा कोक इवास्तोकहर्षमापदपापधीः ॥४॥
ध्यानविघ्नमतन्वानो, मन्वानो जन्मनः फलम्। स विश्वविश्वसेव्यस्य, सेवां चक्रे जगद्गुरोः ॥५॥
कृत्वा च सुचिरं सेवां, श्रेष्ठी स्वगृहमागमत्। अहिण्डनेन नाथस्य, तर्कयन्नुपवासिताम् ॥६॥
एवं प्रतिदिनं सेवां, कुर्वन् वर्षा अतीत्य सः। दध्यौ स्वाम्यद्य मद्गेहे, यथा गच्छेत् परेण किं? ॥७॥
ध्यायन्निति गृहस्यान्तस्तस्थौ स्वस्थमनाश्चिरम्। मध्याह्ने तु गृहद्वारे, सोऽथ स्थित्वेत्यचिन्तयत् ॥८॥



तत्र गुरुसेवायां जीर्णश्रेष्ठिकथा।

यद्यत्रैष्यति वीरोऽद्य कल्पद्रुरिव जङ्गमः । सम्मुखं तस्य यास्यामि, मूर्द्धबद्धाञ्जलिस्तदा ॥९॥
तं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य, वन्दिष्ये सपरिच्छदः । ततो नेष्ये गृहस्यान्तर्निधानमिव बन्धुरम् ॥१०॥
प्रधानैस्तत्र पानाद्यैः, प्रासुकैरेषणीयकैः । भक्त्या तं पारयिष्यामि, संसाराम्भोधितारकम् ॥११॥
पुनर्नत्वा तु यास्यामि, पदानि कतिचित्ततः । धन्यंमन्यः स्वयं भोक्ष्ये, शेषमुद्धरितं मुदा ॥१२॥
एवं मनोरथश्रेणीं, जिनदत्तस्य कुर्वतः । श्रीवीरोऽभिनवश्रेष्ठिगृहे भिक्षाकृतेऽविशत् ॥१३॥
कुल्माशा दापितास्तेन, चेट्या चटुकहस्तया । सुपात्रदानतस्तत्र, पञ्च दिव्यानि जज्ञिरे ॥१४॥
नृपाद्या मिलितास्तत्र, श्रेष्ठ्यसौ तैः प्रशंसितः । पारयित्वा ततोऽन्यत्र, विहर्तुं प्रभुरप्यगात् ॥१५॥
जिनदत्तो निशम्याथ, ध्वनन्तं देवदुन्दुभिम् । दध्यौ धिग् मामधन्योऽहं, यन्नायान्मद्गृहं प्रभुः ॥१६॥
तत्पुर्यामथ तत्राह्नि, केवली समवासरत् । नृपाद्या एत्य तं नत्वाऽपृच्छन् कः पुण्यवानिह ? ॥१७॥
स प्रोचे जिनदत्तं तं, राज्ञोचेऽनेन नो जिनः । पारणां पारितः किं तु, श्रेष्ठिनाभिनवेन सः ॥१८॥
केवली कथयित्वाऽस्य, भावनां मूलतोऽपि हि । बभाषे भावतोऽनेन, पारितः परमेश्वरः ॥१९॥
अमानं बहुमानं च दधता धीमता तदा । द्वादशस्वर्गसंसर्गयोग्यं कर्म समर्जितम् ॥२०॥
किञ्चान्ययदि नाश्रोष्यत्तदासौ देवदुन्दुभिम् । प्राप्स्यत्ततस्तदैवायं केवलज्ञानमुज्ज्वलम् ॥२१॥
अनेन भावशून्येन, नूतनश्रेष्ठिना पुनः । सुपात्रदानतः प्राप्तं, स्वर्णवृष्ट्यादिकं फलम् ॥२२॥

सद्भक्तिरहितो जीवः, स्याल्लभेतैहिकं फलम् । भक्तिव्यक्त्या पुनर्युक्तः, स्वर्गमोक्षावपि क्षणात् ॥२३॥
जिनदत्तं प्रशस्याथ, ते सर्वेऽगुर्यथागतम् । सुचिरं धर्ममाराध्य, स श्रेष्ठी प्रापदच्युतम् ॥२४॥
एवं जीर्णश्रेष्ठिनः शुद्धदृष्टेः, श्रुत्वा वृत्तं भावसद्भावसारम् ।
भो भो भव्याः ! सद्गुरूणां हि सेवाहेवाकत्वं सन्ततं संश्रयध्वम् ॥२५॥

## ॥ इति जीर्णश्रेष्ठिकथा ॥

इत्युक्तो गुरुशुश्रूषकलक्षणस्य गुरुसेवारूपः प्रथमो भेदः, सम्प्रति अस्यैव द्वितीयं कारण इति भेदं प्रकटयन् गाथोत्तरार्द्धमाह—

**सइ वन्नणाइकरणा अन्नेवि पवत्तए तत्थ ॥५०॥**

'सदा वर्णवादकरणात्' नित्यं सद्भूतगुणोत्कीर्तनेन 'अन्यानपि' प्रमादवतः 'प्रवर्तयति' प्रेरयति पद्मशेखरमहाराजवत्, 'तत्र' तस्यां गुरुसेवायामिति । तत्र प्रवर्तने पद्मशेखर-महाराज-कथा ।

### पद्मशेखरमहाराजकथा चैवम्—

पुरिसुत्तमसयणं सुरयणसहियं किं तु खारगुणरहियं । नीरनिहिनीरसरिसं, पुहइपुरं अत्थि इत्थ पुरं ॥१॥
सुनओ वसणविरहिओ, किंतु जडासंगवज्जिओ समयं । ससिसेहरु व्व सिरिपउमसेहरो नरवरो तत्थ ॥२॥
सो बालभावओ भाविऊण भावेग गहियजिणधम्मो । राईसराईपुरओ, पत्तो पन्नवइ जिणधम्मं ॥३॥

वक्खाणइ जीवदयं, अपमायाओ परूवए मुक्खं । बहुसो बहुमाणेणं, एवं वण्णवइ सया गुरुणो ॥४॥

खन्ता दन्ता संता, उवसंता रागरोसपरिचत्ता । परपरिवायविरत्ता, हुंति गुरू निच्चमपमत्ता ॥५॥

उवसमसीयलसलिलप्पवाहविज्झवियकोहजलणा वि । गाढप्परूढभववियडविडविनिट्ठवणदवदहणा ॥६॥

निज्जियमयणा वि पसिद्धसिद्धिबहुसंगसुक्खतल्लिच्छा । परिचत्तसयलसंगावि सुदिढसंगहियचरणधणा ॥७॥

नीसेसजंतुसंताण पालणे फुरियगरुयकरुणावि । निट्ठुरपमायसिंधुरकुम्भत्थलदलणहरिसरिसा ॥८॥

तथा—

कंसे संखे जीवे, गयणे वाऊ य सारए सलिले । पुक्खरपत्ते कुम्मे, विहगे खग्गे य भारुण्डे ॥९॥

कुंजर वसहे सीहे, नगराया चेव सागरक्खोहे । चंदे सूरे कणगे, वसुंधरा चेव सुहुयहुए ॥१०॥

जिणसमए निद्दिट्ठा, इच्चाइनिदंसणेहिं मुणिवसहा । भावेण तेसि गुणवण्णणंपि नासेइ दुरियभरं ॥११॥

किं च—

माणुस्सं उत्तमो धम्मो, गुरू नाणाइसंजुओ । सामग्गी दुल्लहा एसा, जाणेह हियमप्पणो ॥१२॥

एयारिसो सुहगुरू, धन्नाणं दिट्ठिगोयरमुवेइ । एयस्स सवणसुहयं पियंति वयणामयं धन्ना ॥१३॥

एयस्स महामुणिणो, उवएसरसायणं अकाऊण । होही पच्छायावो, चत्ते पत्ते निहाणि व्व ॥१४॥

इय भणिएणं तेणं, जिणधम्मे ठाविओ बहू लोओ । एगो पुण सिद्धिसुओ, विजओ नामेण इय भणइ ॥१५॥

पवणुद्धुयचेलचलं, चलं मणं कह धरंति ते मुणिणो ? । कह नियनियविसए, धाविराइं रुंधंति करणाइं ॥१६॥
दुहियजियाणं च वहो, जुत्तो जं ते विणासिया इहयं । वेइत्तु निययकम्मं, सुगईए भायणं हुंति ॥१७॥
जं पुण अपमायाओ, मुक्खस्स परूवणं तयं मन्ने । जरहरणे तक्खगमउलिरयणउवएसदाणं व ॥१८॥
इय सो वायालत्तेण धम्मभिमुहंपि मोहए लोयं । नाउं निवेण तब्बोहणत्थमेवं तओ विहियं ॥१९॥
जक्खु त्ति नियपुरिसो, भणिओ जह मह इमं अलंकारं । पक्खिवसु काउ मित्तिं, रयणकरंडंमि विजयस्स ॥२०॥
तेणवि तहेव काउं, विण्णत्तं राइणो तओ इमिणा । पडहगपयाणपुव्वं नयरे घोसावियं एवं ॥२१॥
जो निवआहरणं कहवि लद्धमप्पइ स दोसवं निण्हि । पच्छा से तणुदंडो, इय घोसावित्तु वारतिगं ॥२२॥
सह पउरेहिं सपुरिसा, वुत्ता गिहसोहणंमि अह तेहिं । विजयगिहे तं दिट्ठं, सो पुट्ठो नणु किमेयंति ? ॥२३॥
स भणइ अहं न याणे, चोरियमवि न मुणसि त्ति भणिरेहिं । निवपासे नीओ तेहिं, तेण वज्झो स आणत्तो ॥२४॥
न य तं कोवि मुयावइ, पच्चक्खो तक्करुत्ति तो विजओ । परिचत्तजीवियासो, जक्खं पइ जंपइ सुदीणो ॥२५॥
मित्त ! निवं विण्णविउं, दंडेणं दुक्करेण वि कहंपि । दावेसु जीवियं मे, तो जक्खो भणइ इय निवइं ॥२६॥
देव ! मह मुयसु मित्तं, केणवि दंडेण भणइ तो राया । जइ जाइ हओ सुगइं, मित्तो तुह किं न पडिहाइ ? ॥२७॥
स भणइ सुगईइ अलं, जीवंतो पिच्छए नरो भद्दं । ता देसु पाणभिक्खं, तो निवई भणइ कुविउव्व ॥२८॥
जइ मम पासाओ तिल्लपुण्णपत्तिं गहित्तु बिंदुंपि । अचयंतो सयलपुरे, भमिउं पुण ठवइ मह पुरओ ॥२९॥

ता तुह मुएमि मित्तं, रायाएसं तयं कहइ जक्खो। विजयस्स तेण तंपि हु, पडिवण्णं जीवियासाए ॥३०॥
तत्तो निरूवियाइं, सयलपुरे पउमसेहरनिवेण। पडुपडहवेणुवीणाइ, सद्दउद्दामहरिसाइं ॥३१॥
अइलडहरूवलवणिमसुवेसवेसाविलासकलियाइं। सव्विंदियसुहयाइं, पए पए पिच्छणसयाइं ॥३२॥
सो किर विसेसरसिओ, तेसिं अइमरणभीरुओ तहवि। तिल्लपडिपुण्णपत्तीनिहियमणो भमिय सयलपुरे ॥३३॥
पत्तो नरवरपासे, पुरओ जत्तेण मुत्तुं तं पत्तिं। पडिओ चलणेसु तओ, ईसिं हसिउं निवो भणइ ॥३४॥
अच्चंतचंचलाइं, मणकरणाइं कहं तुमे विजय!। अइवल्लहेसुवि भिसं, पिच्छणगाइसु निरुद्धाइं? ॥३५॥
तेणुत्तं सामिय! मरणभीरुणा अह निवो भणइ जइ ते। एगभवमरणभीएण, सेविओ एवमपमाओ ॥३६॥
ता कह सेवंति न तं, अणंतभवमरणभीरुणो मुणिणो?। इय सोउं पडिबुद्धो, विजओ जाओ पवरसड्ढो ॥३७॥
इय गुरुगुणगणवन्नणपरायणो बोहिउं बहुयलोयं। सो पउमसेहरनिवो, सुगईए भायणं जाओ ॥३८॥

श्रुत्वेति कुग्रहविनिग्रहणैकमन्त्रं श्रीपद्मशेखरनरेश्वरसच्चरित्रम्।
सज्ज्ञानदर्शनचरित्रभृतां गुरूणां, भव्या जना! गुणगणं परिकीर्त्तयन्तु ॥३९॥

## ॥ इति पद्मशेखरमहाराजकथा ॥

इत्युक्तो गुरुशुश्रूषकलक्षणस्य कारण इति द्वितीयो भेदः, साम्प्रतमौषधभेषजसम्प्रगाम इति तृतीयं भेदमभिधित्सुर्गाथापूर्वार्द्धमाह–

ओसहभेसज्जाई सओ य परओ य संपणामेई ।

औषधानि—केवलद्रव्यरूपाणि बहिरुपयोगीनि वा, भेषजानि—सांयोगिकान्यन्तर्भोग्यानि वा, आदिशब्दादन्यान्यपि संयमोपकारकाणि वस्तूनि स्वतः—स्वयं दानेन, परतोऽन्यजनतो दापनेन च सम्यक् प्रणमयति—संपादयति श्रीयुगादिजिनाधीशजीवाभयघोषवद् गुरुभ्य इति शेषः ।

उक्तं च—

"अन्नं पानमथौषधं बहुविधं धर्मध्वजः कम्बलं, वस्त्रं पात्रमुपाश्रयश्च विविधो दण्डादिधर्मोपधिः ।
शस्तं पुस्तकपीठकादि घटते धर्म्माय यच्चापरं, देयं दानविचक्षणैस्तदखिलं मोक्षार्थिने भिक्षवे ॥१॥

तथा—

"जो देइ ओसहाइं, मुणीण मणवयणकायगुत्ताणं । सो सुद्धभावविभवो, भवे भवे होइ नीरोगुत्ति" ॥२॥

तत्र औषधादिसंपादने अभयघोषकथा।

अभयघोषकथा चेयम्—

आसीत् पूर्वविदेहेषु, शत्रुसंहतिदुर्जये । वत्सावत्याख्यविजये, प्रवरा पूः प्रभङ्करा ॥१॥
तस्यां सुविधिवैद्यस्य, सूनुः सत्कर्मकर्मठः । आसीदभयघोषाख्यो, वैद्यविद्याविशारदः ॥२॥
नरेन्द्रमन्त्रिसार्थेशनगरश्रेष्ठिनां सुताः । प्रशस्याः सद्गुणश्रेण्यो वयस्यास्तस्य जज्ञिरे ॥३॥
मिलितानामथामीषामन्येद्युर्वैद्यमन्दिरे । आगादनागाः सद्वृत्तिः साधुर्माधुकरीं चरन् ॥४॥

तं पृथ्वीपालभूपालपुत्रं नाम्ना गुणाकरम् । निकृष्टकुष्टं तं दृष्ट्वा, प्रोचीरे वैद्यनन्दनम् ॥५॥
सदार्थदृग्भिर्वेश्यावत् भवद्भिर्भक्ष्यते जनः । न कस्यचित्तपस्व्यादेश्चिकित्सा क्रियते किल ॥६॥
जगाद वैद्यजन्मापि, चिकित्स्योऽयं मुनिर्मया । भो भद्रा ! निश्चितं किं तु, भेषजानि न सन्ति मे ॥७॥
तेऽप्यूचुर्दद्महे मूल्यं, शाधि साध्यौषधानि नः । उवाच सोऽपि गोशीर्षचन्दनं रत्नकम्बलम् ॥८॥
लक्षद्वयेन तत् क्रेयं, (ग्रं. ५५००) तृतीयं तु मद्गोकसि । विद्यते लक्षपाकाख्यं, तैलं तद् गृह्यतां द्रुतम् ॥९॥
लक्षद्वयं गृहीत्वाऽथ, गत्वा ते कुत्रिकापणे । अयाचन्तौषधे तांस्तु, श्रेष्ठ्यूचे किं प्रयोजनम् ? ॥१०॥
तेऽवोचन् कुष्ठिनः साधोश्चिकित्साऽऽभ्यां विधास्यते । आकर्ण्य तद्वचः श्रेष्ठी चेतस्येवमचिन्तयत् ॥११॥
क्वैषां प्रमादशार्दूलकाननं यौवनं ह्यदः । विवेकबन्धुरा बुद्धिः, क्वचेयं वार्धकोचिता ॥१२॥
मादृशामीदृशं योग्यं जराजर्जरवर्ष्मणाम् । यत् कुर्वन्त्यपि तदहो धन्यैर्भारोऽयमुह्यते ॥१३॥
एवं विचिन्त्य स श्रेष्ठी, ते समर्प्यौषधे मुदा । भावितात्मा प्रवव्राज, वव्राज च महोदयम् ॥१४॥
कृत्वा समग्रसामग्रीं, तेऽग्रिमा भक्तिशालिनाम् । समं वैद्यवरेण्येन, प्रययुः साधुसन्निधौ ॥१५॥
नत्वाऽनुज्ञाप्य तैलेन, सर्वाङ्गं म्रक्षितः स तैः । वेष्टितः कम्बलेनाथ, निरीयुः कृमयस्ततः ॥१६॥
शीतत्वात्तत्र ते लग्ना निर्यद्भिस्तैः प्रपीडितः । लिप्तश्च चन्दनेनाशु, स्वास्थ्यमाप मुनिः क्षणात् ॥१७॥
त्रिरेवमाद्यवेलायां, निर्ययुः कृमयस्त्वचः । मांसगास्तु द्वितीयस्यां, तृतीयस्यां च तेऽस्थिगाः ॥१८॥

तान् कृमींस्ते दयावन्तश्चिक्षिपुर्गोकलेवरे । संरोहण्या च तं साधुं, सद्यः सज्जीप्रचक्रिरे ॥१९॥
क्षमयित्वा च नत्वा च, गत्वाऽन्तर्नगरं ततः । चैत्यं चक्रुश्च विक्रीय, तेऽर्द्धमूल्येन कम्बलम् ॥२०॥
गृहीत्वा गृहिधर्मं च, पश्चात् कृत्वा च संयमम् । ते पश्चाप्यच्युतेऽभूवन्निन्द्रसामानिकाः सुराः ॥२१॥
ततश्च्युत्वा विदेहेषु, भूत्वा पश्चापि सोदराः । ते प्रव्रज्य च सर्वार्थसिद्धेऽभूवन् सुरोत्तमाः ॥२२॥
ततोऽप्यभयघोषस्य जीवश्च्युत्वाऽत्र भारते । बभूव भव्यसन्दोहबोधनः प्रथमो जिनः ॥२३॥
शेषास्तु भरतो बाहुबलिर्ब्राह्मी च सुन्दरी । जज्ञिरे तदपत्यानि प्रापुश्च परमं पदम् ॥२४॥

एवं निशम्याभयघोषवृत्तं मुदा गुरूणां गुणराजिभाजाम् ।
दाने सदाप्यौषधभेषजादेः कृतोद्यमा भव्यजना ! भवन्तु ॥२५॥

## ॥ इत्यभयघोषकथा ॥

इत्युक्तो गुरुशुश्रूषकस्य औषधभेषजसम्प्रणाम इति तृतीयो भेदः, सम्प्रति भाव इति चतुर्थं भेदं विवरीषुर्गाथोत्तरार्द्धमाह–

**सइ बहु मन्नेइ गुरुं भावं चणुवत्तए तस्स ॥५९॥**



'सदा बहु मन्यते' मनःप्रीतिसारं श्लाघते 'गुरुम्' उक्तस्वरूपं सम्प्रतिमहाराजवत् । 'भावं च' चेतोवृत्तिं 'अनुवर्तते' तदनुकूलं व्यवहरति तस्य गुरोः संबन्धिनं तत्सम्मतमेवाचरतीति तत्त्वम् ।

उक्तं च—

"सरुषि नतिः स्तुतिवचनं, तदभिमते प्रेम तद्द्विषि द्वेषः। दानमुपकारकीर्तनममूलमन्त्रं वशीकरणम्" ॥ इति ।

सम्प्रतिमहाराजनिदर्शनं त्वेवम्—

अत्थि पुरी उज्जइणी, सिरीहिं अलयं पुरिंपि उज्जइणी । तत्थ निवनिवहसेवियपयजुयलो संपइनरिंदो ॥१॥
जीवंतसामिपडिमं, अप्पडिमं वंदिउं कयावि तहिं । पत्तो भवतरुहत्थी, गुरु सुहत्थी सपरिवारो ॥२॥
तइया चउविहआउज्जसज्जपिच्छणयजणियजणहरिसो । ठाणे ठाणे पायडियपयडपुरनारिहल्लीसो ॥३॥
सद्धाबंधुरभवियणपयपयकयलगुडरासमणहरणो । चउदिसिसु साविगागिज्जमाणसुमहल्लमंगल्लो ॥४॥
रहिएहि व भविएहिं, सणियं पगडिज्जमाणओ पुरओ । पइहट्टं पइभवणं, गरुयं पूयं पडिच्छंतो ॥५॥
अणुगम्मंतो गुरुणा, सुहत्थिणा सयलसंघसहिएण । भमिरो तत्थ जिणरहो, पत्तो निवभवणदारंमि ॥६॥
अह राया निज्जूहे, सकम्मविवरि व्व वट्टमाणो सो । दट्ठुं सुहत्थिसूरिं, तुट्ठमणो चिंतए चित्ते ॥७॥
मन्ने कत्थवि दिट्ठो, एस मुणिंदो मया दयाभवणं । जं मह मणजलनिहिणो, इंदु व्व जणेइ उल्लासं ॥८॥
इय चिंतिरस्स तस्स, सुभासुरं जाइसरणमुप्पन्नं । तो मुत्तु सव्वकज्जे, पत्तो गुरुचरणनमणत्थं ॥९॥
नमिउं गुरुणो पुच्छइ, जिणधम्मो किंफलो भणइ सूरी । सो सग्गमुक्खफलओ, पुच्छेइ पुणोवि नरनाहो ॥१०॥
किं फलमवत्तसामाइयस्स रज्जाइ संसइ मुणिंदो । तो तुट्ठो भणइ निवो, किं उवलक्खेह मं भयवं ? ॥११॥

तयणु अणुत्तरसुयनाणसुद्धउवओगओ मुणिय सूरी । जंपइ संपइ नरवर !, आसि पुरा मज्झ तं सीसो ॥१२॥

तथाहि—

कइयावि मासकप्पेण, विहरमाणा समं महागिरिणा । अम्हे कोसंबिपुरिं, पत्ता दुब्भिक्खकालंमि ॥१३॥
संकडभावा वसहीण, बहुयभावेण मुणिजणस्स तहा । सिरिअज्जमहागिरिणो, वयं च वसहीसु वीसु ठिया ॥१४॥
सुत्तत्थपोरिसिकमेण भिक्खवेलाइ साहुसंघाडो । अम्हं कम्मिवि ईसरगिहम्मि भिक्खत्थमणुपत्तो ॥१५॥
अत्ताणं सत्ताणं मन्नंतेणं च तेण धणवइणा । भत्तीइ भत्तपाणं पउरं उवढोइयं तस्स ॥१६॥
दिट्ठं च तमेगेणं, भिक्खयरेणं तहिं पविट्ठेणं । चिंतियमिमिणा समणा अहो ! अहो ! पुण्णमाहप्पं ॥१७॥
तुच्छे भिक्खयरत्ते, इमे सउण्णा लहंति सव्वत्थ । अहयं तु पुण्णरहिओ, लहेमि जइ नवरमक्कोसो ॥१८॥
इय चिंतिय सो लग्गो, मुणीण मग्गंमि मग्गए बहुसो । भयवं ! तुब्भे सव्वत्थ, लहह तो देह मह किंचि ॥१९॥
तो मुणिवरेहिं भणियं, भो भद्द ! न अम्ह संतियं भत्तं । अम्ह इमस्स य पहुणो, गुरुणो चिट्ठंति वसहीए ॥२०॥
तेणासाविवसेणं, वसहिं आगंतु जाइया अम्हे । साहूहि वि णे कहिओ, सव्वोवि हु मग्गवुत्तंतो ॥२१॥
तो नाउं सुएण वयं, भाविं पवयणसमुण्णइकरं तं । सामाइयसुत्तपयाणपुव्वगं झत्ति दिक्खिसु ॥२२॥
भोयविओ जहिच्छमणुण्णमाहारमह निसाए सो । सुद्धमणो गू(गा)ढविसूइयाइ पंचत्तमणुपत्तो ॥२३॥
सिरिचंदगुत्तसुयबिंदुसारतणुरुहअसोगसिरिरण्णो । पियपुत्तस्स कुणालस्स एस तं नंदणो जाओ ॥२४॥

इय सोऊणं राया, बहुबहुमाणुल्लसंतरोमंचो । भालत्थलमिलियकरो, एवं थुणिउं समाढत्तो ॥२५॥

जय जय नाणदिवायर !, परोवयारिक्कपच्चल ! मुणिंद ! । गुरुकरुणारससायर ! नमो नमो तुज्झ पायाणं ॥२६॥

दारिद्दअमुद्दसमुद्दमज्झनिवडंतजंतुपोयाणं । गुरुकरुणारससायर ! नमो नमो तुज्झ पायाणं ॥२७॥

सग्गापवग्गमग्गाणुलग्गजणसत्थवाहपायाणं । गुरुकरुणारससायर ! नमो नमो तुज्झ पायाणं ॥२८॥

चक्कंकुसझसवरकलसकुलिसकमलाइलक्खणजुयाणं । गुरुकरुणारससायर ! नमो नमो तुज्झ पायाणं ॥ २९ ॥

इय थोउं सो गुरुणो, गिहिधम्मं गहिय सगिहमणुपत्तो । सव्वत्थवि नियरज्जे, रहजत्ताओ पवत्तेइ ॥३०॥

जह सुमरिय रंकत्तं, सत्तागारा कराविया तेण । जह बोहिया अणज्जा, तहा निसीहाउ नेयव्वं ॥३१॥

जिणसासणं पभाविय, सुइरं सुगुरूसु बहुमाणपरो । सो संपइनरनाहो, जाओ वेमाणिओ सुसुरो ॥३२॥

इत्यवधार्य्य सुधर्मविचारं, सम्प्रतिभूपतिवृत्तमुदारम् ।
सद्गुरुषु प्रहताखिलमानं, भव्यजना ! दधतां बहुमानम् ॥३३॥

॥ इति सम्प्रतिमहाराजनिदर्शनम् ॥

इत्युक्तो गुरुशुश्रूषकलक्षणस्य भाव इति चतुर्थो भेदः, तदुक्तौ च समर्थितं सप्रभेदं गुरुशुश्रूषक इति पञ्चमभावश्रावकलक्षणम् । सम्प्रति तदेव प्रवचनकुशल इति षष्ठमाह—

**सुत्ते अत्थे य तहा, उस्सग्गववायभाववववहारे । जो कुसलत्तं पत्तो, पवयणकुसलो तओ छद्धा ॥५२॥**

इह प्रकृष्टं वचनं प्रवचनम्—आगमः, स च सूत्रादिभेदात् षोढा, अतस्तदुपाधिकं कौशलमपि षोढा, तत्सम्बन्धात् कुशलोऽपि षोढै-वेत्याह—'सूत्रे' सूत्रविषये यः कुशलत्वं प्राप्त इति प्रत्येकं योजनीयम्। तथा 'अर्थे' सूत्राभिधेये, 'चः' समुच्चये, 'तथा' तेनैव प्रकारेण उत्सर्गे—सामान्योक्तौ, 'अपवादे' विशेषभणिते, 'भावे' विधिसारधर्मानुष्ठानकरणस्वरूपे, 'व्यवहारे' गीतार्थाचरितरूपे, सूत्रे समाहारस्यै-कत्वेऽपि सप्तम्या पृथग् व्याख्यानं बालावबोधनार्थम्। एतेषु यः कुशलत्वं प्राप्तः—सद्गुरूपदेशादेव प्रवचनकुशलः 'तउ' त्ति स भवति 'षोढा' षट्प्रकार इति गाथाक्षरार्थः।

६ प्रवचन कुशल इति भावश्रावक-लक्षणम्।

सम्प्रत्यस्यैव षष्ठलक्षणस्य भावार्थं विवरीषुराद्यभेदं गाथाप्रथमपादेनाह—

उचियमहिज्जइ सुत्तं

'उचितं' योग्यं श्रावकभूमिकाया 'अधीते' पठति 'सूत्रं' प्रवचनमात्रादि षड्जीवनिकान्तम्।

उक्तं च—

"पवयणमाई छज्जीवणियं ता उभयओवि इयरस्स"। ग्रहणशिक्षेति तत्र प्रकृतम्। उभयतः—सूत्रतोऽर्थतश्च—इतरस्य श्रावकस्येति सूत्रग्रहणमुपलक्षणम्, तेनान्यदपि पञ्चसंग्रहकर्मप्रकृतिप्रभृतिकं शास्त्रसन्दोहं गुरुप्रसादीकृतं निजप्रज्ञानुसारेण जिनदासवत् पठतीति।

तत्र सूत्राध्ययने जिनदास-कथा।

तत्कथा चैवम्—

अच्छरसोहजुयाए, अणिमिसकलियाइ हरिसहाइव्व। उवगूढा जउणनईइ, अत्थि इह पुरवरी महुरा॥१॥

समुचियससुत्तअज्झयणरज्जुसंजमियचवलमणपवगो। सिट्ठी जिणदासो तत्थ, साहुदासी पिया तस्स॥२॥

तेहिं पच्चक्खायं, सव्वस्स चउप्पयस्स जा जीवं । गिण्हंति गोरसं पइदिणंपि गोउलियहत्थाओ ॥३॥
जाया सिणेहवुड्ढी, अनुन्नं तेसिं इंतजंताणं । कइयावि विवाहमहे, गोवेहिं निमंतिओ सिट्ठी ॥४॥
आउलभावेण सयं, तत्थ न सिट्ठी गओ परं तेसिं । बहुवेसवारलंकारसारचीराइं अप्पेइ ॥५॥
पत्ता गुरुई सोहा, तेहिं हिट्ठेहिं सिट्ठिणो दुन्नि । कंबलसंबलभिहाणा गोणजुवाणा समुवणीया ॥६॥
सो जंपइ मह नियमो, चउप्पयाणं तओ बलावि इमे । ते गोणे सिट्ठिगिहे, बंधित्तुं गया सठाणंमि ॥७॥
चिंतइ सिट्ठी एए, जइ बाहिं मुच्चिहं तओ लोओ । वाहिस्सए जहिच्छं सुहेण इत्थेव चिट्ठंतु ॥८॥
सययं पोसइ फासुयचारीखाणेण गलियपाणेण । अट्ठमिचउद्दसीसुं, उववासं कुणइ जिणदासो ॥९॥
वाएइ पुत्थयं तह, अपुव्वमहिज्जए पइदिणंपि । तं सोउं ते सन्नी, उवसंता भद्दया जाया ॥१०॥
जं दिवसं जिणदासो, विगयपिवासो न भोयणं कुणइ । तंमि दिणे सुद्धमणा, आहारं तेवि वज्जंति ॥११॥
सिट्ठिस्स तेसु जाओ, बहुमाणो समहिओ सिणेहो य । भविया उवसंतप्पा भद्दगभाव त्ति काऊण ॥१२॥
सावयमित्तेण कयावि, नियय्गंतीइ जोइउं एए । नीया अपुच्छिऊणं, भंडीरमणस्स जत्ताए ॥१३॥
अन्नस्स नत्थि खलु एरिस त्ति विम्हियमणेण तेण इमे । अन्नन्नेहिं सद्धिं वसहेहिं वाहिया बहुयं ॥१४॥
ते सुकुमाला तुट्टा, सिट्ठिगिहे तेण आणिउं बद्धा । न चरंति नेव नीरं, पिबंति पीडाविहुरदेहा ॥१५॥
तो नायवइयरेणं, झूरेउं सिट्ठिणा बहुपयारं । विहिणाणसणं कारिय, दिन्नो तेसिं नमुक्कारो ॥१६॥

तो मरिउं सुहभावा, नागकुमारा महिड्डिया जाया । अज्झयणझाणपवरो, सिट्ठीवि गओ मरिय सुगइं ॥१७॥
एवं च सूत्राध्ययनोद्यतोऽभूत्, परोपकारैर्जिनदास उच्चैः ।
विश्वप्रकाशैकसहस्रभानौ, तदत्र भव्याः ! कुरुत प्रयत्नम् ॥१८॥

॥ इति जिनदासकथा ॥

इत्युक्तः प्रवचनकुशलस्य सूत्रकुशल इति प्रथमो भेदः, सम्प्रत्यर्थकुशल इति द्वितीयं भेदं व्याचिख्यासुर्गाथापूर्वार्द्धस्य द्वितीयं पादमाह—

सुणइ तयत्थं तहा सुतित्थंमि ।

'शृणोति' आकर्णयति 'तदर्थं' सूत्रार्थं 'तथा' तेनैव प्रकारेण स्वभूमिकौचित्यरूपेण 'सुतीर्थे' सुगुरुमूले । यत आह—
"तित्थे सुत्तत्थाणं, गहणं विहिणा उ इत्थ तित्थमिणं । उभयन्नू चेव गुरू, विही उ विणयाइओ चित्तो" ॥ इत्यादि ॥
अत्रायमाशयः–ऋषिभद्रपुत्रवत् संविग्नगीतार्थगुरुसमीपश्रवणसमुत्पन्नप्रवचनार्थकौशलेन भावश्रावकेण भाव्यमिति ।

ऋषिभद्रपुत्रकथा चैवम्—

इत्थेव जंबुदीवे, भारहवासस्स मज्झिमे खंडे । अत्थि पुरी आलभिया, न कयावि अरीहि आलभिया ॥१॥
सुगुरुप्पसायउल्लसियविमलबहुपवयणत्थकोसल्लो । इसिभद्दपुत्तनामो, सड्ढो तत्थासि सुवियड्ढो ॥२॥



तत्र प्रवच-
नार्थ कौशले
ऋषिभद्र-
पुत्रकथा।

अन्नेवि तत्थ निवसंति, सावया आवयासु दढधम्मा । इसिभद्दसुओ कइयावि तेहिं मिलिएहिं इय पुट्ठो ॥३॥
भो ! भो ! देवाणुपिया !, देवाण ठिई कहेसु अम्हाणं । सोवि हु पवयणभणियत्थसत्थकुसलो इय भणेइ ॥४॥
असुरा नागा विज्जू, सुवन्न अग्गी य वाउ थणिया य । उदही दीव दिसा विय, दसहा इह हुंति भवणवई ॥५॥
पिसाय भूया जक्खा य, रक्खसा किन्नरा य किंपुरिसा । महोरगा य गंधव्वा, अट्ठविहा वाणमंतरिया ॥६॥
ससि रवि गह नक्खत्ता, तारा जोइसिय पंचहा देवा । वेमाणिया य दुविहा, कप्पगया कप्पतीया य ॥७॥

तत्र कल्पगताः—

सोहम्मीसाणसणंकुमारमाहिंदबंभलंतगया । सुक्कसहस्साराणयपाणयआरणयअच्चुयजा ॥८॥

कल्पातीतास्त्विमे—

सुदरिसणसुप्पबद्धं, मणोरमं सव्वभद्दसुविसालं । सोमणसं सोमाणसपीइकरं चेव नंदिकरं ॥९॥
विजयं च वेजयंतं, जयंतमपराजियं च सव्वट्ठं । एएसु जे गया ते, कप्पाईया मुणेयव्वा ॥१०॥
चमरबलि अयरमहियं, दिवड्ढपलियं तु सेसजं माणं । आउं दो देसूणुत्तराग पलियं वणयराणं ॥११॥
पलियं सवासलक्खं, सवाससहस्सं च पलियमद्धं च । चउभागो य कमेणं, ससिरविगहरिक्खताराणं ॥१२॥
दो साहि सत्त साहिय दस चउदस सतर अयर जा सुक्को । इक्किक्काहिग तदुवरि, तित्तीसं अणुत्तरेसु परं ॥१३॥
दसवरिससहस्साइं, भवणवणेसु ठिई जहन्ना उ । पल्लचउभागो चंदाइचउसु तारेसु अडभागो ॥१४॥

पलियं अहियं दो अयर साहिया सत्त दस य चउदस य । सतरस जा सहस्सारे तदुवरि इग अयरवुड्ढि त्ति ॥१५॥
अह जन्तुक्कोसठिई, अयरा तित्तीस हुंति सव्वट्ठे । इत्तो परेण देवा, देवाण ठिई य वुच्छिन्ना ॥१६॥
इसिभद्दपुत्तकहियं, इणमट्ठं सुट्ठियंपि ते सड्ढा । सव्वे असद्दहंता, नियनियगेहेसु संपत्ता ॥१७॥
सुपभूयभत्तिआहूयपवरपुरुहूयवहुसमूहनओ । अह तत्थ वीरसामी, चामीयरसमपहो पत्तो ॥१८॥
सिरिपवयणउच्छप्पणपुव्वं जयतायपायनमणत्थं । इसिभद्दपुत्तसहिया, ते सव्वे सावया पत्ता ॥१९॥
काउं पयाहिणतिगं, सुभत्तिजुत्ता नमित्तु ते सामिं । निसियंति उचियदेसे, इय धम्मं कहइ भुवणगुरू ॥२०॥
भो भविया ! अइदुलहं, नरजम्मं लहिय उज्जमह सययं । अण्णाणहणणमल्ले, पवयणभणियत्थकोसल्ले ॥२१॥
इय आयण्णिय धम्मं, ते सड्ढा विन्नवंति जयपहुणो । तं देवठिइविसेसं, सव्वं इसिभद्दसुयकहियं ॥२२॥
तो संसइ संसयरेणुपुंजहरणे समीरणो सामी । भो भद्दा ! देवठिइं, एमेव अहंपि जंपेमि ॥२३॥
इय सोउं ते सड्ढा, इसिभद्दसुयं सुयत्थकुसलमइं । खामित्तु नमित्तु पहुं, संपत्ता नियनियगिहेसु ॥२४॥
इयरोवि वंदिय जिणं, पुच्छिय पसिणाइं सगिहमणुपत्तो । वरकमलुव्व पहूवि हु, अन्नत्थ सुवासए भविए ॥२५॥
सम्ममिसिभद्दपुत्तो, चिरकालं पालिऊण गिहिधम्मं । कयमासभत्तचाओ, जाओ सोहम्मसग्गसुरो ॥२६॥
अरुणाभंमि विमाणे, चउपलियाइं तहिं सुहं भुत्तुं । चविय विदेहे पवयणकुसलो होउं सिवं गमिही ॥२७॥

**एवं निशम्य सम्यग् भव्या ! ऋषिभद्रपुत्रसुचरित्रम् । भवत भवतापहारिषु कुशलधियः प्रवचनार्थेषु ॥२८॥**

तत्र प्रवचनार्थकौशले ऋषिभद्र-पुत्रकथा।

इति ऋषिभद्रपुत्रकथा ॥

इत्युक्तः प्रवचनकुशलस्य अर्थकुशल इति द्वितीयो भेदः, साम्प्रतमुत्सर्गापवादकुशलाभिधानौ तृतीयचतुर्थभेदौ युगपदभिधित्सु-र्गाथोत्तरार्द्धमाह—

उस्सग्गववायाणं विसयविभागं वियाणाइ ॥५३॥

'उत्सर्गापवादयोः' जिनप्रवचनप्रतीतयोः, 'विषयविभागं' करणाकरणप्रस्तावं विशेषेण जानाति—अवगच्छति। अयमत्राभिप्रायः—नोत्सर्गमेव केवलमालम्बते, नाप्यपवादमेव प्रमाणीकरोति, किं तर्हि ? अचलपुरश्रावकसमुदायवत् तयोरवसरमवबुध्यते।

उक्तश्च—

"उन्नयमविक्ख निन्नस्स, पसिद्धी उन्नयस्स इयरा उ। इय अन्नुन्नपसिद्धा, उस्सग्गववाय दो तुल्ला" ॥

ज्ञात्वा च यथाऽवसरं तयोर्विषये स्वल्पव्ययबहुलाभां प्रवृत्तिमातनोतीति।

अचलपुरश्रावकसमुदायकथा चेयम्—

बहुभद्दसालभावेण, पउरसोमणससंगयत्तेण। निज्जिणियकणयअचलं, अचलपुरं अत्थि वरनयरं ॥१॥
तत्थ त्थि जइणपवयणपभावणाकरणपवणमणकरणा। उस्सग्गववायविऊ, बहवे सुमहड्डिया सड्ढा ॥२॥
कन्नाविन्नानइअंतरंमि तत्थेव तावसा बहवे। निवसिंसु तत्थ एगो, विसारओ पायलेवंमि ॥३॥

सो पयलेवबलेणं, निच्चं संचरइ सलिलपूरेवि । थलमग्गे इव धणियं, जणयंतो विम्हयं लोए ॥४॥
तं दट्ठुं मुद्धजणो, दुस्सहमिच्छत्ततावसं तत्तो । महिसो विव तद्दंसणपंके निस्संकमणुपत्तो ॥५॥
जह पच्चक्खं अम्हाण, सासणे दीसए गुरुपहावो । न तहा तुम्हं इय सो, धिट्ठो धरिसेइ सड्ढजणं ॥६॥
मिच्छत्तथिरीकरणं, मा मुद्धाणं हवेउ इय सड्ढा । उस्सग्गपयं लीणा, तं दिट्ठीएवि न नियंति ॥७॥
अह मउलियकुमयपमोयकइरवो वइरसामिमाउलओ । सिरिअज्जसमियसूरी, सूरु व्व समागओ तत्थ ॥८॥
सव्विड्ढीए सव्वेवि, सावया ते लहुं समागम्म । भूमिलियमउलिकमला, गुरुपयकमलं नमंसंति ॥९॥
वाहजलुल्लियनयणा, सुदीणवयणा य निययतित्थस्स । संसंति तावसकयं, तामसमसमंजसं सव्वं ॥१०॥
अह भणइ गुरू सड्ढा !, अवियड्ढजणं इमो कवडबुद्धी । केणावि पायलेवप्पमुहपयारेण वंचेइ ॥११॥
न हु कावि तवोसत्ती, तवस्सिणो तावसस्स एयस्स । तं सोउं ते सड्ढा, वंदिय गुरुणो गया सगिहं ॥१२॥
अववायकरणसमयं, नाउं ते सावया विमलमइणो । अह तं तावसमइआयरेण भुत्तुं निमंतंति ॥१३॥
सोवि हु बहुलोयजुओ, पत्तो एगस्स सावगस्स गिहे । तं दट्ठुं समयन्नू, सहसा अब्भुट्ठए सोवि ॥१४॥
उववेसिय भणइ इमं, पक्खालावेसु नियपयपउमं । न हवइ गरुएसु धुवं, अत्थीणं पत्थणा विहला ॥१५॥
तस्स अणिच्छंतस्सवि, पाए पाऊयउसिणनीरेण । तह सो धोयइ जह तत्थ, लेवगंधोवि न हु ठाइ ॥१६॥
गरुयपडिवत्तिपुव्वं, तं भुञ्जावइ न सो पुणो मुणइ । भोयणआसायंपि हु, भाविविगोवणभएण भिसं ॥१७॥

६ प्रवचन-
कुशल इति
भावश्रावक-
लक्षणम् ।

तत्र उत्सर्गा
पवादकौश-
ले अचलपु-
रश्रावकस-
मुदायकथा।

जलथंभकूडदंसणसमुस्सुएणं जणेण परियरिओ । सरियातीरं पुगरत्ति, जिमिउं सो तावसो पत्तो ॥१८॥
अज्जवि य लेवअंसो, कोवि हवित्ति त्ति चिंतिय पविट्ठो । नइतीरे लहु बुड्डो, पकुणंतो बुडबुडारावं ॥१९॥
किच्चिरमम्हणा मायाविणा वयं वंचियत्ति चिंतंता । मिच्छत्तिणोवि जाया, तयाऽणुरत्ता जइणधम्मे ॥२०॥
तक्कालं तुमुलकरे, नयरजणे तह य दत्ततालंमि । पत्ता समियायरिया, फुरंतबहुजोगसंजोगा ॥२१॥
काउमणा जिणसासणपभावणं सरियअंतरालंमि । जोगविसेसं खिवित्तिउं, लोयसमक्खं इय भणिंसु ॥२२॥
विण्णे ! तुह परतीरे, गंतुं वयमिच्छिमो तओ झत्ति । तत्तडदुगंपि मिलियं, सायं चिंचादलजुयं व ॥२३॥
तत्तो अमंदआणंदपुण्णचउवण्णसंघपरियरिया । सिरिअज्जसमियगुरुणो, परतीरभुवं समणुपत्ता ॥२४॥
ते तावसा निएउं, आयरियं पयासियप्पभावं तं । सव्वे गयमिच्छत्ता, तेसिं समीवे पवज्जिंसु ॥२५॥
ते बंभदीवनिवासिणु त्ति तेसिं पहाणवंसम्मि । बंभदीवगनामा, समणा सुयविस्सुया जाया ॥२६॥
इय समियकुमयतावा, भवियणमणनयगसिहिपमोयकरा । नवजलहरसारिच्छा, गुरुणो अन्नत्थ विहरिंसु ॥२७॥
ते सावयावि सुइरं, सिरिजिणवरपवयणं पभावित्ता । परिपालियगिहिधम्मा, सुगईए भायणं जाया ॥२८॥
इत्युत्सर्गापवादद्वयकुशलधियो दग्धमिथ्यात्वकक्षा, विस्फूर्जद्धर्मलक्ष्या अचलपुरवरश्रावकाः सुष्ठुदक्षाः ।
श्रीमत्तीर्थेशतीर्थस्वपरहितकरोत्सर्पणायै बभूवुस्तस्माद् भव्या! विवेकद्रुमघनसलिलं कौशलं तत्र धत्त ॥२९॥

॥ इत्युत्सर्गापवादलक्षणगुणद्वयेऽप्यचलपुरश्रावकसमुदायकथा ॥

इत्युक्तः प्रवचनकुशलस्योत्सर्गापवादौ तृतीयचतुर्थभेदौ, सम्प्रति विधिसारानुष्ठान इति पञ्चमं भेदं प्रकटयन् गाथापूर्वार्द्धमाह–

**वहइ सइ पक्खवायं विहिसारे सव्वधम्मणुट्ठाणे।**

'वहति' धत्ते सदा 'पक्षपातं' बहुमानं 'विधिसारे' विधानप्रधाने 'सर्वधर्मानुष्ठाने' देवगुरुवन्दनादौ। इदमुक्तं भवति–विधिकारिणमन्यं बहु मन्यते, स्वयमपि सामग्रीसद्भावे यथाशक्ति विधिपूर्वकं धर्मानुष्ठाने प्रवर्तते, सामग्र्यभावे पुनर्विध्याराधनमनोरथान्न मुञ्चति, एवमप्यसावाराधकः स्याद्, ब्रह्मसेनश्रेष्ठिवत्।

तत्कथा चेयम्—

गंगाविभूषिता नन्दिकलिता वृषभासिता। शंभुमूर्तिरिवात्रास्ती पुरी, वाणारसी वरा ॥१॥
दारिद्र्यमुद्रितस्तत्र, ब्रह्मसेनोऽभवद् वणिक्। यशोमती च तत्पत्नी, सोऽन्यदाऽगाद् बहिः पुरात् ॥२॥
भव्यानां धर्ममाख्यान्तं, दृष्ट्वोद्यानगतं मुनिम्। प्रणम्य मुदितः श्रेष्ठी, निषसाद तदन्तिके ॥३॥
मुनिराख्यदहो भव्या !, यावज्जीवोऽयमेजति। तावदाहारमादत्ते, तावत् कर्माणि चार्जयेत् ॥४॥
ततोऽप्यनन्तदुःखानि, सहते दुःसहान्यसौ। तस्मात् सुखैषिणाऽऽहारगृद्धिस्त्याज्या मनीषिणा ॥५॥
श्रेष्ठ्यथाख्यदशक्योऽयमुपदेशः प्रभो ! ननु। मुनिः प्रोचे गृहस्थानामस्ति भोः ! पौषधव्रतम् ॥६॥
तत्राहाराङ्गसत्काराब्रह्मव्यापारवर्जनम्। देशतः सर्वतो वापि, कर्तव्यं द्विविधं त्रिधा ॥७॥
यावत्कालमिदं धन्यो, बिभर्ति श्रावको व्रतम्। तावत्कालं स विज्ञेयो, यत्याचारानुपालकः ॥८॥



तत्र विधि-
सारानुष्ठाने
ब्रह्मसेनश्रे-
ष्ठिकथा।

श्रुत्वेत्यत्रान्तरे कश्चिच्छ्राद्धः क्षेमङ्कराभिधः । बभाषे पौषधाख्येन, व्रतेनानेन मे कृतम् ।।९।।
श्रेष्ठ्यूचेऽथ मुनिं नत्वा, किं विद्वेषोऽस्य पौषधे ? । प्रकृत्या भद्रकस्यापि, जातस्य श्रावके कुले ।।१०।।
मुनिः स्माह भवादस्मात्, तृतीयेऽयं भवेऽभवत् । नगर्यां किल कौशाम्ब्यां क्षेमदेवाभिधो वणिक् ।।११।।
भ्रातरौ तत्र चाभूतां, महेभ्यौ श्रावकोत्तमौ । जिनदेवाभिधो ज्येष्ठो, धनदेवः कनिष्ठकः ।।१२।।
कुटुम्बभारमारोप्य, जिनदेवोऽन्यदाऽनुजे । पौषधं पौषधागारे, प्रत्यहं विधिना व्यधात् ।।१३।।
अन्यदा पौषधस्थस्य, तस्योत्पेदेऽवधिस्ततः । ज्ञात्वा ज्ञानोपयोगेन, सोऽवादीदनुजं यथा ।।१४।।
वत्सावशिष्टमायुस्ते, नूनं जाने दिनान् दश । विधेहि बान्धव ! स्वार्थं, सावधानमना भृशम् ।।१५।।
धनदेवस्ततः कृत्वा, चैत्ये पूजां गरीयसीम् । दत्त्वा दानं च दीनानामदीनो निर्निदानकम् ।।१६।।
सङ्घं च क्षमयित्वाऽसौ, विधायानशनं सुधीः । तृणसंस्तारके तस्थौ, स्वाध्यायध्यानतत्परः ।।१७।।
क्षेमदेवोऽथ तत्रैत्य तमूचे भोः ! कथं भवेत् ? । गृहस्थस्य ससङ्गत्वादवधिज्ञानमीदृशम् ।।१८।।
अथैतदपि चेत् सत्यं, भवेद् भद्र ! ततो भृशम् । ग्रहीष्ये पौषधं ज्ञानभानोः पूर्वाचलोपमम् ।।१९।।
धनदेवोऽथ तत्राह्नि, स्मरन् पञ्चनमस्क्रियाम् । विपद्य द्वादशे कल्पे, इन्द्रसामानिकोऽजनि ।।२०।।
कलेवरस्य तस्याशु, यथासन्निहितामरैः । गन्धाम्बुपुष्पवृष्ट्याद्यैश्चक्रे तुष्टैर्महामहः ।।२१।।
क्षेमदेवोऽपि वीक्ष्यैतदीपच्छ्रद्धालुतां दधत् । पौषधं प्रायशश्चक्रे, धर्मकामो यदा तदा ।।२२।।

कृत्वाऽऽषाढचतुर्मासे, सोऽन्यदा पौषधव्रतम् । तमस्विन्यां तपस्तापक्षुत्तृडार्त्तो व्यचिन्तयत् ॥२३॥
अहो ! दुःखमहो ! दुःखं, क्षुत्तृड्घर्मादिसम्भवम् । एवमार्त्याऽतिचर्यासौ, पौषधं हि ततो मृतः ॥२४॥
व्यन्तरेषु सुरो भूत्वा, सोऽभूत् क्षेमङ्करो ह्ययम् । यत् पौषधान्मृतः प्राक् तत्, त्रस्तोऽद्यापि तदाख्यया ॥२५॥
ब्रह्मसेन इति श्रुत्वा, प्रणिपत्य पुनर्मुनिम् । पौषधव्रतमादाय, धन्यंमन्यो ययौ गृहम् ॥२६॥
ततः प्रभृति स श्रेष्ठी, सुखेन प्राप्तजीविकः । कियत्कालमतीयाय, कुर्वाणः पौषधव्रतम् ॥२८॥
अन्यदा तत्पुराधीशे, मृतेऽकस्मादपुत्रिणि । पुरेऽरिभिर्भज्यमाने श्रेष्ठ्यनेशत्समानुषः ॥२८॥
गत्वा मगधदेशेषु, ग्रामे प्रत्यन्तवर्तिनि । कस्मिन्नाजीविकाहेतोरध्युवास विधेर्वशात् ॥२९॥
एकदा स तु सम्प्राप्ते, चतुर्मासकपर्वणि । धर्मानुष्ठानकरणे लालसो ध्यातवानिति ॥३०॥
अहो ! मे हीनपुण्यत्वमहो ! मे विधिवक्रता । यदहं न्यपतं स्थाने, साधुसाधर्मिकोज्झिते ॥३१॥
अभविष्यदर्हच्चैत्यमत्र चेत् तत् तदा मुदा । विधिसारमवन्दिष्ये, द्रव्यतो भावतोऽपि च ॥३२॥
गुरवोऽप्यभविष्यंश्चेदत्र सर्वत्र निःस्पृहाः । अदास्यं द्वादशावर्तवन्दनं तत्तदंह्रिषु ॥३३॥
एवं विचिन्त्य स श्रेष्ठी, श्रेष्ठधीर्गृहकोणके । स्वायत्तं पौषधं चक्रे, कर्मव्याधिसदौषधम् ॥३४॥
इतश्च तद्गृहे नित्यं, क्रयविक्रयणच्छलात् । चत्वारः पुरुषाः केचिन्निषेदुर्दुष्टबुद्धयः ॥३५॥
ततश्च तैर्नरैर्ज्ञातः, श्रेष्ठिनः पौषधक्षणः । सन्नह्य ब्रह्मसेनोऽपि, कालेऽस्वाप्सीद्यथाविधि ॥३६॥

तत्र विधिसारानुष्ठाने ब्रह्मसेनश्रेष्ठिकथा ।

निशीथप्रहरादूर्ध्वं, तस्मिन् सुप्तेऽथ ते नराः । प्रविश्य तत्र खात्रेणारेभिरे मोषितुं गृहम् ॥३७॥
प्रबुद्धः श्रेष्ठ्यथो गेहं, मुष्यमाणं विदन्नपि । मनागपि शुभध्यानान्नाचालीदचलाचलः ॥३८॥
संवेगातिशयात्सोऽनुशिष्टिमित्यात्मनो ददौ । रे जीव ! धनधान्यादौ, मा मुहः सर्वथा यतः ॥३९॥
एतद् बाह्यमनित्यं च, तुच्छं चातुच्छदुःखदम् । एतस्माद्विपरीते तु, धर्मे चित्तं दृढं कुरु ॥४०॥
श्रुत्वेत्यात्मानुशिष्टिं ते, तस्कराः श्रेष्ठिनो मुखात् । एवं विभावयामासुर्भावनां भवनाशिनीम् ॥४१॥
धन्योऽयमेव येनासौ, स्वस्यापि स्वस्य निःस्पृहः । अधन्या वयमेवैके, ये परार्थं जिहीर्षवः ॥४२॥
ततश्च लघुकर्मत्वाज्जातिस्मृतिमवाप्य ते । सर्वेऽपि देवतादत्तलिङ्गा आददिरे व्रतम् ॥४३॥
अथोदयमिते सूर्ये श्रेष्ठ्यकस्माद्विलोक्य तान् । नत्वाऽप्राक्षीत् किमेतद् वः पूर्वापरविरोधकृत् ? ॥४४॥
ततः सुपुण्यकारुण्यावनयो मुनयोऽभ्यधुः । अत्रास्ति वास्तवश्रीभिर्व्याप्ता तुरुमिणी पुरी ॥४५॥
तस्यामश्यामलस्वान्ताः, केशरिद्विजसूनवः । आसन्नासन्नकल्याणाश्चत्वारो विप्रपुङ्गवाः ॥४६॥
पितर्युपरतेऽस्तोकशोकशङ्कुनिपीडिताः । ते निर्ययुर्भवोद्विग्नास्तीर्थदर्शनकाम्यया ॥४७॥
अद्राक्षुः पथि गच्छन्तो, मुनिमेकं क्षुधादिभिः । मूर्छां गतं ततो भक्त्या, तं सज्जीचक्रिरे क्षणात् ॥४८॥
सकर्णा धर्ममाकर्ण्य तत्पार्श्वे जगृहुर्व्रतम् । विहरन्तः समं तेन पेठुः पूर्वगताद्यपि ॥४९॥
कृतजातिमदाः किञ्चित् कृत्वाऽनशनमुत्तमम् । ते चत्वारोऽपि पञ्चत्वमाप्यागुः प्रथमां दिवम् ॥५०॥

ततश्च्युत्वा च ते सर्वेऽप्यत्रैव भरतावनौ । अभवाम वयं जातिमद्‌तस्तास्करे कुले ॥५१॥
मुष्णन्तश्चाद्य ते सद्म, स्वानुशिष्टिश्रुतेस्तव । सञ्जातजातिस्मरणा, अगृह्णीम व्रतं वयम् ॥५२॥
धर्मलाभोऽस्तु तत्तुभ्यमभ्यर्णशिवसंपदे । विधिप्रधानधर्मानुष्ठाननिश्चलचेतसे ॥५३॥
इत्युदित्वा महानन्दपुरव्रजनसत्वराः । अत्वरा अपि तेऽन्यत्र, विहर्तुं मुनयो ययुः ॥५४॥
सुचिरं ब्रह्मसेनोपि प्रतिपालितसद्व्रतः । आराधनाविधेर्मृत्वा पदमव्ययमव्ययत् ॥५५॥

एवं ज्ञात्वा शुद्धभावप्रभावप्राप्तब्रह्म ब्रह्मसेनस्य वृत्तम् ।
दत्तस्वान्ता विध्यनुस्यूतधर्म्यानुष्ठाने तत् सन्ततं सन्तु सन्तः ॥५६॥

## ॥ इति ब्रह्मसेनकथा ॥



इत्युक्तः प्रवचनकुशलस्य विधिसारानुष्ठान इति पञ्चमो भेदः, सम्प्रति व्यवहारकुशल इति षष्ठं भेदं विवरीषुर्गाथोत्तरार्द्धमाह—

**देसद्धादणुरूवं जाणइ गीयत्थववहारं ॥५४॥**

'देशः' सुस्थितदुःस्थितादिः, 'अद्धा' कालः सुभिक्षदुर्भिक्षादिः, आदिशब्दात् सुलभदुर्लभादि द्रव्यं हृष्टग्लानादिभावश्च परिगृह्यते, तेषामनुरूपं जानाति गीतार्थव्यवहारम्, यो यत्र देशे काले भावे वा वर्तमानैर्गीतार्थैरुत्सर्गापवादवेदिभिर्गुरुलाघवपरिज्ञाननिपुणैराचरितो व्यवहारस्तं न दूषयतीति भावः । एवंविधव्यवहारकौशलं षष्ठं कौशलं भवति, एतच्चोपलक्षणं ज्ञानादित्रयप्रभृतिसर्वभावे-

ष्वपि यः कुशलः स प्रवचनकुशलः, अभयकुमारवत् ।

तत्कथा चेयम्—

अस्ति स्वस्तिकवत् पृथ्व्याः, पृथ्व्याः सम्पद आस्पदम् । सुचङ्गमङ्गलव्याप्तं, पुरं राजगृहाभिधम् ॥१॥
प्ररूढप्रौढमिथ्यात्वकाननैकपरश्वधः । सुधोज्ज्वलगुणश्रेणिः, श्रेणिकस्तत्र पार्थिवः ॥२॥
आगमार्थपरिज्ञानविस्फूर्जद्बुद्धिबन्धुरः । तस्याभयकुमाराख्यो, नन्दनो विश्वनन्दनः ॥३॥
आगच्छदन्यदा तत्र, मुनिपञ्चशतीयुतः । प्रकटीकृतसद्धर्मा, सुधर्मा गणभृद्वरः ॥४॥
वन्दितुं तत्पदद्वन्द्वं, सर्वर्द्ध्या श्रेणिको नृपः । शासनोत्सर्पणामिच्छन्नगच्छत् सपरिच्छदः ॥५॥
नानायानसमारूढस्तथान्योऽपि पुरीजनः । भक्तिसम्भारसञ्जातरोमाञ्चोच्छ्रसिताङ्गकः ॥६॥
एवं प्रभावनां प्रेक्ष्य, तत्रैकः काष्ठभारिकः । गत्वा भक्त्या गुरून् नत्वाऽश्रौषीद्धर्ममिमं यथा ॥७॥
जन्तुघातो मृषा स्तेयमब्रह्म च परिग्रहः । भो ! भो ! भव्या ! विमुच्यन्तां, पञ्चैते पापहेतवः ॥८॥
इत्याकर्ण्य नरेन्द्राद्या, पर्षन्नत्वा गृहेऽगमत् । द्रमकः स तु तत्रैव, स्वार्थार्थी तस्थिवान् स्थिरः ॥९॥
गुरुस्तमूचे चित्तज्ञश्चिन्तितं ब्रूहि सोऽब्रवीत् । जानामि यदि वः पादान्, वरिवस्यामि सर्वदा ॥१०॥
ततः प्रव्राज्य तं सद्यो, गुरवः कृतयोगिनाम् । अर्पयामासुराचारं, शिक्षयामासुराशु ते ॥११॥
तं गीतार्थयुतं भिक्षाचर्यायामन्यदा गतम् । प्रागवस्थाविदः पौराः, प्रेक्ष्य प्राहुरहंयवः ॥१२॥

अहो महर्द्धेस्त्यक्ताऽयं, महासत्त्वो महामुनिः । इति वक्रोक्तितः षिङ्गैरुपाहस्यत सोऽन्वहम् ॥१३॥
ततोऽसौ शैक्षकत्वात्तं परीषहमसासहिः । सुधर्मस्वामिना प्रोचेऽनूचानेन वचस्विना ॥१४॥
संयमे किं समाधानमस्ति ते सुष्ठु सोऽभ्यधात् । अस्ति युष्मत्प्रसादेन विहारोऽन्यत्र चेद् भवेत् ॥१५॥
विधास्यते समाधिस्ते, वत्सेत्युक्त्वा गुरुस्ततः । अभयस्यागतस्याख्याद्विहारो नो भविष्यति ॥१६॥
अभयः स्माह नः कस्मादकस्मादीदृशः प्रभो ! । अप्रसादोऽथ ते प्रोचुर्मुनेरस्य परीषहम् ॥१७॥
अभयोऽप्यभ्यधादेकं, दिवसं स्थीयतां प्रभो ! । निवर्तेत न चेदेष, न स्थातव्यं ततः परम् ॥१८॥
ओमित्युक्ते मुनीन्द्रेण, निस्तन्द्रः शासनोन्नतौ । जगाम धाम सद्धर्मधामधामाऽभयस्ततः ॥१९॥
रत्नानामसपत्नानां रत्नगर्भाधिपाङ्गणे । कोटित्रयीं समाकृष्य, राशित्रयमचीकरत् ॥२०॥
तुष्टो राजा ददात्युच्चै, रत्नकोटित्रयीं जनाः । गृह्णीतैतां यथेष्टं हि, पटहेनेत्यघोषयत् ॥२१॥
ततोऽमिलत् द्रुतं लोको, लोलुपः सोऽभयेन तु । बभाषे गृह्यतामेषा, रत्नकोटित्रयी मुधा ॥२२॥
युष्माभिः स्वगृहं गत्वाऽनया किन्तु गृहीतया । यावज्जीवं विमोक्तव्यं, जलमग्निः स्त्रियस्तथा ॥२३॥
इत्याकर्ण्य जनास्तूर्णमुत्कर्णा तज्जिघृक्षवः । बिभ्यतो निश्चलास्तस्थुः, सिंहनादं मृगा इव ॥२४॥
अभयः प्राह भोः ! कस्माद्विलम्बस्तेऽप्यदोऽवदन् । लोकोत्तरमिदं लोकः, किं कश्चित्कर्तुमीश्वरः ? ॥२५॥
सोऽवादीन्मुनिना तेन, तत्यजे त्रयमप्यदः । तत्कुतो हसतैवं तमतिदुष्करकारकम् ? ॥२६॥

६ प्रवचन-
कुशल इति
भावश्रावक-
लक्षणम् ।

तत्र व्यवहा-
रकौशले
अभयकुमा-
रकथा ।

न जानीमो वयं स्वामिंस्तस्यर्षेः सत्त्वमीदृशम् । तमृषिमचर्यिष्यामस्तदिदानीं महामते ! ॥२७॥
अभयेन समं गत्वा श्रीमन्तस्ते प्रणम्य तम् । महर्षिं क्षमयामासुः, स्वापराधं मुहुर्मुहुः ॥२८॥
इत्येवमभयो जैनशासनार्थविशारदः । अतिष्ठिपज्जनं मुग्धं, चिरं धर्मे जिनोदिते ॥२९॥

इत्यवेत्य हृतपापकश्मलं, सज्जना ! अभयवृत्तमुज्ज्वलम् ।
शिक्षयन्तु कृतसर्वमङ्गलं, सन्ततं प्रवचनार्थकौशलम् ॥३०॥

## ॥ इत्यभयकुमारकथा ॥

इत्युक्तः प्रवचनकुशलस्य व्यवहारकुशल इति षष्ठो भेदः, तदुक्तौ च समर्थितं भावश्रावकस्य प्रवचनकुशलरूपं षष्ठं लिङ्गम्, एतदेवोपसंहरन्नाह—

एसो पवयणकुसलो, छब्भेओ मुणिवरेहिं निद्दिट्ठो ।
किरियागयाइं छच्चिय, लिंगाइं भावसड्ढस्स ॥५५॥

'एष' उक्तस्वरूपः 'प्रवचनकुशलः' 'षड्भेदः' षट्प्रकारो 'मुनिवरैः' पूर्वाचार्यैर्निर्दिष्टः । ततश्चावसितं भावश्रावकलिङ्गषट्कप्रकरणमित्येतद्दर्शयन्नाह–'क्रियागतानि' क्रियोपलक्षणानि चियशब्दस्यावधारणार्थत्वात् षडेव 'लिङ्गानि' लक्षणानि अग्नेर्धूमवद् भावश्राद्धस्य यथार्थाभिधानश्रावकस्येति ।

ननु किमन्यान्यपि लिङ्गानि सन्ति येनैवमुच्यते क्रियागतानि? सत्यम्, सन्त्येव, यत आह—

भावगयाइं सतरस, मुणिणो एयस्स बिंति लिंगाइं।
जाणियजिणमयसारा, पुव्वायरिया जओ आहु ॥५६॥

'भावगतानि' भावविषयाणि सप्तदश 'मुनयः' सूरयः 'एतस्य' प्रकृतश्रावकस्य 'ब्रुवते' प्रतिपादयन्ति 'लिङ्गानि' चिह्नानि, 'ज्ञातजिनमतसारा' इति व्यक्तम्, 'पूर्वाचार्या' यतो यस्मात् 'आहुः' ब्रुवते इत्यनेन स्वमनीषिकापरिहारमाह। किं तदाहुरित्याह—

[1]इत्थिंदि[2]यत्थ[3]संसा[4]रविस[5]यआरं[6]भगेह[7]दंस[8]णओ।
[9]गड्डरिगाइपवाहे [10]पुरस्सरं आगमपवित्ती ॥५७॥
[11]दाणाइ जहासत्तीपवत्तणं विहि[12]र[13]रत्तदुट्ठे य।
[14]मज्झत्थमसं[15]बद्धो [16]परत्थकामोवभोगी य ॥५८॥
वेसा[17] इव गिहवासं पालइ सत्तरसपयनिबद्धं तु।
भावगयभावसावगलक्खणमेयं समासेणं ॥५९॥

आसां व्याख्या—स्त्री चेन्द्रियाणि चार्थश्चेत्यादिद्वन्द्वः, ततः स्त्रीन्द्रियार्थसंसारविषयारम्भगेहदर्शनानि तेष्विति "आद्यादिभ्यः"

इत्याकृतिगणत्वात् तसि कृते स्त्रीन्द्रियार्थसंसारविषयारम्भगेहदर्शनत इति भवति, ततश्चैतेषु भावगतं भावश्रावकलक्षणं भवतीति तृतीयगाथायां सम्बन्धः। तथा गड्डरिकादिप्रवाहविषये, तथा पुरस्सरमागमप्रवृत्तिरिति प्राकृतत्वाच्छन्दोभङ्गभयाच्च पूर्वापरनिपातः, ततश्चागमपुरस्सरं प्रवृत्तिर्वर्तनं धर्मकार्येष्विति गम्यते प्रस्तुतलिङ्गमिति। तथा दानादि यथाशक्ति प्रवर्तनमिति स्पष्टम्। प्राकृतत्वाच्च दीर्घत्वम् तथा विह्रीको–धर्मानुष्ठानं कुर्वन् न लज्जते, तथा अरक्तद्विष्टश्च सांसारिकभावेषु भवति। मध्यस्थो–धर्मविचारे न रागद्वेषाभ्यां बाध्यते, असम्बद्धो–धनस्वजनादिषु भावप्रतिबन्धरहितः, 'परार्थकामोपभोगी' परार्थं–परोपरोधादेव कामाः–शब्दरूपस्वरूपा उपभोगा–गन्धरसस्पर्शलक्षणा विद्यन्ते प्रवृत्तितया यस्य स परार्थकामोपभोगी समासः प्राकृतत्वात्, वेश्येव पण्याङ्गनेव कामिनमिति गम्यते गृहवासं पालयत्यद्य श्वो वा परित्यजाम्येनमिति भावयन्निति, सप्तदशविधपदनिबद्धम्, तुः पूरणे, 'भावगतं' परिणामजनितरूपमिति, जातावेकवचनमनुस्वारलोपश्च प्राकृतत्वात्, भावश्रावकलक्षणमेतत् 'समासेन' सूचामात्रेणेति गाथात्रयाक्षरार्थः।

अथ 'यथोद्देशं निर्देशः' इति न्यायात् प्रथमं स्त्रीति भेदं व्याख्यानयन्नाह—

**इत्थिं अणत्थभवणं, चलचित्तं नरयवत्तिणीभूयं।**
**जाणंतो हियकामी, वसवत्ती होइ न हु तीसे ॥६०॥**

'स्त्रीं' योषितम्, अनर्थानां–कुशीलतानिस्त्रिंशतादिदोषाणां भवनं–आश्रयस्थानम्, 'चलचित्ताम्' अन्यान्याभिलाषिणीम्, नरकस्य वर्तिनीभूतां–मार्गकल्पां 'जानन्' अवगच्छन् 'हितकामी' श्रेयोऽभिलाषुको 'वशवर्ती' तदधीनचारी 'भवति' स्यात् 'नहु' नैव 'तस्याः'

स्त्रियाः । काष्ठश्रेष्ठिवत्—

तत्कथा चेयम्—

रायगिहनयरमलयाचलंमि निवसेइ सुरहिगुणकलिओ । कट्ठो सिट्ठी चंदणकट्ठ व्व पिया य से वज्जा ॥१॥
सागरदत्तो पुत्तो, मयणा नामेण सारिया सारा । तुंडियनामा कीरो, सलक्खणो कुक्कुडो एगो ॥२॥
सिट्ठी गिहं भलाविय, पियाइ कइया गओ वणिज्जेणं । फुल्लबडुएण सद्धिं, सा जाया मुक्कमज्जाया ॥३॥
तं बडुयमवेलाए, इंतं जंतं गिहे निएऊण । कोवभरअरुणनयणा, मयणा कलयलइ उच्चसरं ॥४॥
भणइ य को निल्लज्जो, मह पहुगेहं अवेलमेइ इमो ? । तायस्स को न बीहइ, को निव्विन्नो य जीयस्स ? ॥५॥
समयण्णू तं कीरो खीरोवमवयणओ भणइ मयणे ! । कुण मोणं जो दइओ, वज्जाइ स एव णे ताओ ॥६॥
सा पुण तयं पयंपइ, हा पाव ! तुमं सजीवियसयण्हो । तायगिहेवि अकज्जं, सज्जं तं कह उवक्खेसि ? ॥७॥
स भणइ तं मारिज्जसि, तहवि इमा जाव विरमए नेव । ता कोमलगलकंदलवलणेणं निहणिया तीए ॥८॥
भिक्खट्ठाइ पविट्ठं, तंमि गिहे अन्नया मुणीण दुगं । सामुद्दविऊ ताणं, जिट्ठो जंपइ कणिट्ठमुणिं ॥९॥
जो सिरमंसं खाहिइ, इमस्स वरकुक्कुडस्स सो राया । होही निसुणियमेयं, पच्छन्नठिएण बडुएणं ॥१०॥
तो वज्जं सो पभणइ, लहु मह वियरेसु तंबचूडपलं । सा आह देमि अन्नं, स भणइ अन्नेण नहु कज्जं ॥११॥
बहुपावपुंजगुरुभावविजियवज्जाइ तयणु वज्जाए । गोसे विहणिय चरणाउहं तह रंधए विसियं ॥१२॥

१ स्त्रिया अवशवर्तित्वम् ।

तत्र काष्ठश्रेष्ठिकथा ।

भोयणकए रुयंतस्स, लेहसालागयस्स पुत्तस्स । तीए मंजरिपलमेव, दिन्नमन्नायतत्ताए ॥१३॥
तं सो जिमिऊण गओ, पत्तो बडुओ खणेण तत्थ तयं । भुंजंतो मंजरिपलमपिच्छिउं पुच्छए वज्जं ॥१४॥
कत्थ सिरमंससेसा, आह मए तं सुयस्स नणु दिन्नं । स भणइ जइ मे कज्जं, तो तं लहु हगसु पुत्तंपि ॥१५॥
तो दुग्गइगमिरीए, सुग्गइपुरपंथगमणपंगूए । अविवेयभूमियाए, मयणसरप्पसरविहुराए ॥१६॥
लज्जामज्जायविवज्जियाइ वज्जाइ तंपि पडिवन्नं । इय उल्लावो निसुओ सागरदत्तस्स धाईए ॥१७॥
सा तं कडीइ काउं, पत्ता चंपापुरिं तया राया । तहियं मओ अपुत्तो, निरूवियं दिव्वपणगं तो ॥१८॥
तेणं सो अहिसित्तो, रज्जे संपुण्णपुण्णउदएणं । तं पालइ सुत्थमणो, पणमंतमहंतसामंतं ॥१९॥
जं काऊण कडीए, धाईए एस आणिओ तेण । धाईए धाईवाहणुत्ति पत्तो पसिद्धिपयं ॥२०॥
कामासत्तमणाए, वज्जाए णासियंमि गिहसारे । कत्थवि कोवि पउत्थो, सीयंतो परियणो सव्वो ॥२१॥
इत्तो य कट्ठसिट्ठी, विढत्तवित्तो नियं गिहं पत्तो । तं दट्ठु सडियपडियं, घसक्किओ पुच्छए वज्जं ॥२२॥
सो कत्थ पिए ! पुत्तो, सा धाई कत्थ कत्थ सा मयणा । तं कत्थ धणं सो कत्थ, कुक्कुडो कत्थ सो लोओ ? ॥२३॥
इय पुट्ठावि हु पुणरुत्तमुत्तरं जा न देइ सा किंपि । कट्ठेण कट्ठपंजरमज्झठिओ तो सुओ पुट्ठो ॥२४॥
नियचेलंचलचलणेण, तीइ सो सुबहु भेसविज्जंतो । जंपइ कंपिरहियओ, सिट्ठिवरिट्ठं विसिट्ठमई ॥२५॥
तं पुच्छसि पुणरुत्तं, एसा मं भेसए भिसं ताय ! । ता वग्घदुत्तडीसंकडंमि पडिओ किमु करेमि ? ॥२६॥

१ स्त्रिया अवशवर्तित्वम्।

तो पंजराउ मुक्को, घरतरुवरसिहरसंठिओ कीरो । तं सव्वं पुव्वुत्तं, वुत्तंतं कहइ जहनायं ॥२७॥
इय भणिय नमिय सिट्ठिं, गओ सुओ मणसमीहिए ठाणे । सिट्ठीवि तीइ चरियं सोउं एवं विचिंतेइ ॥२८॥
अत्थिरपेमत्तमहो ! अहो ! चलत्तं अहो ! अकरुणत्तं । कामासत्तत्तमहो ! अहो ! महेलाण कवडत्तं ॥२९॥

किं च—

आनायास्तिमिसंहतेरिव दृढाः पाशा गजानामिव, प्रास्तीर्णा इव सर्वदिक्षु हरिणव्रातस्य वा वागुरा ।
स्वैरं भ्रान्तिभृतः पतत्रिनिवहस्येवाहिताः स्कन्धकाः, संसारेऽत्र विवेकमुक्तमनसां बन्धाय वामभ्रुवः ॥३०॥
भरियावि सिणेहेणं, सकज्जलग्गा सिणेहखयकारी । दीवसिहव्व सकलुसा, मलिणकारी चयह ता महिला ॥३१॥
जलसंगया दुरंता, दोपक्खखयंकरी दुरायारा । सरियव्व विसमपहनीयगामिणी महिलिया चयह ॥३२॥
इय चिंतिऊण सम्मं, धम्मंमि धणं च दाउ सव्वंपि । गिण्हेइ कट्ठसिट्ठी, पव्वज्जं कम्मगिरिवज्जं ॥३३॥
वज्जा उ निवभएणं, नट्ठा बडुएण सह तओ झत्ति । चंपाइ गंतु चिट्ठइ, न मुणइ निययं सुयं निवइं ॥३४॥
अह कट्ठमुणी कट्ठाणुट्ठाणपरायणो सुगीयत्थो । एगागी विहरंतो, कयावि चंपं पुरिं पत्तो ॥३५॥
तत्थ य भिक्खाहेउं, घरंघरेणं भमंतओ पत्तो । वज्जाइ गिहं नाओ, तीए जह एस मे भत्ता ॥३६॥
जाणाविस्सइ नूणं, मह दोसे एस नयरिलोयस्स । ता तह करेमि अहयं, जह कीरइ झत्ति निव्विसओ ॥३७॥
तो तीइ तस्स दिन्नं, सहिरण्णं मंडयाइयं अन्नं । तेणवि सहसा गहिए, चोरो चोरुत्ति वाहरियं ॥३८॥

तत्र काष्ठश्रेष्ठिकथा।

सो तलवरेण गहिउं, जा नीओ निवइमंदिरे ताव । सहसच्चिय धाईए, दिट्ठो उवलक्खिओ य तहा ॥३९॥
निवडित्तु चलणजुयले, कुहकुहं रोइउं समाढत्ता । भणियं निवेण अम्मो ! तुमं अयंडे रुयसि किह णु ? ॥४०॥
सा भणइ गग्गरसरं, तुह जणओ एस गहियपव्वज्जो । सुचिराउ मए दिट्ठो, तेण अहं वच्छ ! रोएमि ॥४१॥
तयणु निवेण स नेउं निवेसिओ आसणंमि गिहमज्झे । भणिओ य गिण्हसु तुमं, रज्जं तुह किंकरो अहयं ॥४२॥
साहू साहइ नरवर !, निरीहचित्ताण संगरहियाणं । सावज्जकज्जसज्जेण, अम्ह रज्जेण किं कज्जं ? ॥४३॥
सुरनरवरपरमप्पयलच्छीसंपायणिक्कपडिहत्थं । तं कुणसु नरेसर ! निच्चमेव जहसत्ति जिणधम्मं ॥४४॥
इय सोऊणं तुट्ठो, सिरिकट्ठमुणिंदपायमूलंमि । निम्मलसम्मत्तजुयं, गिहिधम्मं गिण्हइ नरिंदो ॥४५॥
इय वुत्तंतं वज्जा, वज्जपहारोवमं निसामित्ता । नरवरभयभीयमणा, नट्ठा तुरियं समं बडुणा ॥४६॥
नरनाहपत्थणाए, वासावासं ठिओ मुणी तत्थ । पडिबोहए बहुजणं, पभावए पवयणं बहुसो ॥४७॥
सुइरं अन्नाणीणवि, चित्तचमक्कं जणंतओ तवसा । पालिय वयमकलंकं, कट्ठमुणी सुगइमणुपत्तो ॥४८॥

एवं काष्ठश्रेष्ठिनः शुद्धवृत्तं, ज्ञात्वा चञ्चच्चङ्गवैराग्यरङ्गम् ।
मा स्म स्त्रीणां सर्वदोषाकराणां भव्या लोका वश्यतां जातु यात ॥४९॥

॥ इति काष्ठश्रेष्ठिकथा ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेषु स्त्रीति प्रथमो भेदः, साम्प्रतमिन्द्रियेति द्वितीयं भेदं व्याख्यानयन्नाह—

इंदियचवलतुरंगे, दुग्गइमग्गाणुधाविरे निच्चं।
भावियभवस्सरूवो रुंभइ सन्नाणरस्सीहिं ॥६१॥

इह इन्द्रियाणि श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनास्पर्शनभेदात् पञ्च। तथाहि—

पण इंदिय सोयाइं, दव्वे निव्वत्ति तहय उवगरणं। आगारो निव्वत्ती बज्झा चित्ता, इमा अंतो ॥१॥
पुप्फं कलंबुयाए, धन्नमसूरातिमुत्तचंदो य। होइ खुरप्पो णाणागिई य सोइंदियाईणं ॥२॥
विसयग्गहणसमत्थं, उवगरणं इंदियंतरं तंपि। जं नेह तदुवघाए गिण्हइ निव्वत्तिभावेवि ॥३॥

'इंदियंतरं तंपि' ति तदपीन्द्रियान्तरं द्रव्येन्द्रियद्वितीयो भेदः। भावेन्द्रियस्वरूपमिदम्—

लद्धुवओगा भाविंदियं तु लद्धि त्ति जो खओवसमो। होइ तदावरणाणं, तल्लाभे चेव सेसंपि ॥४॥

शेषमपि द्रव्येन्द्रियं तल्लाभ एव–लब्धिप्राप्तावेव भवतीति। उपयोगस्त्वेवम्—

जो सविसयवावारो, सो उवओगो स चेगकालंमि। एगेग चेय तम्हा, उवओगेगिंदिओ सव्वो ॥५॥

द्वीन्द्रियादिभेदस्तर्हि कथमित्याह—

एगिंदियाइभेया, पडुच्च सेसिंदियाइं जीवाणं। अहवा पडुच्च लद्धिंदियंपि पंचिंदिया सव्वे ॥६॥

तत्र विजय-
कुमारकथा।

कुतः सर्वेऽपि पञ्चेन्द्रिया इत्याह—

जं किर बउलाईणं, दीसइ सेसिंदिओवलंभोवि । तेणत्थि तदावरणक्खओवसमसंभवो तेसिं ॥७॥

पंचिंदिउ व्व बउलो, नरु व्व सव्वविसओवलंभाओ । तहवि न भन्नइ पंचिंदिओ त्ति बज्झिंदियाभावा ॥८॥

सुत्तोवि कुंभनिव्वत्तिसत्तिजुत्तो त्ति जह स घडकारो । लद्धिंदिएण पंचिंदिओ तहा बज्झरहिओवि ॥९॥

संगुलजोयणलक्खो, समहियनवबारसुक्कसो विसओ । चक्खुत्तियसोयाणं अंगुलअस्संखभागियरो ॥१०॥

भास्वरद्रव्यं त्वाश्रित्य बहुतरमपि—

पणसयसत्ततीसा, चउतीससहस्स लक्खइगवीसा । (२१३४५३७) पुक्खरदीवड्ढनरा पुव्वेणवरेण पिच्छंति ॥११॥ इति ।

ततश्चेन्द्रियाण्येव—करणान्येव चपलाः—शीघ्रगामित्वेन तुरङ्गा—अश्वास्तान् दुर्गतिमार्गं—दुर्योनिपदवीं—'अनुधाविरे'त्ति अनुधावनशीलान् नित्यं—सदा भावितं—पुनःपुनरालोचितं भवस्वरूपं येन स तथाविधो 'रुणद्धि' निवर्तयति सतीभिः—शोभनाभिर्ज्ञानरश्मिभिः—श्रुतवल्गाभिः विजयकुमारवत् ।

## तत्कथाचैवम्—

गयगुणवुड्ढिनिसेहा, गुरुलाघववन्ननासपरिमुक्का । अत्थिह अउव्वलक्खणवित्ति व्व पुरी कुणाल त्ति ॥१॥

तत्थ य आहवमल्लो, राया निज्जिणियसयलरिउमल्लो । नियमुहजियकमलसिरी, कमलसिरी पणइणी तस्स ॥२॥

पुत्तो विजयकुमारो, हेलानियसत्तिहीलियकुमारो । नियरूवविजियमारो, निरुद्धसव्विंदियवियारो ॥३॥

बालत्तणेवि रूवत्तणाउ विज्जाहरेण सो हरिउं । पुत्तत्थिएण नीओ, सुरम्मनयरीइ वेयड्ढे ॥४॥

तेणामियतेएणं, रण्णा रयणावलीइ देवीए । दिन्नो पुत्तत्तेणं, पडिवन्नो तीइ तुट्ठाए ॥५॥
सो वड्ढिओ सुहेणं, कलाकलावेण भूसियसरीरो । कमसो उदग्गसोहग्गपावणं जुव्वणं पत्तो ॥६॥
अह दट्ठूणं इंदियतक्करअवहरियनाणवररयणा । रयणावली पयंपइ, विजयकुमारं इय रहंमि ॥७॥
तं सुहय ! मज्झ पइणा अपुत्तएणं पुरीकुणालाए । कमलसिरीआहवमल्लरायतणओ इहाणीओ ॥८॥
सोहग्गरूवजुव्वणमेयं, मह संगमेण ता इण्हिं । सहलीकरेसु दाहामि, जेण तुहं सव्वविज्जाओ ॥९॥
विज्जाहरचक्कवई, होउं नयरीइ इह सुरम्माए । उवभुञ्जसु रज्जसिरिं, मए समं विसयसुक्खं च ॥१०॥
इय सोउं तीइ वयणं, वज्जनिवायं व सवणसुहहरणं । विजयकुमारो चित्ते चिंतिउमेवं समाढत्तो ॥११॥
इत्तियकालं पुत्तत्तणेण पालेवि जं इमीइ मई । ववसियमकज्जमेयं, धिरत्थु इत्थीसहावस्स ॥१२॥
तहवि इमीइ सयासा, विज्जाउ गहेमि इत्थ पत्थावे । इय चिंतिऊण कुमरेण, जंपियं देहि मे विज्जा ॥१३॥
विगयमईए तीए, ताओ दिन्नाउ भणइ तो कुमरो । इच्चिरमंबे ! जणणित्ति मन्निया ता नमो तुज्झ ॥१४॥
अन्नं च तुह पसाएण, जं मए जाणियाउ विज्जाओ । ता अज्जदिणाउ तुमं, विसेसओ मह गुरुट्ठाणं ॥१५॥
ता एयं दुच्चरियं, अम्मो ! दुव्ववसियं असंभावं । जाव न जाणइ ताओ, ता विरमसु एयपावाओ ॥१६॥
इय कुमरनिच्छयं नाउं, तीइ रोसेण जंपियं वच्छ ! । कामासत्तो जइवि हु, मा पत्थह मह तुमं पुत्तो ॥१७॥
अहवा न तुज्झ दोसो, जाईरूवं हवेइ आवरणं । अकुलीणो कोवि तुमं, सव्वमजाया कहं मुत्ता ? ॥१८॥

तव्वयणजणियगुरुकोउएण कुमरेण चिंतियं महिला । कामासत्ता कवडेण नत्थि तं खलु न जं कुणइ ॥१९॥
हारेइ धणं मारेइ, नियपइं अहिलसेइ पुत्तंपि । भक्खेइ अभक्खंपि हु, मइलियचित्ता सया महिला ॥२०॥

अवि य—

असुइत्तं अलियत्तं, निंतंसगत्तं च वंचगत्तं च । अइकामासत्तित्तं एयाणं, महिलिया ठाणं ॥२१॥
मरणं विदेसगमणं, दारिद्दं बंधणं च दोहग्गं । चिरसंसारनिवासो हवेइ महिलाइ संगेणं ॥२२॥
ता जइ तायस्स इमं, संसिज्जइ ता न सद्दहे ताओ । लीलावइवयणाणं, पायं सव्वोत्ति पत्तियइ ॥२३॥
चिट्ठामि जइ विरोहो, जइ पुण वच्चामि सच्चयं एयं । तहवि हु ताएण समं, होइ विरोहो न जुत्तु त्ति ॥२४॥

किं च—

कोहाविट्ठो मारइ, लोहासत्तो य हरइ सव्वस्सं । परिभवकरो य माणी, मायावी डसइ सप्पु व्व ॥२५॥
एसा कामासत्ता, मायाबहुला य कूडकवडनिही । चत्तनयलज्जकरुणा, सव्वपयत्तेण चइयव्वा ॥२६॥
एवं चिंतिय कुमरो, विज्जाबलसंजुओ गहिय खग्गं । गयणेण लहुं पत्तो, पिउनयरीए कुणालाए ॥२७॥
दट्ठूण नियजणणिं, कमलसिरिं सोयगल्लकयहत्थं । अत्ताणं पयडंतो अवयरिओ तीइ पयमूले ॥२८॥
विहियपणामो नियजणणिजणयपमुहाण सयललोयाणं । तं नाउं नियतणयं, कमलसिरी चुंबए सीसे ॥२९॥
हरिसियहियओ जणओ, कुमरं मूलाउ पुच्छए सुद्धिं । जा साहइ सो सव्वं, ता दूओ आगओ तत्थ ॥३०॥

आहवमल्लो दूएण, पभणिओ लहु अउज्झनयरीए । जयवम्मनिवेण तुमं, सेवाइ कए समाहूओ ॥३१॥
सोऊण दूयवयणं, विजयकुमारेण पभणियं रे ! रे ! । अम्हाणवि किं सामी, अत्थि परो भरहवासंमि ? ॥३२॥
भणिओ निवेण कुमरो, वच्छ ! सया अम्ह सो पहू राया । साहम्मिओ सुमित्तो, सुपसाओ तह विसेसेणं ॥३३॥
ता गंतव्वं खु मए, जयवम्मनराहिवस्स पयमूले । चिरदंसणसुहहेउं, चिट्ठ तुमं जणणिपासंमि ॥३४॥
तो कहकहमवि जणयं, कुमरो पुच्छिय अउज्झनयरीए । थोवदिणेहिं पत्तो, हयगयरहसुहडपरियरिओ ॥३५॥
निवअत्थाणे कुमरो, सपरियणो अवसरंमि संपत्तो । रायस्स कयपणामो, कयसम्माणो य उवविट्ठो ॥३६॥
विण्णाणकलालावण्णरूवनयचायविक्कमगुणेहिं । वित्थरिओ विमलजसो, विजयकुमारस्स नयरीए ॥३७॥
इत्थंतरंपि जयवम्मरायधूया सहाइ सीलवई । बहुपरिवारसमेया, समागया तायनमणत्थं ॥३८॥
कुमरं पलोयमाणी, निहुयं सहियाहिं सा हसिज्जंती । लज्जंती नियपिउणो, पुणो गया निययभवणंमि ॥३९॥
दट्ठूण पवररूवं, सीलवई विजयवम्मनरवइणा । कुमरस्स झत्ति दिन्ना, पारद्धो ताण वीवाहो ॥४०॥
पत्ते तंमि वसंते, संतेवि करेइ जो अणुवसंते । तो उज्जाणंमि गओ, सपरियणो कीलिउं राया ॥४१॥
तत्थ य मज्जणकीलापमत्तचित्तस्स भूमिनाहस्स । विज्जाहरेण हरिया सीलवई कुमररूवेण ॥४२॥
अलियं अमुणंतीए, खयरं पइ जंपियं इमं तीए । मा कुणसु सुहय ! हासं, लज्जामि सहीण लहु मुंच ॥४३॥
सह परियणेण सहियाजणेण सभएण तयणु पुक्करियं । उ पिच्छ देव ! गयणे निज्जइ केणावि सीलवई ॥४४॥

सहसत्ति इमं सोउं, राया गुरुरोसअरुणनयणजुओ। करकलियखग्गदंडो, इओ तओ धावए कुद्धो ॥४५॥
अइउब्भडभडवाया, सुहडावि हु गहियपहरणसमूहा। पहणंता महिवीढं, समुट्ठिया जुज्झसज्जमणा ॥४६॥
अह सो सूरोवि निवो, किं कुणउ महीचरो नहयरेण ?। अहवा गरुयावि लहंति, परिभवं नूण धूयाहिं ॥४७॥
चिंतेइ मज्झ संपइ, जलकीलाविब्भलस्स अववसस्स। सत्थत्थनयपरस्सवि संजाओ परिभवो एसो ॥४८॥

किं च—

जातेति चिंता महतीति शोकः, कस्य प्रदेयेति महान् विकल्पः।
दत्त्वा सुखं स्थास्यति वा नवेति, कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम् ॥४९॥

अवि य—

धाउव्वायरसायणजंतवसीकरणखण्णवाएहिं। कीलावसणेहिं तहा, गरुयावि पडंति गुरुवसणे ॥५०॥
इय सोइऊण सुइरं, भणइ निवो तं कुमार ! पवलबल !। वच्च लहु तस्स पुट्ठिं, नहगमणं तुज्झ जं अत्थि ॥५१॥
तो भणइ विजयकुमरो, जइ पहु ! तुह पुत्तियं न आणेमि। पणदिणगंतो तो हं, जाजीवंपि हु न परिणेमि ॥५२॥
भणिऊण इमं कुमरो, असिहत्थो नहयलं समुप्पइओ। विज्जाहरपिट्ठीए, जा वच्चइ कयपइण्णो सो ॥५३॥
ता जलहिमज्झट्ठियविमलसेलसिहरे निएवि सो खयरो। कुमरेण निट्ठुरेहिं, वयणेहिं हक्किओ एवं ॥५४॥
रे ठाहि ठाहि थीहर ! सरणं कत्थित्थ वच्चसि दुरप्पा ?। मज्झ बलं न वियाणसि, अवहरसि नरिंदपियधूयं ॥५५॥

विज्जाहरोवि तव्वयणजणियअच्छिन्नमच्छरच्छन्नो । पहरेइ जाव कुमरस्स, कुलिसअइतिक्खचक्केण ॥५६॥
तं वंचेइ कुमारो, चक्कं तडित्तरलमंडलग्गेण । विज्जाबलिओ तम्मउलिमंडला पाडए मउडं ॥५७॥
नाऊण कुमारबलं, नरिंदधूयं चएवि तत्थेव । खयरो गुरुकोवभरो पत्तो किक्किंधगिरिसिहरे ॥५८॥
ते जुज्झंता गाढं, तत्थ ठिया दोवि पंच दिवसाइं । तो कुमरेणं कहकहवि, निज्जिओ खेयरो नट्ठो ॥५९॥
कुमरोवि तस्स पिट्ठीइ, धाविओ जा खणंतरं इक्कं । ता पिच्छइ वेयड्ढे, सुरम्मनयरीइ तं पत्तं ॥६०॥
एसो सो मह ताओ, एयं भवणं इमा य सा जणणी । चिंतइ हा! दुट्ठु कयं, ताए जं पहरियं तिव्वं ॥६१॥
एएण अहं बालत्तणाउ अइसच्छवच्छलमणेण । पुत्तु व्व लालिओ पालिओ य सुकलाउ सिक्खविओ ॥६२॥
ता सव्वहावि एसो, ताओ पुज्जो गुरुव्व मज्झ सया । जं एस रणे विजिओ, कलंकिओ तं मए अप्पा ॥६३॥
एवं जा निवपुत्तो, चिंतेइ विसायपसरमलिणमुहो । ता विज्जाहरपहुणा, वुत्तो खेयं चयसु वच्छ ! ॥६४॥
पहुकज्जे पहरिज्जइ, जणयस्सवि एस खत्तियायारो । अन्नं तए न नायं, जह एसो मज्झ ताओ त्ति ॥६५॥
अन्नं च तुह पसायणकए मए आगएण तुह पिट्ठिं । तत्थेसा सीलवई, दिट्ठा रइरंभसमरूवा ॥६६॥
तत्तो इंदियविवसेण, तुज्झ रूवेण सा मए हरिया । तहवि तए हं विजिओ, पुढवीए इक्कवीरेण ॥६७॥
अन्नं च तुज्झ सीलं, कहियं सव्वंपि मह परियणेणं । जह एसा तुह जणणी, कुविया तुब्भोवरि सकामा ॥६८॥
ता खलु इट्ठविओगो अणिट्ठसंसग्गिआवईओ य । अत्थब्भंसो मरणंपि, होइ इंदियपरवसाणं ॥६९॥

जाइकुलविणयसुयसीलचरणसम्मत्तवित्तदेहाई । इंदियअवहरियमणो हारेइ नरो खणद्धेणं ॥७०॥

किं च—

"दिवसरजनिसारैः सारितं पक्षगेहं, समयफलकमेतन्मण्डितं भूतधात्र्याम् ।

इह हि जयति कश्चिन्मोक्ष(ह)मक्षैर्विधेयैरधिगतमपि चान्ये विप्लुतैर्हारयन्ति" ॥७१॥ [ ग्रं. ६००० ]

विजिइंदियपुरिसेसुं, चूडामणिणो नमो नमो तुज्झ । रयणावलीइ वयणेहिं, मोहिओ जो तया न तुमं ॥७२॥

वीरेसु पट्टबंधो, छज्जइ तुह चेव जेण तरुणत्ते । जगजगडणपवणाइं करणाइं, जियाइं हेलाए ॥७३॥

इय उववूहिय कुमरं, जंपइ तं वच्छ ! गिण्ह मह रज्जं । अहयं पुण सामण्णं, निस्सामण्णं चरिस्सामि ॥७४॥

तं सोउ भणइ कुमरो, कयंजली एरिसंमि संसारे । मज्झवि एवं जुत्तं, निदंसणं खलु इमं ताय ! ॥७५॥

तो अमियतेयराया, नियजामेए ठवित्तु नियरज्जं । गिण्हेइ भवविरत्तो, पव्वज्जं सुगुरुपयमूले ॥७६॥

अह कुमरो वलिऊणं, समेइ जा विमलसेलसिहरंमि । ता तत्थ विमलसीलं, सीलवइं नेव पिच्छेइ ॥७७॥

चिंतइ विसन्नचित्तो, निरत्थओ मह परक्कमो सयलो । जीइ कए ताएणवि, समं मए पहरियं तिव्वं ॥७८॥

सावि न मुद्धा लद्धा, जयवम्मनिवोवि नेव तोसविओ । सुहडत्तणं च नट्ठं, भट्ठपइण्णस्स जगमज्झे ॥७९॥

ता हं नियपइण्णं, करेमि सच्चं चरित्तगहणेणं । इय चिंतिय सो गिण्हइ, दिक्खं सुत्थियसुगुरुपासे ॥८०॥

सीलवई पुण तत्तो, वहणागयचंदसिट्ठितणएणं । सिंघलदीवे नीया, सा तत्थ करेइ जिणधम्मं ॥८१॥

सा कइया भरुयच्छे, सुदंसणाए समं समागम्म । काऊण दुक्करतवं, पत्ता ईसाणसग्गंमि ॥८२॥
विजयकुमारमुणीवि हु, विहणियनीसेसकम्मसंताणो । वरनाणदंसणाणंदविरियकलिओ गओ सिद्धिं ॥८३॥
इति विजयकुमारो ज्ञानवल्गाभिरुच्चचपलकरणवाहान् सन्निरुध्य प्रकामम् ।
परमपदमुदारं प्रापदापद्वियुक्तं, तदिह भविकलोकास्तज्जये धत्त यत्नम् ॥८४॥

## ॥ इति विजयकुमारकथा ॥

उक्तः सप्तदशसु भेदेषु इन्द्रियेति द्वितीयो भेदः । इदानीमर्थ इति तृतीयं भेदं प्रचिकटयिषुराह—

सयलाणत्थनिमित्तं, आयासकिलेसकारणमसारं ।
नाऊण धणं धीमं, न हु लुब्भइ तंमि तणुयंपि ॥६२॥

इह धनं ज्ञात्वा तत्र न लुभ्यतीति योगः । किंविशिष्टं धनम् ? 'सकलानर्थनिमित्तं' समस्तदुःखनिबन्धनम् ।

उक्तं च—

"अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे । आये दुःखं व्यये दुःखं, धिगर्थो दुःखभाजनम्" ॥

आयासश्चित्तखेदो यथा—

"राजा रोक्ष्यति किं नु मे हुतवहो दग्धा किमेतद्धनं, किं वाऽमी प्रभविष्णवः कृतनिभं लास्यन्त्यदो गोत्रिकाः ।


तत्र चारुद-
त्तदृष्टान्तः ।

मोषिष्यन्ति च दस्यवः किमु तथा नंष्टा निखातं भुवि, ध्यायन्नेवमहर्दिवं धनयुतोऽप्यास्तेतरां दुःखितः" ॥

तथा क्लेशः–शरीरपरिश्रमः, तयोः कारणं–निबन्धनम्, तथाहि—

"अर्थार्थं नक्रचक्राकुलजलनिलयं केचिदुच्चैस्तरन्ति, प्रोद्यच्छस्त्राभिघातोत्थितशिखिकणकं जन्यमन्ये विशन्ति ।

शीतोष्णाम्भःसमीरग्लपिततनुलताः क्षेत्रिकां कुर्वतेऽन्ये, शिल्पं चानल्पभेदं विदधति च परे नाटकाद्यं च केचित्" ॥

तथा असारं सारफलासम्पादनात्, यदाह—

"व्याधीन्नो निरुणद्धि मृत्युजननज्यानिक्षये न क्षमं, नेष्टानिष्टवियोगयोगहृतिकृत् सध्र्यङ् न वा प्रेत्य च ।

चिन्ताबन्धुविरोधबन्धनवधत्रासास्पदं प्रायशो, वित्तं वित्तविचक्षणः क्षणमपि क्षेमावहं नेक्षते" ॥

इत्थम्भूतं धनं ज्ञात्वा 'न हु लुभ्यति' नैव गृध्यति 'धीमान्' बुद्धिमान् तस्मिन् द्रव्ये चारुदत्तवत् 'तनुकमपि' स्तोकमपि आस्तां बह्वित्यपेरर्थः । भावश्रावको हि नान्यायेन तदुपार्जनाय प्रवर्तते, नाप्युपार्जिते तृष्णावान् भवति । किं तर्हि ?

आयादर्द्धं नियुञ्जीत, धर्मे समधिकं ततः । शेषेण शेषं कुर्वीत यत्नतस्तुच्छमैहिकम् ॥

इति विमृशन् यथायोगं तत् सप्तक्षेत्र्यां व्ययतीति ।

### चारुदत्तदृष्टान्तश्चायम्—

अत्थित्थ पवरनयरी, चंपा लंपागलोगपरिमुक्का । तत्थ य सिट्ठी भाणू भाणू, इव सुयणकमलाणं ॥१॥

तस्स सुभद्दा गिहिणी, अइनिम्मलसीलधम्मवरधरणी । पुत्तो य चारुदत्तो, सुदंतिदंतु व्व विमलगुणो ॥२॥

मित्तेहिं सह रमंतो, पयाणुसारेण खयरमिहुणस्स । स कयावि कयलिगेहे, पत्तो पिच्छेइ असिफलगं ॥३॥
तत्थ दुमेणं सद्धिं, दट्ठुं सव्वंगकीलियं खयरं । तस्सासिकोसमज्झे, ओसहितियगं तहा तेण ॥४॥
निस्सल्लो रूढवणो, सचेयणो ताहि ओसहीहि कओ । सो जंपइ वेयड्ढे, गिरिंमि सिवमंदिरपुरंमि ॥५॥
पुत्तो महिंदविक्कमनरवइणो अमियगइ त्ति खयरो हं । धूमसिहवयंसेणं, जुत्तो सिच्छाइ कीलंतो ॥६॥
हरिमंतपव्वयगओ, हिरण्णसोमस्स माउलस्स सुयं । सुकुमालियंति दट्ठुं, मयणत्तो तो गओ सपुरं ॥७॥
मित्ताउ तयं नाउं, पिउणा परिणाविओ य तस्स सुयं । अह धूमसिहो तीए, अहिलासी सो मए नाओ ॥८॥
सुकुमालियाइ तेण य, समन्निओ तह य आगओ इहयं । सो मं पमत्तयं कीलिऊणं हरिउं गओ भज्जं ॥९॥
तुमएवि मोइओ तेण, तुज्झ नाहं भवामि रिणमुक्को । इय भणिय गओ खयरो, सिट्ठिसुओ नियगिहं पत्तो ॥१०॥
सव्वट्ठमाउलसुयं पिउणा उव्वाहिओ स मित्तवइं । तहवि हु नीरागमणो, खित्तो दुल्ललियगोट्ठीए ॥११॥
पत्तो गणियाइ गिहे, वसंतसेणाइ तीइ आसत्तो । सोलससुवण्णकोडी बारसवरिसेहिं सो देइ ॥१२॥
अक्काइ निद्धणुत्ति य, गिहाउ निस्सारिओ गओ सगिहं । नाउं पिऊण मरणं, गाढयरं दूमिओ चित्ते ॥१३।
भज्जाइ भूसणेहिं, माउलसहिओ गओ वणिज्जेणं । नयरे उसीरवत्ते, कप्पासो तत्थ बहु किणिओ ॥१४॥
जंतस्स तामलित्तिं, मग्गे दड्ढो दवेण सो सयलो । निब्भग्गसेहरोत्ति य, माउलएणावि सो चत्तो ॥१५॥
आसारूढो गच्छइ, पच्छिमदिसि तयणु से मओ तुरगो । छुहतण्हपरिकिलंतो, तत्तो पत्तो पियंगुपुरं ॥१६॥

सिट्ठी सुरिंददत्तो, पिउमित्तो तत्थ तस्सगासाओ । वुड्डीइ दव्वलक्खं, गहिउं सो पोयमारूढो ॥१७॥
पत्तो जमुणादीवं, तस्स पुरेसुं गमागमेणं च । अज्जेइ चारुदत्तो, कहमवि कणगट्ठकोडीओ ॥१८॥
अह तस्स नियदेसाभिमुहं इंतस्स पवहणं फुट्टं । तो फलगओ सत्तहिं, दिणेहिं किच्छेण उत्तिन्नो ॥१९॥
उंबरवइवेलतडे, पत्तो रायपुरबाहिरुज्जाणे । तत्थ तिदंडी दिणकरपहनामो तस्स संमिलिओ ॥२०॥
तेणं सह सो पत्तो, रसहेउं पव्वयस्स कूवीए । मंचीइ ठिओ तुंबयसहिओ रज्जूइ ओइन्नो ॥२१॥
तो केणवि भणियमिणं, कोसि तुमं तयणु तेण इय वुत्तं । वणिओ मि चारुदत्तो, तिदंडिएणित्थ पक्खित्तो ॥२२॥
सो भणइ पुणो वणिओ, इमिणा खिविओ मि इत्थ मे देहो । अद्धो रसेण खद्धो, तुमंपि ता इत्थ मा विससु ॥२३॥
इय भणिऊणं तेणं, समप्पियं तस्स भरिय रसतुंबं । रज्जूइ कंपियाए, तिदंडिणा करिसिओ सो उ ॥२४॥
मग्गइ रसतुंबं तं, नुत्तारइ तेण तो रसो चत्तो । अह लिंगिणा स खित्तो, पडिओ रसकूवियाइ तडे ॥२५॥
तो वणिणा सो वुत्तो, गोहापुच्छेण उत्तरिज्जासु । एवमिमो उत्तरिओ, सुमरंतो पंचनवकारं ॥२६॥
जा गिरिकुहराउ बहिं, निक्खंतो ताव धाविओ महिसो । तो सो सिलाइ उवरिं, आरूढो जाव चिट्ठेइ ॥२७॥
ता निग्गओ अयगरो, तेसिं जुज्झंतयाण सो नट्ठो । मिलिओ माउलपुत्तो, अहन्नया रुददत्तो सो ॥२८॥
भंडं अलत्तयाई(इं) घित्तुं चलिया सुवण्णभूमुवरिं । तरिउं बेगवइनइं, गिरिकूडे ते गया दोवि ॥२९॥
तो चित्तवणे तत्तो, टंकणदेसंमि तत्थ दो मेसा । किणिउं तेसुं चडिउं पंथो अइलंघिओ बहुओ ॥३०॥

रुद्देण तओ वुत्तं, अओ परं नत्थि भूमि(मी) चारुत्ति । तो मेसे मारेउं, उच्छल्लेउं पविस्सामो ॥३१॥
तो पललब्भंतीए, भारुंडविहंगमेहिं उक्खित्ता । वच्चिस्सामो अम्हे, सुवण्णभूमिं सुहेणावि ॥३२॥
अह तेणुत्तो रुद्दो, जेहिं उत्तारिया विसमभूमिं । ते मेसे कह हणिमो, हियजणए परमबंधुव्व ? ॥३३॥
रुद्दो भणइ न एसिं, तं सामी तेण मारिओ मेसो । निहओ बीओ य पुणो, तरलच्छो नियइ भाणुसुयं ॥३४॥
तो वुत्तो तेण इमं, ताउमसत्तो तुमं किमु करेवि । जिणधम्मं पडिवज्जसु, सरणं विहुरेवि बंधुसमं ॥३५॥
दिन्नो नवकारो तस्स, चारुदत्तेण अह हओ छगलो । रुद्देण तओ दुन्निवि, तब्भत्थासुं पविट्ठा ते ॥३६॥
छुरियाहत्था विहगेहिं, उट्टि(ड्डि)या एगआमिसत्थीणं । तेसिं जुज्झंताणं, भाणुसुओ सरवरे पडिओ ॥३७॥
छुरियाइ छित्तु भत्थं, निस्सरिऊणं गओ नगं एगं। दिट्ठो तत्थुस्सग्गे, ठिओ मुणी वंदिओ तेण ॥३८॥
पारियकाउस्सग्गो, भणइ मुणी धम्मलाभमह दाउं । कहमित्थ भूमिगोयरअविसयसेले तुमं पत्तो ? ॥३९॥
खयरो हं अमियगई, तइया तुमए विमोइओ पत्तो । अट्ठावयगिरिपासे, मं दट्ठुं सो अरी नट्ठो ॥४०॥
तो हं नियभज्जं गिण्हिऊण सिवमंदिरंमि संपत्तो । रज्जे मं ठविऊणं, मज्झ पिया गिण्हए दिक्खं ॥४१॥
पुत्तो मे सीहजसो, पत्तीइ मणोरमाइ संजाओ । बीओ वराहगीवो, मम तुल्ला विक्कमबलेहिं ॥४२॥
गंधव्वसेणधूया, तह जाया विजयसेणपत्तीए । रज्जं जुवरज्जमहं, दाउं पुत्ताण पव्वइओ ॥४३॥
कक्कोडगसेलोऽयं, लवणजले कुंभकंठगे दीवे । अहमित्थ तवेमि तवं, तुमंपि साहसु नियपबंधं ॥४४॥

३ धनविषये
लोभाभावः

तत्र चारुद-
त्तदृष्टान्तः ।

सिद्धिसुएणवि सव्वो, नियवुत्तंतो मुणिस्स तो कहिओ । अह साहुसुया ते दो, पत्ता तेहिं मुणी नमिओ ॥४५॥
भणिया ते वरमुणिणा, पुत्ता ! सो एस चारुदत्तु त्ति । इत्थंतरे महिड्ढी, तत्थेगो आगओ तियसो ॥४६॥
तेण नओ सो पढमं, पच्छा साहू तओ य खयरेहिं । पुट्ठो साहइ देवो, हेउं वंदणविवज्जासे ॥४७॥

तथा हि—

सुलसा तह य सुभद्दा, ससाउ चरियाउ आसि कासीसु। वेयंगपारगाओ, ताहि जिया वाइणो बहवे ॥४८॥
अह जण्णवायपरिव्वायगेण सुलसा जिया कया दासी । बहुसो संसग्गीए, तेण य तीए सुओ जाओ ॥४९॥
लोगोवहासभीयाणि, ताणि तं मुत्तु पिप्पलस्स अहे । नट्ठाणि सुभद्दाए दिट्ठो मुहपडियपिंपो सो ॥५०॥
कयपिप्पलायनामो, तीए संवड्ढिओ गहियविज्जो । पियमायमेहपमुहे, जण्णे पण्णविय ते हणइ ॥५१॥
तस्स विणेओ वड्डलिनामा हं पसुवहाइ बहुजण्णे । काउं नरयंमि गओ, पंचभवे तो पसू जाओ ॥५२॥
हणिओ दिएहिं जण्णे, छट्ठभवे णेण दिन्नवकारो । सोहम्मे उववन्नो, तो पुव्वमिमो मए नमिओ ॥५३॥
इय भणिय चारुदत्तं, नमिउं च गओ सुरो सठाणंमि । खयरेहि तेहि सो पुण, नीओ सिवमंदिरे नयरे ॥५४॥
सक्कारिओ य संमाणिओ य अइगरुयगउरवेण तहिं । खयरेहि तेहि सद्धिं, जा चलिओ नियपुरीसमुहं ॥५५॥
ता तत्थ सुरवरो सो, पत्तो तव्विहियवरविमाणंमि । आरूढो सिद्धिसुओ, समागओ झत्ति चंपाए ॥५६॥
बहुयाउ कणयकोडीउ दाउमह सो सुरो गओ सग्गं । नमिऊण चारुदत्तं, खयरावि गया सठाणंमि ॥५७॥

सव्वट्ठमाउलो तह, भित्तवई सा वसंतसेणा य । सव्वेवि तस्स मिलिया, फुरिया विमला तहा कित्ती ॥५८॥
अह सो अत्थमणत्थिक्कमंदिरं जाणिउं विसुद्धमणो । परिगहपरिमाणजुयं, गुरुमूले लेइ गिहिधम्मं ॥५९॥
जहजुग्गं नियदव्वं सव्वं ववविऊण सत्तखित्तेसु । मुच्छामच्छरचत्तो, स चारुदत्तो गओ सुगइं ॥६०॥

एवं ज्ञात्वा चारुदत्तस्य वृत्तं, नित्यं शिष्टाः ! सुष्ठु सन्तुष्टिपुष्टाः ।
अर्थेऽनर्थक्लेशसम्बन्धबद्धे, धर्मक्षोभं मा स्म धत्त प्रलोभम् ॥६१॥

॥ इति चारुदत्तदृष्टान्तः ॥

४ संसारे रतिर्न कर्तव्या

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेष्वर्थ इति तृतीयो भेदः, सम्प्रति संसार इति चतुर्थं भेदं व्याचिख्यासुराह—

**दुहरूवं दुक्खफलं, दुहाणुबंधिं विडंबणारूवं । संसारमसारं जाणिऊण न रइं तहिं कुणइ ॥६३॥**

तत्र श्रीदत्त-श्रेष्ठिदृष्टान्तः ।

इह—तत्र संसारे रतिं न करोतीति योज्यम् । किं कृत्वा ? 'ज्ञात्वा संसारम्' । किंविशिष्टम् ? 'दुःखरूपम्' जन्मजरामरणरोगशोकादिग्रस्तत्वेन दुःखस्वभावम्, तथा 'दुःखफलम्' जन्मान्तरे नरकादिदुःखभावात्, 'दुखानुबन्धिं'ति दुःखानुबन्धिनं, पुनः पुनर्दुःखसन्तानसन्धानात्, तथा विडम्बनायामिव जीवानां सुरनरनैरयिकतिर्यक्सुभगदुर्भगादीनि विचित्राणि रूपाणि यत्र स विडम्बनारूपस्तम्, एवंविधं संसारं चतुर्गतिरूपं सुखसाराभावादसारं 'ज्ञात्वा' अवबुध्य न 'रतिं' धृतिं तस्मिन् 'कुरुते' विदधाति, श्रीदत्तवत् ।

तद्दृष्टान्तश्चायम्—

पाउसकालंमिव, बहुसस्से कुल्लागसन्निवेसंमि । आसि जिणधम्मरत्तो, सिरिदत्तो सिट्ठिवरपुत्तो ॥१॥
तस्सन्नदिणे भज्जा, अतक्कियं चेव मरणमणुपत्ता । संसारविरत्तमणो तो, सो इय चिंतिउं लग्गो ॥२॥
सुरअन्नुन्नुदीरियसाहावियवेयणासमभिभूए । नरयभवंमि जियाणं, निमेसमित्तंपि नत्थि सुहं ॥३॥
छिंदणभिंदणबंधणदुव्वहभरवहणपमुहदुक्खेहिं । संययं संतत्ताणं तिरियाणं नाम किं सुक्खं ? ॥४॥
खंडियआखंडलचावचंचलं जीवियं इह नराणं । दुल्लहजणसंजोगो, महल्लकल्लोललोलतरो ॥५॥
तावभरक्कंतसकुंतपोयगलचंचलं च तरुणत्तं । इह संपयाउ संपासंपायसमाउ सयकालं ॥६॥
इय इट्ठाणिट्ठविओगजोगबहुरोगसोगपमुहेहिं । निच्चमभिदूमियाणं, मणुयाणं न सुहगंधोवि ॥७॥
असरिसअमरिसईसाविसायरोसाइमइलियमणेसु । अमरेसुवि अइफारो, दुहसंभारो वियंभेइ ॥८॥
ता चउगइसंसारे जियाण, नूणं न अत्थि इत्थ सुहं । सयलसुहहेउदुहजलहिसेउजिणधम्ममुक्काणं ॥९॥
इय चिंतिय सिरिदत्तो, गिण्हइ दिक्खं कमेण संजाओ । गीयत्थो पडिवज्जइ एगल्लविहारवरपडिमं ॥१०॥
कस्स य गामस्स बहिं, पेयवणे अन्नया निसाइ इमो । अणमिसनयणो वीरासणेण चिट्ठइ सुहज्झाणे ॥११॥
इत्तो हरी पसंसइ, सिरिदत्तमुणी इमो सुरेहिं पि । झाणाउ न चालिज्जइ, खरपवणेहिं व अमरगिरी ॥१२॥
तं गिरमसद्दहंतो, एगो अमरो समागओ तत्थ । काउं रक्खसरूवं, तं मुणिमुवसग्गए गाढं ॥१३॥
चंदणतरुं व वेढिय, सव्वंगं डसइ विसहरो होउं । सुमुणिं तह अविहत्थो, गलहत्थइ हत्थिरूवेण ॥१४॥

जालइ जडालजालाकलावकलियं चउद्दिसिं जलणं । खरपवणेहिं पाडित्तु, भामए अक्कतूलं व ॥१५॥
करहयकंठकडारेण, पंसुपूरेण पिहइ सव्वत्तो । विसमविसपसरचिंचइयविंछुए मुंचए तत्तो ॥१६॥
अह मुणिणोऽभिप्पायं, अमरो जा नियइ ओहिनाणेण । ता चिंतइ साहू साहसिक्कमल्लो मणंमि इमं ॥१७॥
सहियउवसग्गवट्टो, तुज्झ इमो जीव ! सत्तकसवट्टो । सत्थावत्थाइ वयं पायं पालेइ सव्वोवि ॥१८॥
इत्तो अणंतगुणिया, सहिया वियणा तए परवसेण । रे जिय ! इह भवगहणे, न उण गुणो कोवि संजाओ ॥१९॥
ता धरिय धीरिमगुणं, खणं इमं वेयणं सहसु सम्मं । जेण लहुं भवजलहिं तरिउं पाविसि सिवं जीव ! ॥२०॥
खामेसु सयलजीवे, तुमंपि तेसिं खमेसु रे जीव ! । सव्वत्थ कुणसु मित्तिं, इमंमि अमरे विसेसेण ॥२१॥
जो य तुमं कड्डि(ड्ढि)य भवकारागाराउ खिवइ किर अप्पं । सो एस सुरो तुह जिय ! परमसुही परमबंधू य ॥२२॥
किं तु इमो उवसग्गो, जह मह हरिसाय भवहरत्तेण । तहणंतभवनिबंधणमिमस्स इय दूमइ मणंमि ॥२३॥
इय सुहभावणघणसारवासियं मुणिमणं मुणेवि सुरो । गयमिच्छतो पयडियनियरूवो नमिय इय थुणइ ॥२४॥
जय जय दढधम्मधुरीण ! रीण ! भवगहणओ मुणिसु धीर ! । धीरिमनिज्जियमंदर ! दरविसहरनियरवरगरुड ! ॥२५॥
तस्स तुह चरणकमलं, कमलसरं सारस व्व अणुसरिमो । जस्स सयं देविंदो, वंदिव्व पसंसइ गुणोहं ॥२६॥
इय थुणिऊण मुणिंदं, सुरलोयं सुरवरो गओ अहवा । गुणिथुणणाओ सग्गं, जंति जिया किमिह अच्छरियं ॥२७॥
सिरिदत्तमुणिवरोवि हु, परियायं पालिऊण चिरकालं । अणसणविहिणा मरिउं, जाओ अमरो महासुक्के ॥२८॥

४ संसारे रतिर्न कर्तव्या

तत्र श्रीदत्त-श्रेष्ठिदृष्टान्तः ।

तो चविउं साएए, पुरंमि सिरि तिलयनयरसिद्धिस्स । दइयाइ जसवईए, उयरे पुत्तो समुप्पन्नो ॥२९॥
सो अट्ठममासे जिणधम्मं, जणणीइ निसुणमाणीए । गब्भदुहं अमरसुहं, च निसामिउं संभरइ जाइं ॥३०॥
तो भवविरत्तचित्तो, अभिग्गहं लेइ जह मए समए । दिक्खच्चिय गहियव्वा, नियमो पुण गेहवासस्स ॥३१॥
कमसो जाओ कयपउमनामओ तरुणभावमणुपत्तो । चउनाणिगुरुसमीवे, गिण्हिय दिक्खं गओ मुक्खं ॥३२॥

श्रीदत्तचेष्टितमिति स्फुटफुल्लमल्लीवल्लीवितानविशदं विनिशम्य सम्यक् ।
निःसङ्ख्यदुःखनिकरप्रभवे भवेऽस्मिन् नित्यं विरक्तमनसो भविनो भवन्तु ॥३३॥

## ॥ इति श्रीदत्तदृष्टान्तः ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेषु संसार इति चतुर्थो भेदः, सम्प्रति विषय इति पञ्चमं भेदं व्याख्यानयन्नाह—

**खणमित्तसुहे विसए, विसोवमाणे सयावि मन्नंतो ।**
**तेसु न करेइ गिद्धिं, भवभीरू मुणियतत्तत्थो ॥६४॥**

क्षणमात्रं सुखं येभ्यस्ते तथा तान् 'विषयान्' शब्दादीन् 'विषोपमान्' कालकूटसन्निभान् परिणामदारुणानित्यर्थः, 'सदापि' नैकदैव 'जानानो'ऽवबुद्ध्यमानः, यथा किल विषं भुज्यमानं मधुरमास्वादं दर्शयति, परिणामे तु प्राणप्रहाणाय सम्पद्यते, एवमेतेऽपि विषया विरसावसाना इत्यवगच्छन् भावश्रावकस्तेषु न कुर्यात् 'गृद्धिम्' अत्यासक्तिं जिनपालितवत् 'भवभीरुः' संसारवासचकितमनाः,

किमिति गृद्धिं न करोति ? यतो 'मुणिततत्त्वार्थो' जिनवचनश्रवणाद्विज्ञाततदसारत्वः। तथाहि जिनवचनम्—

"विसएसु नत्थि सुक्खं, सुहाहिमाणो जियाण पुण एसो। पित्ताउरनयणाणं उवलम्मि सुवण्णबुद्धिव्व" ॥१॥

तथा

"भुंजंता महुरा विवागविरसा किंपागतुल्ला इमे, कच्छूकंडुयणं व दुक्खजणया दाविंति बुद्धिं सुहे।
मज्झण्हे मयतण्हिय व्व निययं मिच्छाभिसंधिप्पया, भुत्ता दिंति कुजोणिजम्मगहणं भोगा महावेरिणो" ॥ इत्यादि।

जिनपालितकथा पुनरेवम्—

जीई विसालाए सस्सिरीइ विजियव्व वोमपायाला। जाया सुण्णसुमलिणा, सा चंपा अत्थि इत्थ पुरी ॥१॥
सज्जणसुयमाकंदो, माकंदी नाम तत्थ सत्थाहो। जिणपालियजिणरक्खियअभिहाणा नंदणा तस्स ॥२॥
ते कुसलेणिक्कारस वाराओ गंतु आगया जलहिं। बारसमंपि हु बारं, चडिउं पोयंमि लोहेण ॥३॥
जा जंति जलहिमज्झे, कित्तियमित्तंपि ताव सहसत्ति। भग्गमभग्गाणं ताणं पवहणं पणियपडिपुण्णं ॥४॥
फलहेहिं तरिय जलहिं, ते लग्गा कहवि रयणदीवंमि। सरसफलाइं भुंजित्तु, तत्थ जीवंति दीणमणा ॥५॥ 
ता रयणदीवदेवी, रुद्दा खुद्दा निएवि ते दोवि। घणकसिणझलक्किरखग्गवग्गपाणी तहिं एइ ॥६॥
भणइ य अरे ! मए सह, भोए भुंजह इमंमि पासाए। इहरा इमिणा असिणा, लुणामि णे मउलिकमलाइं ॥७॥ 
भयकंपिरेहिं तेहि वि, तीए वयणं तहत्ति पडिवन्नं। तो दोवि झत्ति ते उक्खवित्तु सा नेइ नियभवणे ॥८॥

ताण सरीराउ असुहपुग्गले हरइ देइ आहारे । अमयरसाइं फलाइं, भुंजइ सह तेहिं वरभोए ॥९॥
सा भणइ कयावि इमे, लवणे गंतव्वमिण्हि हरिवयणा । सहसुट्ठिएण सह सुट्ठिएण लवणाहिवेण मए ॥१०॥
तत्थ य तिसत्तखुत्तो, तणकयवरमाइ सोहिउं जाव । अहमित्थ एमि ताव य, तुब्भेहि इहेव ठायव्वं ॥११॥
अह हुज्ज इत्थ अरई, ता पुव्वुत्तरिमपच्छिमुज्जाणे । रमह कमेणिक्केक्के, पाउसपमुहा रिऊ दो दो ॥१२॥
न य दाहिणउज्जाणे, गंतव्वं कहवि तत्थ जं वसइ । मसिकसिणतणू भुयगो, तेवि हु एवं ति मन्नंति ॥१३॥
इय भणिय गया एसा, तिसु उज्जाणेसु तेसु रममाणा । विणिवारियावि कुडेण, ते गया दाहिणुज्जाणे ॥१४॥
जा तस्संतो पविसंति, कहवि दुग्गंधपसरपरिभूया । ता सोउं कलुणसद्दं, जंति पुरो तयणुसारेण ॥१५॥
पेयवणमज्झसंठियसूलाखित्तं नियंति नरमेगं । कंदंतं विलवंतं, तह बहवे अट्ठिउक्कुरडे ॥१६॥
तो भीया सूलाभिन्नपुरिसपासंमि गंतु पुच्छंति । कोसि तुमं केण तुमं, तमवत्थं पाविओ भद्द ! ? ॥१७॥
स भणइ कायंदिपुरीवणिओ भिन्नवहणो इहं पत्तो । देविए गहिओ हं, भुत्ता भोगा मए सद्धिं ॥१८॥
अह लहुसगमवराहं, सयराहं कप्पिऊण तीइ अहं । पक्खित्तो सूलाए, एवं अन्नेवि नरनिवहा ॥१९॥
भयघणपवणपकंपिरतणुणो तरुणु व्व तयणु ते बिंति । एमेव तीइ वयमवि, संगहिया भद्द ! चिट्ठामो ॥२०॥
ता अम्हं किं होही ?, सो पुरिसो भणइ कवणु नणु मुणइ ? । किंतु वियक्के अइरा, तुम्हवि एसु च्चिय पहु त्ति ॥२१॥
तो मायंदीतणएहिं दीणवयणेहि पभणियं भद्द ! । जइ कमवि उवायं मुणसि, इत्थ ता कहसु णे पसिउं ॥२२॥

तो भणइ नरो सूलाभिन्नो उब्भिन्नकरुणरसपसरो । भद्द ! अत्थि उत्ताओ, अपच्चवाओ इहं एगो ॥२३॥

तथा हि—

इह पुव्वदिसारामे, अभिरामे वरतुरंगरूवधरो । निवसइ पगयाण सुहिक्कमेलओ सेलओ जक्खो ॥२४॥
सो अट्ठमिचाउद्दसिअमावसापुण्णिमासु सयकालं । कं तारयामि कं पालयामि पभणेइ उच्चसरं ॥२५॥
तारय पालय अम्हे, नाह ! अणाहे करेवि सुपसायं । एवं तुमे भणिज्जह, स तुम्ह सुत्थं तओ काही ॥२६॥
विसयविसमोहिएणं, दढमूढेणं इमं मए न कयं । तुब्भेहि पुण पमाओ, न हु इह मणयंपि कायव्वो ॥२७॥
तं वयणं अब्भुवगम्म, सम्ममागम्म तंमि उज्जाणे । न्हाएवि दोवि कमलाइं, गहिय ते जंति जक्खगिहे ॥२८॥
पणयजणविहियरक्खं, जक्खं दक्खं उवद्दवुद्दलणे । पूइत्तु भत्तिभूपत्तमत्थया पणिवयंति तओ ॥२९॥
एवं ताण कुणंताण, नियसमयंमि जंपए जक्खो । कं तारयामि कं पालयामि तो बिंति ते दोवि ॥३०॥
सामिय ! अणन्नसामन्नपुण्णकारुण्ण ! असरणसरण्ण ! । अम्हेच्चिय गयसरणे, तारय पालय पसिय इण्हिं ॥३१॥
जक्खो जंपइ संपइ, इमं करिस्से अहं परं तुब्भे । आरूढा मह पुट्ठीइ, सुट्ठु दट्ठुं जलहिमज्झे ॥३२॥
आगंतु झत्ति सा खुद्दवंतरी फरुसमउयकलुणाहिं । सिंगारपहाणाहियगिराहि हरिही मणं तुम्ह ॥३३॥
जइ कहवि कुणह तीए, अणुरायं जइवि नियह दिट्ठीए । नियपिट्ठीएवि हु णेत्ति, तयणु दूरं खिवेमि तुमे ॥३४॥
अह तीइ नाणुरज्जह, हवह न य विसयसुक्खसाविक्खा । तो तुब्भे नूण करेमि भायणं पीवरसिरीए ॥३५॥

तेवि हु तहत्ति आगाविणएणब्भुवगमंति तव्वयणं । तत्तो सेलगजक्खो विउव्विउं तुरगवररूवं ॥३६॥
ते दोवि जाव आरोविऊण पिट्ठीइ चल्लिओ तात्र । सा वंतरी सठाणे, समागया न नियइ तहिं ते ॥३७॥
तयणु पउंजइ ओहिं, ते पासिय लवणजलहिमज्झंमि । कोवभरजलिरगत्ता, पत्ता गयणेण तप्पासे ॥३८॥
भणइ य रे रे दुट्ठा, कह चलिया सेलगेण मं मुत्तुं । किं अज्जवि य अणज्जा ! मज्झ सरूवं न विण्णायं ? ॥३९॥
ता उज्झिवि लहु एयं, जइ मह सरणं सरेह न पुणोवि । तो उग्गखग्गदंडेणिमिणा पाडेमि णे सीसे ॥४०॥
एवं फरुसगिराहिं, अचयंती खोभिउं इमे कहवि । तो कलुणगब्भिणाहिं, सिंगारगिराहिं आढत्ता ॥४१॥
एगंतहियावि सुभत्तयावि सरलावि नेहसारावि । हा ! कहमहं अणाहा, नाहा ! हेलाइ मे चत्ता ? ॥४२॥
ता पसिउं एस जणो, अइदुस्सहविरहहुयवहपलित्तो । नियसंगमसलिलेणं, सुनिव्वुओ किज्जउ पुणोवि ॥४३॥
इय पभणियावि जाहे, ते दिट्ठीइवि नियंति न हु पच्छा । ता ओहीए नायं, खुभिही जिणरक्खिओ नूणं ॥४४॥
तो भणियं जिणरक्खिय !, सयावि तं हियवल्लहो मज्झ । आलवणरमणपमुहंपि, सह तए भावओ आसि ॥४५॥
जिणपालिओ उ एसो, वेसो च्चिय मह सयावि अवियड्ढो । जइ देइ न पडिवयणं, मा देउ तुहं पुण न जुत्तं ॥४६॥
तुह विरहे मम हियं, निद्दय ! दलइ व्व फुट्टइ व्व लहुं । ता जिणरक्खिय ! रक्खसु ओ जीयं मज्झ वच्चंतं ॥४७॥
रणरणिरमंजुमंजीरकिंकिणीसद्दजणियसवणसुहा । इय भणिरी तस्सुवरिं वरिसेइ सुवण्णकुसुमाइं ॥४८॥
अह निविडवियडनियडीकुडीइ तीए निएवि तं रूवं । ताइं वयणाइं निसुणिय मणहरणं भूसणरवं च ॥४९॥

पुव्वरमियाइं सुमरिय, अग्घाएऊण सुरहिगंधाइं । सव्वं सूलारोवियनरोवइट्ठं च पम्हुसियं ॥५०॥
सयमेव तहुहाइं दिट्ठाइं, अगणिऊण ऊणमई । सेलगजक्खस्स सुभासियाइं अवहीरिऊणं च ॥५१॥
कुसुमसरभिल्लसुमहल्लभल्लिबहुसल्लसल्लियसरीरो । जिणरक्खिओ निरिक्खइ, तयभिमुहं विमुहसुकयभरो ॥५२॥
अह तं विसयामिसविवसमाणसं नाउ सेलगो जक्खो । नियपिट्ठीए विहुणइ दीणमणं तं च निवडंतं ॥५३॥
रे रे दास ! मओ सित्ति, पभणिरी सा खुरे धरेऊण । कोवानलजलियतणू, दूरं पक्खिवइ गयणंमि ॥५४॥
तो निवडंतं संतं, पावा उद्दंडखग्गदंडेण । खंडाखंडिं काउं, दसदिसि तं कुणइ भूयबलिं ॥५५॥
अह सुबहु किलकिलंती, हिट्ठा जिणपालियं बहुपयारं । उवसग्गइ अचयंती, खोभेउं जाइ सट्ठाणे ॥५६॥
जिणपालिओ खणेणं, सेलगजक्खेण पाविओ चंपं । अम्मापिऊण मिलिओ, तं सव्वं कहइ वुत्तंतं ॥५७॥
ते अंसुपुण्णनयणा, कुणंति जिणरक्खियस्स मयकिच्चं । कइयावि सुगुरुपासे, गिण्हइ जिणपालिओ दिक्खं ॥५८॥
इक्कारसअंगधरो, चिरकालं पालिऊण पव्वज्जं । दोसागरोवमाऊ, जाओ अमरो पढमकप्पे ॥५९॥



तत्तो चविय विदेहे, विसए चइऊण गिण्हिउं च वयं । सो परमपयं गमिही, एसो पुण उवणओ इत्थ ॥६०॥
जह रयणदीवदेवी, विसएसु अविरई तहा पावा । जह लाहत्थी वणिणो, सुहेसिणो पाणिणो तह य ॥६१॥
जह भीएहिं तेहिं, दिट्ठो आघायमंडले पुरिसो । तह भवदुहसयभीया, नियंति कहकहवि धम्मकहिं ॥६२॥
जह तेण तेसि कहिया, दारुणदुक्खाण कारणं देवी । तत्तो पुण नित्थारो, सेलगजक्खाउ पण्णत्तो ॥६३॥

दिट्ठो विरइसहावो, तह धम्मकही कहेइ भवियाणं । सयलदुहहेउभूया, विसयाविरइत्ति जीवाणं ॥६४॥
दुहियजियाण हि चरणं, सेलगपुट्ठाधिरोहणसमाणं । नीरनिहिव्व भवोहो, सिवगमणं सगिहगमणं व ॥६५॥
जह देवीवामोहा, सेलगपुट्ठा चुओ गओ निहणं । विसयविमोहाउ तहा, भवण्णवे पडइ चरणचुओ ॥६६॥
जह देवीइ अखुद्धो, नियठाणं वरसुहं च संपत्तो । तह विसएहि अखुद्धो, सुद्धो जीवो लहइ मुक्खं ॥६७॥

एवं विमुञ्चन् विषयेषु गृद्धिं, स्थानं सुखानां जिनपालितोऽभूत् ।
तत्तेषु तीव्रप्रतिबन्धभङ्गीमङ्गीकृथा मा जनते ! कदाचित् ॥६८॥

॥ इति जिनपालितकथा ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेषु विषय इति पञ्चमो भेदः, साम्प्रतमारम्भ इति षष्ठं भेदं व्याख्यानयन्नाह—

**वज्जइ तिव्वारंभं, कुणइ अकामो अनिव्वहंतो य (उ) ।**
**थुणइ निरारंभजणं, दयालुओ सव्वजीवेसु ॥६५॥**

'वर्जयति' न करोति 'तीव्रारम्भं' भूतप्राणिपीडाकारणं व्यवसायं खरकर्मादि, 'करोति' चेदकामो—मन्दादरस्तं विनाऽनिर्वहन् स्वयंभूदत्तवत् । तुशब्दो विशेषणार्थः । किं विशिनष्टि ? सशूको गुरुलाघवालोचनपूर्वकम्, न निर्धंधसवृत्त्येति भावः । तथा 'स्तौति' प्रशंसति 'निरारम्भजनं' साधुलोकमेवम्—

"धन्ना हु महामुणिणो, मणसावि करंति जे न परपीडं। आरंभपावविरया, भुंजंति तिकोडिपरिसुद्धं ॥

तथा 'दयालुकः' कृपावान् 'सर्वजीवेषु' समस्तप्राणिषु।

"एगस्स कए नियजीवियस्स, बहुयाउ जीवकोडीओ। दुक्खे ठवंति जे केइ, ताण किं सासयं जीयं" १ ॥

इत्यादि भावयन् भावश्रावक इति।

तत्र स्वयम्भूदत्तकथा।

स्वयम्भूदत्तकथा पुनरेवम्—

जलहिजलनेहपुण्णे, सुमेरुदंडे सुजोइकंतिल्ले। जंबुद्दीवे दीवे इवत्थि कंचणपुरं नयरं ॥१॥
तत्थासि वासिओ जिणमएण सिट्ठी सयंभुदत्तु त्ति। पायं परिवज्जियपउरतिव्वआरंभसरंभो ॥२॥
उल्लसिरनिरंतरअंतरायवसओ न तस्स संपडइ। आजीवियावि निरवज्जअप्पसावज्जवित्तीए ॥३॥
तत्तो अनिव्वहंतो, आरंभइ जाव करिसणं एसो। कूरग्गहदोसेणं, ता जाया तत्थणावुट्ठी ॥४॥
तीए वसेण अविरलरलरोलाउलियइब्भसंदोहं। जणियजणदुक्खलक्खं, दुब्भिक्खं निवडियं घोरं ॥५॥
तत्थ य सयंभुदत्तो, तयणु अकामो अनिव्वहंतो य। वसहाण वाहणेणं, आरंभइ जीवणोवायं ॥६॥
तेणवि दुब्भिक्खवसा, जाव न निव्वहइ ताव केणावि। महया सत्थेण समं, चलिओ देसंतराभिमुहं ॥७॥
दूरपहमइक्कंते सत्थे आवासिए अरण्णंमि। उम्मुक्कपक्कहक्का, चिलायधाडी समावडिया ॥८॥
तो मल्लसिल्लवावल्लपमुहप्पहरणकरा समरधीरा। सत्थसुहडावि तीए, सद्धिं जुज्झंति संलग्गा ॥९॥

खंडियपयंडसुहडं, विहडियरणरहसनस्सिरनरोहं । उप्पिच्छसत्थनाहं, दारुणमाओहणं जायं ॥१०॥
पबलबलेण खणेणं, तेणं सुमहल्लभिल्लनिवहेण । कलिकालेण व धम्मो सत्थो गलहत्थिओ सयलो ॥११॥
घित्तूण सारमत्थं सुरूवरामाजणं मणुस्से य । बंदग्गाहेण तओ, चिलायसेणा गया पल्लिं ॥१२॥
सोवि हु सयंभुदत्तो, गयसव्वस्सो पलायमाणो य । धणवंतु त्ति विचिंतिय, गहिओ भिल्लेहिं दुट्ठेहिं ॥१३॥
निद्दयकसघायनिवायबंधणाईहिं ताडिओवि दढं । सो इच्छइ जाव न किंचि, देयदव्वं तओ तेहिं ॥१४॥
पइदिणपुण्णोवा(वया)इयचिलायकीरंततप्पणविहीए । चामुंडाए पुरओ, उवहारत्थं स उवणीओ ॥१५॥
रे रे वणिया ! जइ जीवियव्वमहिलससि ता बहुं दविणं । अज्जवि मन्नसु अम्हं, कालमुहं जासि किमकाले ? ॥१६॥
एवं ते जंपंता, सयंभुदत्तं न जाव खग्गेण । निहणंति ताव सहसा, समुट्ठिओ बहलहलबोलो ॥१७॥
भो ! चयह चयह एयं, वरागमणुसरह वेरिवारमिणं । थीबालवुड्ढविद्धंसकारिणं मा चिरावेह ॥ १८ ॥
एसा हम्मइ पल्ली, डज्झति इमाइं सयलगेहाइं । इय उल्लावं सोउं, सयंभुदत्तं विमुत्तूणं ॥१९॥
पवणजइणा जवेणं, सुमरियचिरवइरिसुहडसंघाया । चामुंडाभवणाओ, ते भिल्ला झत्ति नीहरिया ॥२०॥
जाओ अज्जेव अहं, अज्जेव य सयलसंपयं पत्तो । इय चिंतंतो तुरियं, सयंभुदत्तो अवक्कंतो ॥२१॥
भीसणचिलायभयतरलिओ य गिरिकुहरमज्झमज्झेण । बहलतरुवल्लिपडलाउलेण अपहेण वच्चंतो ॥२२॥
कसिणभुयगेण डक्को, उप्पन्ना वेयणा महाघोरा । परिचिंतियं च तेणं, इत्ताहे नणु विणस्सामि ॥२३॥

जइ कहवि चिलाएहिं, परिमुक्को ता कयंततुल्लेण । डसिओ भुयंगमेणं, अलंघणिज्जं अहह दिव्वं ॥२४॥
अहवा जम्मो मरणेणं, जुव्वणं सह जराइ सयराहं । संजोगो य विओगेण जायए, किमिह सोगेण ? ॥२५॥
इय चिंतंतो जा किंचि, सणियं सणियं स अग्गओ जाइ । ता तिलयतरुस्स अहे, चारणसमणं नियच्छेइ ॥२६॥
विसमभुयंगमविसविहुरियस्स सरणं तुमं मम मुणिंद ! । इय भणिरो मुणिपुरओ, विचेयणो झत्ति सो पडिओ ॥२७॥
मुणिविहियगरुलअज्झयणसरणवसजायआसणपकंपो । मुणिणो वरदाणपरो, गरुलवई तत्थ संपत्तो ॥२८॥
तो तिमिरं पिव दिवसयरकिरणहणियं तयं महाहिविसं । नट्ठं सुत्तविउद्धु व्व, उट्ठिओ सोवि पडुदेहो ॥२९॥
अह अज्झयणसमत्तीइ, गरुलनाहो पयंपए हिट्ठो । मुणिपवर ! वरेसु वरं, आह इमो धम्मलाहो ते ॥३०॥
तं दट्ठु मुणिमणीहं, नमिय सट्ठाणं गओ गरुलनाहो । तुट्ठो सयंभुदत्तोवि, तं मुणिं पइ इमं भणइ ॥३१॥
भयवं ! भमंतभीसणसावयकुलसंकुलाइ अडवीए । गुरुपुण्णेणं नूणं, तुह जोगो मह इहं जाओ ॥३२॥
जइ मुणिवरिंद ! न तुमं, इह हुंतो फुरियगरुयकारुण्णो । अइदुट्ठरुट्ठविसहरविसविवसो तो मरंतो हं ॥३३॥
ता मह पसिऊण मुणिंदचंद ! खयरिंदविंदनयचरण ! । आरंभदंभसंरंभवज्जियं देसु पव्वज्जं ॥३४॥
तो समयभणियविहिणा, गुरुणा पव्वाविओ इमो सुइरं । पालिय वयं सुहम्मं पत्तो गमिही सिवं कमसो ॥३५॥
कृपालोर्जीवानां ततिषु हृदयालोर्जिनमते स्वयम्भूदत्तस्य प्रकटमिति बुद्ध्वा सुचरितम् ।
निरारम्भे भावे कुरुत मनसो वृत्तिमतुलां, सदा तीव्रारम्भान् परिहरत हे श्रावकजनाः ! ॥३६॥

६ तीव्रारम्भवर्जनम्

तत्र स्वयम्भूदत्तकथा ।

॥२०४॥

॥ इति स्वयम्भूदत्तकथा ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेष्वारम्भ इति षष्ठो भेदः, सम्प्रति गेह इति सप्तमं भेदं व्याचिख्यासुराह—

**गिहवासं पासं पिव, मन्नंतो वसइ दुक्खिओ तंमि । चारित्तमोहणिज्जं, निज्जिणिउं उज्जमं कुणइ ॥६५॥**

'गृहवासं' गृहस्थतां 'पाशं' बन्धनविशेषमिव 'मन्यमानो' भावयन् 'वसति' अवतिष्ठते 'दुःखितो' दुःखवान् 'तस्मिन्' गृहवासे, यथाहि किल पाशपतितो विहङ्गमो नोत्पतितुं शक्नोति, कष्टं च तत्रावस्थानं कलयति, एवं संसारभीरुरपि मातरपितरादिप्रतिबन्धेन दीक्षां ग्रहीतुमपारयन् शिवकुमार इव भावश्रावको गृहवासे दुःखेनावतिष्ठते, अत एव 'चारित्रमोहनीयं' चरणावारकं कर्म 'निर्जेतुम्' अभिभवितुं 'उद्यमं' प्रयत्नं करोति तपःसंयमादाविति शेषः ।

शिवकुमारकथा त्वेवम्—

अत्थि विदेहे मेहे, इव सुवण्णे पुक्खलावईविजए । बहुवीयसोयलोया वरनयरी वीयसोय त्ति ॥१॥
सन्नयमहुयरपउमो, पउमरहो नाम नरवई तत्थ । वरसीलहत्थिसाला, वणमाला तस्स पाणपिया ॥२॥
ताणं अईव इट्ठो, विसिट्ठचिट्ठो सयावि धमिट्ठो । पुत्तो य सिवकुमारो, सिरीससुकुमारकरचरणो ॥३॥
तत्थ य कामसमिद्धो, सत्थाहो मासखमणपारणए । सागरचंदमुणिंदं, पडिलाहइ नाणतियकलियं ॥४॥
तस्स गिहे अइफारा, वसुहारा सुरगणेहि परिमुक्का । तं निसमिय वुत्तंतं, सिवकुमरो हरिसिओ हियए ॥५॥

गंतुं तं मुणिवसहं, वंदिय उवविसइ उचियठाणंमि । तो सागरचंदगुरू, एवं से कहइ धम्मकहं ॥६॥
इह सयलाउ पवित्ती, सुहेसिणो पाणिणो कुणंति सया । तं च सिवंमि तयं पुण, लब्भइ सुविसुद्धचरणेण ॥७॥
पाएण तयं सुद्धं, गिहवासठियस्स नेव संभवइ । तो तं चइत्तु जुत्तं, घित्तुं अइनिम्मलं चरणं ॥८॥
इय सोउं सिवो पुच्छइ, भयवं ! किं पुव्वभवभवो नेहो । जं पिच्छन्तस्स तुमं वड्ढइ अहियाहिओ हरिसो ॥९॥
तो ओहिणा मुणेउं, भणइ मुणिंदो पुरा सुगामंमि । भरहंमि रट्ठकूडस्स, नंदणा रेवईपभवा ॥१०॥
भवदत्ताभिहभवदेवनामया भाउणो दुवे आसि । काऊण वयं सुइरं, पत्ता सोहम्मकप्पंमि ॥११॥
भवदत्तजिओ अहयं, भवदेवजिओ तुमेस संजाओ । तो पुव्वभवसिणेहा, मह विसए एस तुह हरिसो ॥१२॥
तो गिहवासविरत्तो, सिवो पयंपइ मुणिंद ! तुह पासे । पुच्छिय अम्मापिउणो, पव्वज्जं संपवज्जिस्सं ॥१३॥
इय भणिय नमिय गुरुणो, सो गंतु गिहंमि पुच्छए पिउणो । निविडपडिबंधबंधुरहियया ते बिंति हे वच्छ ! ॥१४॥
जइ भत्तो अम्हाणं, जइ अम्हे पुच्छिउं गहेसि वयं । दिक्खानिसेहपवणा, तो णे रसणा सया होही ॥१५॥
इय अविसज्जंतेहिं, जणएहिं सिवो निसेहिओ सव्वं । सावज्जं पडिवज्जइ, भावजइत्तं तहिं चेव ॥१६॥
पिउउव्वेयनिमित्तं, कयमोणो भुंजएवि नेव इमो । हक्कारिय दढधम्मो, इब्भसुओ तो निवेणुत्तो ॥१७॥

तत्र शिवकु-
मारकथा ।

पुत्त ! सिवकुमारेणं पव्वज्जाभिलासिणा अम्हेहिं अविसज्जिएणं मोणं पडिवन्नं, संपयं भुत्तुंपि न इच्छइ, तं जहा जाणसि तहा णं भोयावेहि, एवं करंतेण अम्हं जीवियं दिन्नंति मणे ठवेऊण पत्तसुविदिन्नभूमिभागो सिवं असंकियं उवसंपज्जसुत्ति । तओ सो पणओ

'सामि! करिस्सं जं जुत्तं' ति उवगओ सिवकुमारस्स समीवे, निसीहियं काऊण इरियाइ पडिक्कंतो बारसावत्तं किइकम्मं काऊण पमज्जिऊणं अणुजाणह मित्ति आसीणो। सिवकुमारेण चिंतियं-एस इब्भपुत्तो अगारी साहुविणयं पउंजिऊण ठिओ, पुच्छामि ताव णं। तेण भणिओ-इब्भपुत्त! जो मया गुरुणो सागरदत्तस्स समीवे साहूहिं विणओ पजुज्जमाणो दिट्ठो सो तुमए पउत्तो, ता कहेहि, किह न विरुज्झइ? दढधम्मेण भणियं-कुमार! आरहए पवयणे विणओ समणाणं सावगाणं च सामन्नो, जिणवयणं सच्चं ति दिट्ठी सावि साहारणा, समणा पुण महव्वयधरा अणुव्वइणो सावगा, जीवाजीवाहिगमबंधमुक्खविहाणं आगमु त्ति, साहवो समत्तसुयसागरपारगा, तवे दुवालसविहे केइ विसेसंति त्ति।

ता कुमर! तुमं समभावभावओ वंदणारिहो सि धुवं। पुच्छामि किं तु एयं, किं चत्तं भोयणंपि तए? ॥१८॥

देहो य पुग्गलमओ, जं आहारेण विरहिओ न भवे। तयभावे न य चरणं, चरणाभावे कओ सिद्धी? ॥१९॥

किं च—

निरवज्जं आहारं, देहाहारं मुणीवि गिण्हंति। ता कम्मनिज्जरट्ठी, तुमंपि तं कुमर! गिण्हेसु ॥२०॥

आहारो निरवज्जो, संपज्जइ किह णु मज्झ गिहवासे। तो वरमभोयणं इब्भपुत्त! एवं सिवो आह ॥२१॥

इब्भो भणेइ तं अज्जपभिइ सुगुरू अहं च तुह सीसो। संपाइस्सं सव्वं, जं इच्छसि तमिह निरवज्जं ॥२२॥

पभणइ सिवो सिवत्थी, जइ एवं तो करित्तु छट्ठतवं। आयंबिलेण काहं, पारणयं असुहवारणयं ॥२३॥

तो सम्मं दढधम्मो, अइदढधम्मस्स सिवकुमारस्स। वेयावच्चं निरवज्जअसणमाईहिं पकरेइ ॥२४॥

पासं पिव गिहवासं बंधुजणं बंधणं व मन्नंतो । काउं बारस वरिसे, हरिसेण सिवो उदग्गतवं ॥२५॥
जाओ य विज्जुमालि त्ति तेयभरभासुरो सुरो बंभे । दससागरोवमाऊ, तो चविउं रायगिहनयरे ॥२६॥
इब्भस्स रिसहदत्तस्स, धारिणीपणइणीइ संजाओ । पत्तो जंबू जंबूदीवाहिवजणियहरिसभरो ॥ २७ ॥
नवनवइकणयकोडी चइय सुरूवा उ अट्ठ कन्नाओ । अम्मापिउणो पभवप्पमुहजणं बोहिउं बहुयं ॥ २८ ॥
सिरिवीरजिणिंदपयारविंदभसलस्स सयलसुयनिहिणो । पासे सुहम्मगुरुणो स महप्पा गिण्हए दिक्खं ॥ २९ ॥
होऊण जुगपहाणो, चिरकालं सासणं पभावेउं । उप्पाडियवरनाणो, जंबूसामी सिवं पत्तो ॥ ३० ॥

इति शिव इव गेहवासपाशे य इह दधीत विरागसङ्गमङ्गम् ।
स हि यदि चरणं लभेत नात्र ध्रुवमसमं तदवाप्नुयादमुत्र ॥ ३१ ॥

## ॥ इति शिवकुमारकथा ॥

इति निगदितः सप्तदशसु भेदेषु गेह इति सप्तमो भेदः, संप्रत्यष्टमं दर्शन इति भेदं प्रचिकटयिषुराह—

**अत्थिकभावकलिओ, पभावणावण्णवायमाईहिं । गुरुभत्तिजुओ धीमं धरेइ इय दंसणं विमलं ॥६७॥**



भावश्रावको 'दर्शनं' सम्यक्त्वं 'विमलम्' अकलङ्कं निरतिचारं धारयतीति पर्यन्तयोगः। कथंभूतः सन्नित्याह—देवगुरुधर्मतत्त्वेष्वास्तिक्यरूपो यो भावः—परिणामस्तेन कलितो युक्तः—

"मुत्तूण जिणं मुत्तूण जिणमयं जिणमयट्ठिए मुत्तुं । संसारकत्तवारं, चिंतिज्जंतं जगं सेसं" ॥

इति निश्चयसारप्रतिपत्तिः । प्रभावना—उत्सर्पणा तस्याः शक्तितः स्वयंकरणेन, शक्त्यभावे तत्कारिणामुपष्टम्भबहुमानतः, तथा वर्णवादः—प्रशंसनम्, आदिशब्दाच्चैत्यायतनतीर्थयात्रादिभिः करणभूतैः, गुरुर्धर्माचार्यस्तत्र विशेषतो भक्तियुतः—प्रतिपत्तिकरणप्रवणो, धीमान्—मतिमान् प्रशस्तबुद्धिबन्धुर इति इत्थं निष्कलङ्कं दर्शनं धारयति अमरदत्तवत् ।

तदृष्टान्तः पुनरेवम्

विद्दुमसिरिपरिकलियं, अलंकियं बहुसमिद्धपोएहिं । रयणायरमज्झं पिव रयणपुरं अत्थि वरनयरं ॥१॥

कयसुगयसमयपोसो, पुरसिट्ठी अत्थि तत्थ जयघोसो । जिणमुणिविहियपओसो सुजसा नामेण से भज्जा ॥२॥

अमराभिहाणकुलदेवयाइ दिन्नुत्ति तो अमरदत्तो । नामेण ताण पुत्तो पसंतचित्तो सहावेण ॥३॥

आजम्मं तव्वन्नियमयवासियहिययइब्भवरकन्नं । पियरेहिं पढमजुव्वणभरंमि परिणाविओ सो उ ॥४॥

अह महुसमयंमि कयावि, अमरदत्तो समित्तसंजुत्तो । पुप्फकरंडुज्जाणे, कीलाइ कए समणुपत्तो ॥५॥

सो कीलंतो तहियं, तरुस्स हिट्ठा निएइ मुणिमेगं । तस्स य पासे एगं, रुयमाणं पहियपुरिसं च ॥६॥

तो कोउगेण अमरो, आसन्नं तस्स होउ पुच्छेइ । किं भद्द ! रोयसि तुमं, सगग्गयं सोवि इय भणइ ॥७॥

कंपिल्लपुरे सिंधुरसिट्ठिस्स वसुंधराइ दइयाए । ओवाइयलक्खेहिं, एगो पुत्तो अहं जाओ ॥८॥

सेणु त्ति विहियनामस्स, अइगया जाव मज्झ छम्मासा । ता सयलविहवसहिया अम्मापियरो गया निहणं ॥९॥

तप्पभिइ पालिओ हं, जेहिं सयणेहिं गरुयकरुणेहिं । मम दुक्कयजमनिहया, पंचत्तं तेवि संपत्ता ॥१०॥
बहुलोयाणं संतावकारणं विसतरु व्व कमसो हं । देहेण दुहभरेण य, पवुड्ढिओ इच्चिरं कालं ॥११॥
संपइ पुण दड्ढोवरि, पिडगसमाणा अमाणदुक्खकरा । मह देहे जरपमुहा, रोगा बहवे समुप्पन्ना ॥१२॥
किं च पिसाओ भूओ व, कोवि मह अंतरंतरा अंगं । पीडेइ तह अदिट्ठो, जह तं वुत्तुंपि न चएमि ॥१३॥
तो जीवियव्वभग्गो, नग्गोहतरुंमि जाव अत्ताणं । अत्ताणं उब्बंधेमि, ताव पासोवि लहु तुट्टो ॥१४॥
इण्हिं वेरग्गगओ, पुरा मए किं कयं ति पुच्छेउं । मुणिणो इमस्स पासे, भो भद्द ! इह अहं पत्तो ॥१५॥
जम्माउवि निययदुहं, सुमरिय रोएमि इय भणेऊण । तेणं पहियनरेणं नियवुत्तंतं मुणी पुट्ठो ॥१६॥
अह विम्हयरसपुण्णो, किं तु कहिस्सइ इमो सुसाहु त्ति । सो अमरदत्तपमुहो, एगग्गमणो जणो जाओ ॥१७॥
अह वज्जरियं मुणिणा, भो पहिय ! तुमं इओ भवे तइए । मगहागुव्वरगामे देवलनामा सि कुलपुत्तो ॥१८॥
अन्नदिणे रायगिहे, तुह गच्छंतस्स कोवि मग्गंमि । मिलिओ पहिओ कमसो, तए धणदु त्ति सो नाओ ॥१९॥
तं वीससिउं रयणीइ, निहणिय गहिऊण तद्धणं सव्वं । जा जासि तुमं पुरओ, हरिणा छुहिएण ताव हओ ॥२०॥
पत्तो पढमे नरए, असरिसदुःखाइं सहिय बहुयाइं । तो उव्वट्टिय इहयं, सो एसो सेण ! तं जाओ ॥२१॥
जो सेण ! तए तइया, पहिओ पहओ भवंमि सो भमिउं । अण्णाणतवं काउं असुरनिकाए सुरो जाओ ॥२२॥
संभरियपुव्ववइरेण, तेण हणिया तुहं च पिउसयणा । निग्धणं धणं च नीयं, जणिया रोगा तुह सरीरे ॥२३॥

छिन्नो तहेव पासो, एसो सुचिरं दुही हवेउ त्ति । सो कुणइ अंतरा अंतरा य वियणं परमघोरं ॥२४॥
तं सोउं भवभीओ, पहिओऽणसणं गहित्तु मुणिपासे । सुमरंतो नवकारं, जाओ वेमाणिएसु सुरो ॥२५॥
इय सुणिय पहियचरियं, अमरो संवेगपरिगओ अहियं । नमिउं विण्णवइ मुणिं, भयवं ! मह कहसु जिणधम्मं ॥२६॥
भणइ मुणी तिहुयणदमणपत्तणरागारिहणणभावेण । अरिहंतु च्चिय देवो सुरनरकिन्नरविहियसेवो ॥२७॥
मुक्खपहपसाहगनाणचरणगुणधारिणो सुसाहुगुरू । धम्मो य सयलजयजंतुजायपरिपालणपहाणो ॥२८॥
दंसणमेयं समए वुच्चइ, तं पुण भणंति समयविऊ । इगदुतिचउपंचविहं दसहा वा पंचहा वा वि ॥२९॥
एगविहं तत्तरुई, निस्सग्गुवएसओ उ तं दुविहं । खइयं खओवसमियं, उवसमियं इय भवे तिविहं ॥३०॥
मिच्छत्तस्स खएणं, खाइयसम्मं तु खवगसेढीए । तुरियाइ चउसु गुणठाणएसु तीए य पट्ठवओ ॥३१॥
तत्थंतमुहुत्तेणं, खवइ अणंताणुबंधिणो जुगवं । जइ पुव्विं बद्धाऊ, तो नियमा ठाइ इत्थेव ॥३२॥
मिच्छत्तस्स व उदए, बंधइ णंताणुबंधिणो पुणवि । इय एसिं उव्वलणा उक्कोसं अट्ठवाराओ ॥३३॥
बद्धाउओ वि कोवि हु, कुणमाणो खंडसेणिमक्खंडं । तो मिच्छत्तं मीसं, सम्मं च खवेइ सुहभावो ॥३४॥
जइ मरइ अणंतखए, बद्धाऊ जाइ तो स देवेसु । खविए मिच्छे बीयाभावा न चिणइ पुण अणंते ॥३५॥
सत्तगखएवि एवं, अह न मरइ चउगई सो उ । नाणमइत्ता तत्थ य, सिज्झइ तइए व तुरियभवे ॥३६॥
तइए सुरनरएहिं, तुरियभवे जुअलिएहि अंतरिओ । सिज्झइ खाइगदिट्ठी, तं पुण जिणकालियनराणं ॥३७॥

इयरो तह ह्निउ च्चिय, अट्ठ नपुंसित्थिवेयछक्कं च । पुमवेयं च खवेइ, कोहाईए उ संजलणे ॥३८॥
दंसणनाणावरणंतरायमोहक्खयंमि सो नूणं । घणघाइकम्ममुक्को, उप्पाडइ केवलं नाणं ॥३९॥
इय खइयं संमत्तं, साइअपज्जवसियं समक्खायं । निसुणसु खओवसमियं सम्मत्तं सव्वकालभवं ॥४०॥
मिच्छत्तं जमुइण्णं, तं खीणं अणुदिण्णं च उवसंतं । मीसीभावपरिणयं, वेइज्जंतं खओवसमं ॥४१॥
जइ पुव्वमबद्धाऊ, विमाणवज्जं न बंधए आउं । चउसुवि गईसु पंचिंदियाण एयं भवे सययं ॥४२॥
अह उवसमियं सम्मं, तं पुण एवं लभिज्ज भव्वजिओ । अव्ववहारे भमिउं, अणंतपुग्गलपरट्टाइं ॥४३॥
भवियव्वयानिओगेण, कम्मपरिणइवसेण आगम्म । ववहारे तह एगेंदिएसु वसिउं चिरं कालं ॥४४॥
सुइरं तसेसु भमिउं, पायं चरिमंमि पुग्गलपरट्टे । सन्निपणिंदी पज्जत्तओ य वड्ढंतपरिणामो ॥४५॥
मोहे कोडाकोडीउ, सत्तरी वीस नामगोयाणं । तीसियराणं चउण्हं, तित्तीसयराइं आउस्स ॥४६॥
इय कम्मुक्कोसठिइं, पलियअसंखंसहीणमयराण । कोडाकोडिं इक्कं, मुत्तुं सयलं खविय सेसं ॥४७॥
गिरिसरिउवलनिहेणं, जीवो उ अहापवत्तकरणेणं । णाभोगवत्तिएणं आगच्छइ गंठिदेसंमि ॥४८॥
गंठि त्ति सुदुब्भेओ, कक्खडघणरूढगूढगंठि व्व । जीवस्स कम्मजणिओ, घणरागद्दोसपरिणामो ॥४९॥
इत्थय अणंतखुत्तो, आगंतु अभविआवि पावंति । दव्वसुयं न हु सम्मं, पुणरवि बंधंति जिट्ठठिइं ॥५०॥

भव्यः पुनः—



तत्रामरदत्त-
दृष्टान्तः ।

भिंदिय अपुव्वकरणेण, तं च अनियट्टिकरणओ तत्तो । अंतरकरणं काउं, करेइ मिच्छस्स ठिइजुयलं ॥५१॥
अंतमुहुत्तपमाणं हिट्ठिल्लठिइं, खवेवि सुहभावो । अंतरकरणद्धाए, पढमे समए वि वट्टंतो ॥५२॥
ऊसरदेसं दड्ढिल्लयं च विज्झाइ वणदवो पप्प । इय मिच्छस्स अणुदए उवसमसम्मं लहइ जीवो ॥५३॥
अंतमुहुत्तंमि गए, जहन्नओ समयसेसए काले । उक्कोसे छावलिए, उदयंति अणंतबंधीओ ॥५४॥
तो परिवडंतसम्मो, मिच्छमपत्तो स होइ सासाणो । को वा उवसमसम्मी, करेइ मिच्छस्स पुंजतिगं ॥५५॥
परिणामविसेसेणं, पओगओ मयणकुद्दवाणं व । सुद्धो अद्धविसुद्धो अविसुद्धो तत्थ पढमंमि ॥५६॥
वट्टंतो खउवसमी, बीए मीसो उ तइयए मिच्छो । मिच्छमवड्ढपुग्गलपरट्टं छावट्ठियरसम्मं ॥५७॥
अंतमुहुत्तं मीसं, उक्कोसं जहन्नओ य सव्वाणि । पणवारा उवसमियं, असंखवारा खओवसमं ॥५८॥
सम्मत्तंमि उ लद्धे, पलियपुहुत्तेण सावओ हुज्जा । चरणोवसमखयाणं, सागरसंखंतरा हुंति ॥५९॥
इय अपरिवडियसम्मे, सुरमणुए इगभवेवि सव्वाणि । इगसेढिवज्जियाइं, सिवं च सत्तट्ठभवमज्झे । ६०॥
अहवा उवसमसेढीइ, होइ उवसामगं तु संमत्तं । तीए पुण पट्ठवओ, अपमत्तजई अविरओ वा ॥६१॥
अणदंसनपुंसित्थी वेयच्छक्कं च पुरिसवेयं च । दो दो एगंतरिए, सरिसे सरिसं उवसमेइ ॥६२॥
खाओवसमोवसमियसम्माणं भण्णए अह विसेसो । उवसमगो नो वेयइ, पएसओ वावि मिच्छत्तं ॥६३॥
उवसंतं जं कम्मं, न तओ कड्ढइ न देइ उदएवि । नय गम्मइ परप्पगइं, न चेव उक्कड्ढए तं तु ॥६४॥

कलुसं व खओवसमी, पसंतसलिलं व उवसमियसम्मी । खाइयसम्मदिट्ठी विण्णेओ विमलसलिलं व ॥६५॥
खइयाइ सासणजुयं, चउहा वेयगजुयं तु पंचविहं । तं मिच्छचरिमपुग्गलवेयणओ दसविहं एवं ॥६६॥
निस्सग्गुवएसरुई, आणरुई सुत्तबीयरुइमेव । अभिगमवित्थाररुई किरियासंखेवधम्मरुई ॥६७॥
सक्किरियं कारगमिव, तत्तरुई रोयगं तु सम्मत्तं । मिच्छादिट्ठी तत्ताइं दीवए दीवगं तं तु ॥६८॥
निच्छयओ सम्मत्तं विसुद्धचरणस्स अविरयस्सियरं । अहवावि दव्वभावाइभेयओ बहुविहं सम्मं ॥६९॥
जीवाइनवपयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं । भावेण सद्दहंते अयाणमाणेवि सम्मत्तं ॥७०॥
दुविहं लोइयमिच्छं, देवगयं गुरुगयं मुणेयव्वं । लोउत्तरंपि दुविहं, देवगयं गुरुगयं चेव ॥७१॥
चउभेयं मिच्छत्तं, तिविहंतिविहेण जो विवज्जेइ । अकलंकं सम्मत्तं, होइ फुडं तस्स जीवस्स ॥७२॥
इय सयलगुणविसुद्धं, सम्मत्तं सयलदोसपरिचत्तं । धन्ना वसणगया वि हु धरंति निवविक्कमुव्व दढं ॥७३॥
अंतोमुहुत्तमित्तंपि, फासियं जेहिं दंसणं एयं । तेसिं अवड्ढपुग्गलपरियट्टो चेव संसारो ॥७४॥
जस्स मणगयणमग्गे, फुरेइ दंसणदिणेसरो दित्तो । न कुमयजोइसचक्कं तंमि पयासंपि पाउणइ ॥७५॥
सुद्धे समत्ते अविरओवि अज्जेइ तित्थगरनामं । जह आगमे सिभद्दाहरिकुलपहुसेणियाईया ॥७६॥
मिच्छत्तपवलहुयवहजलसरिसमिमं धरंति जे सम्मं । अल्लियइ पाणिकमले, तेसि धुवं मुक्खसुक्खसिरी ॥७७॥
इय सोउ अमरदत्तो, दंसणमूलं गहेइ गिहिधम्मं । तो गुरुणा गुरुकरुणापरेण एवं समणुसिट्ठो ॥७८॥



तत्रामरदत्त-
दृष्टान्तः ।

भो भद्द ! तुडिवसेणं, कहवि इमं लहिय दंसणं विमलं । सगसट्ठिभेयकलियं सयावि पालिज्ज जत्तेण ॥७९॥

**तथाहि—**

चउसद्दहण तिलिंगं, दसविणय तिसुद्धि पंचगयदोसं । अट्ठपभावण भूसणलक्खणपंचविहसंजुत्तं ॥८०॥

छव्विहजयणाऽऽगारं, छब्भावणभावियं च छट्ठाणं । इय सत्तसट्ठिलक्खणभेयविसुद्धं तु सम्मत्तं ॥८१॥

**एतद्विवरणगाथा—**

जाणंतस्सवि आगमअब्भासो गीयजइजणनिसेवा । वावन्नकुदंसगवज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा ॥८२॥

लिंगतियं सुस्सूसा, सुयस्स छुहियस्स जह घयपुरिच्छा । तहणुट्ठाणे जिणगुरुवेयावच्चुज्जमो सम्मं ॥८३॥

जिणसिद्धपडिमसुयधम्मसंघगुरुउज्झसाहुसम्मत्ते । विणओऽवन्नासायणनासो थुइभत्तिबहुमाणो ॥८४॥

मणवयतणुसुद्धीओ, दोसा संका य कंख वितिगिच्छा । परतित्थियप्पसंसा, तेहिं समं संथवो तह य ॥८५॥

पावयणी धम्मकही वाई नेमित्तिओ तवस्सी य । विज्जा सिद्धो य कई, अट्ठेव पभावगा भणिया ॥८६॥

**भूषणानि—**

पवयणथिज्ज पभावण भत्ती कोसल्ल तित्थसेवा य ।

**लक्षणानि—**

उवसम संवेगो विय निव्वेयणुकंपअत्थिक्कं ॥८७॥

जयणा वंदणनमणं, दाणाणुपयाणभाससंभासं । परतित्थिदेवयाणं न करे तग्गहियपडिमाणं ॥८८॥
राय-गण-बल-सुरकम्म-गुरुनिग्गह-वित्ति छच्च आगारा । भावण मूलं दारं पइट्ठ आहार भाण निही ॥८९॥
अत्थि जिओ तह निच्चो, कत्ता भुत्ता य पुन्नपावाणं । अत्थि सिवं तदुवाओ, नाणाई इय छ ठाणाइं ॥९०॥

अन्यत्र लिङ्गचतुष्टयमुच्यते—

सव्वत्थ उचियकरणं, गुणाणुराओ रई य जिणवयणे । अगुणेसु य मज्झत्थं, सम्मदिट्ठिस्स लिंगाइं ॥९१॥

जओ—

जणगो जणणी अत्थो, बंधू सयणो सुभिच्चसंघाओ । काउं तं न समत्था, जं सम्मत्तं दढं चिन्नं ॥९२॥
ईसि सवियाससलोयणआलोयणहिट्ठनमिरनिवचक्कं । चक्किकत्तंपि हु सुलहं, दुलहं सम्मत्तरयणं तु ॥९३॥
चिंताणंतरसमकालसम्मीलंताणुकूलसयलत्थं । अमरत्तं पि हु लब्भइ, न दंसणं कहवि जीवेहिं ॥९४॥



तिहुयणसरपरिसरकुमुयगब्भविब्भमफुरंतजसपसरं । वासवपयंपि पावंति, पाणिणो न उण सम्मत्तं ॥९५॥
धन्ना लहंति एयं, धन्ना पालंति निरइयारमिणं । उवसग्गसंकडेवि हु, धन्ना पारं नयंति इमं ॥९६॥
ता निज्जियकप्पद्दुमचिंतारयणं सुदंसणं लहिउं । तुमए सयावि इहयं, निच्चलचित्तेण होयव्वं ॥९७॥
इच्छामि समणुसिट्ठिं, ति भणिय नमिउं च सुगुरुचलणदुगं । तत्तो समित्तजुत्तो गेहं पत्तो अमरदत्तो ॥९८॥
सो पिउणा संलत्तो, किं वच्छ ! चिराइयं तए तत्थ । तो मित्तेहिं वुत्तो, वुत्तंतो तस्स सयलोवि ॥९९॥

अह कुविओ जयघोसो, भणेइ दुप्पुत्त ! किं अरे तुमए । मुत्तु कुलागयसम्मं धम्मं धम्मंतरं गहियं ॥१००॥
ता मुच इमं धम्मं, सियभिक्खूणं करेसु भिक्खूणं । अन्नह तए समं मम, संभासोवि हु न जुत्तुत्ति ॥१०१॥
भणइ य अमरो हे ताय ! एस सुपरिक्खिऊण घित्तव्वो । धम्मो वरकणगं पिव, न कुलागयमित्तओ चेव ॥१०२॥
पाणिवहालियचोरिक्कविरइपरजुवइवज्जणपहाणो । पुव्वावरअविरुद्धो, धम्मो एसो कहमजुत्तो ? ॥१०३॥
जह गिण्हंतो उत्तमपणियं वणिओ भवे न वयणिज्जो । पइवन्नुत्तमधम्मो, न हीलणिज्जो तहा हंपि ॥१०४॥
तं सुणिय अभिनिविट्ठो, सिट्ठी जंपेइ रे दुराचार ! । जं रोयइ कुणसु तयं, न इओ तं भासिउं उचिओ ॥१०५॥
एयं निसामिऊणं, ससुरेण भणाविओ इमो एवं । जइ मह सुयाइ कज्जं, ता जिणधम्मं चयसु सिग्घं ॥१०६॥
मुत्तुं जिणधम्ममिमं, सेसं सव्वमवि अणंतसो पत्तं । एवं चिंतिय अमरो, विसज्जए पिउगिहे भज्जं ॥१०७॥
अन्नदिणे जणणीए, भणिओ एसो जहा तुमं वच्छ ! । जो रोयइ तुह धम्मो, तं कुणसु वयं न विग्घकरा ॥१०८॥
किंतु अमराभिहाणं कुलदेविं निच्चमेव अच्चेसु । एयप्पसायभवो तुह जम्मो तो इमो आह ॥१०९॥
अंब ! न संपइ कप्पइ, जिणमुणिवइरित्तदेवलिंगिसु । देवगुरु त्ति मई मे, भत्ती तह पणामप्पमुहा ॥११०॥
नो मह तेसु पओसो, मणयंपि न भत्तिमित्तमवि किंतु । [ ग्रंथाग्रं ६५०० ] देवगुरुगुणविओगात्तेसु उदासत्तणं अंब ! ॥१११॥
गयरागदोसमोहत्तणेण देवस्स होइ देवत्तं । तच्चरियागमपडिमाण दंसणादेव तं नेयं ॥११२॥
सिवसाहगगुणगणगउरवेण सत्थत्थसम्मगिरणेण । इह गुरुणोवि गुरुत्तं, होइ जहत्थं पसत्थं च ॥११३॥

ता अंब ! पणमिय जिणं, नमिज़ए तिहुयणेवि कह अन्नो ? । न हु रोयइ लवणजलं, पीए खीरोयहिजलंमि ॥११४॥
इय तेणं पडिभणिया, जणणी मोणं अकासि सविसाया । अह कुविया कुलदेवी, से दंसइ भीसणसयाइं ॥११५॥
न य तस्स किंपि पहवइ, सत्तिक्कघणस्स धम्मनिरयस्स । वहइ पओसं अहियं, तो अमरा अमरदत्तंमि ॥११६॥
पच्चक्खीहोउ कयावि, तीइ सो निट्ठुरं इमं भणिओ । रे कुडधम्मगव्विय ! न पणामं मज्झवि करेसि ? ॥११७॥
ता इण्हि हणेमि तुमं, दढधम्मो तं भणेइ अमरोवि । जइ आउयंपि बलवं, तो मारिज्जइ न कोवि तए ॥११८॥
अह कहवि तंपि तुट्टं, मरियव्वे इहरहावि ता जाए । को सद्दंसणममलं मइलइ, भवकोडिसयदुलहं ॥११९॥
तो अमरा सामरिसा, तस्स सरीरे विउव्वए पावा । सीसच्छिसवणउरदंतनिस्सिया वेयणा तिव्वा ॥१२०॥
जा इक्कावि हु जीयं, हरेइ नियमेण इयरपुरिसस्स । दढसत्तो तहवि इमो, एयं चित्ते विचिंतेइ ॥१२१॥
रे जीव ! तए पत्तो, सिवपुरपहपत्थिएण सत्थाहो । देवो सिरिअरिहंतो, अपत्तपुव्वो भवअरण्णे ॥१२२॥
ता इमिणच्चिय हिययट्ठिएण मरणंपि तुज्झ भद्दकरं । एयंमि पुण विमुक्के, होसि जियंतो वि तमणाहो ॥१२३॥
कित्तियमित्तं च इमं, दुक्खं तुह दंसणे अपत्तंमि । पावियअणंतपुग्गलपरियट्टदुहस्स नरएसु ॥१२४॥



किं च—

पडिकूला हवउ सुरा, मायापियरो परम्मुहा हुंतु । पीडंतु सरीरं वाहिणो वि खिंसंतु सयणा य ॥१२५॥
निवडंतु आवयाओ, गच्छउ लच्छीवि केवलं इक्का । मा जाउ जिणे भत्ती, तदुत्ततत्तेसु तित्ती य ॥१२६॥

इय निच्छयप्पहाणं, तच्चित्तं नाउ ओहिणा अमरा । तस्सत्तरंजियमणा, भणेइ संहरियउवसग्गा ॥१२७॥
धन्नो सि तं महायस ! तं चिय सलहिज्जसे तिहुयणंमि । सिरिवीयरायचरणेसु, जस्स तुह इय दढा भत्ती ॥१२८॥
अज्जप्पभिई मज्झवि, सु च्चिय देवो गुरूवि सो चेव । तत्तंपि तं पमाणं, जं पडिवन्नं तए धीर ! ॥१२९॥
इय भणिरीए तीए, मुक्का अमरस्स उवरि तुट्ठाए । परिमलमिलियअलिउला, दसद्धवण्णा कुसुमवुट्ठी ॥१३०॥
तं दट्ठु महच्छरियं तप्पियरो पुरजणो ससुरवग्गो । अमराए वयणेणं जाओ जिणदंसणे भत्तो ॥१३१॥
ससुरेणं पहिट्ठेणं, तो धूया पेसिया पइगिहंमि । तप्पभिइ अमरदत्तो, सकुडुंबो कुणइ जिणधम्मं ॥१३२॥
सुचिरं निम्मलदंसणसारं पालिय गिहत्थधम्मं सो । जाओ पाणयअमरो महाविदेहंमि सिज्झिहिइ ॥१३३॥

अमरदत्तचरित्रमिदं मुदा, गतमलं परिभाव्य विवेकिनः ! ।
भजत दर्शनशुद्धिमनुत्तरां, भवत येन महोदयशालिनः ॥१३४॥

॥ इत्यमरदत्तदृष्टान्तः ॥

एवं प्ररूपितः सप्तदससु भेदेषु दर्शन इत्यष्टमो भेदः, अधुना गड्डरिकाप्रवाह इति नवमं भेदमाह—

**गड्डरिगपवाहेणं, गयाणुगइयं जणं वियाणंतो ।**
**परिहरइ लोगसण्णं सुसमिक्खियकारओ धीरो ॥६८॥**

गड्डरिका—एडकास्तासां प्रवाहः—सञ्चरणम्, एकस्या अनुमार्गेण सर्वासां गमनं गड्डरिकाप्रवाहः, द्वारगाथायामादिशब्दः कीटिकामत्कोटकादिप्रवाहसंसूचनार्थः, तेन कृत्वा 'गतानुगतिकम्' अविचारितकारिणं 'जनं' लोकं 'विजानन्' अवबुध्यमानः 'परिहरति लोकसंज्ञाम्' अविचारितरमणीयां लोकहेरिं कुरुचन्द्रनरेन्द्रवत्, कथम्भूतः सन्नित्याह—'सुपरीक्षितकारकः' सुपर्यालोचितविधायी 'धीरो' मतिमानिति ।

कुरुचन्द्रनरेन्द्रकथा त्वेवम्—

गयवज्जियंपि सगयं, केणवि अहयंपि सव्वया सुहयं । पुरमत्थि कंचणपुरं, कुरुचंदो तत्थ नरचंदो ॥१॥
तस्सासि जिणोइयसत्ततत्तवरतुरगगमणदुल्ललिओ । मिहिरु व्व तिमिरभरपसररोहगो रोहगो मंती ॥२॥
गड्डरिगपवाहं मुत्तुमुत्तमं सो नरुत्तमो धम्मं । सम्मं जिन्नासमणो, कयावि मंतिं भणइ एवं ॥३॥
मह कहसु सचिवपुंगव ! को धम्मो उत्तमु त्ति सो आह । हेलाहीलियसुरनरगणाण करणाण जत्थ जओ ॥४॥
कह नज्जइ त्ति रण्णा, वुत्ते मंती भणेइ वयणेणं । उग्गारेणं नज्जइ, भुत्तमदिट्ठंपि जह इत्थ ॥५॥
इय सोउं भणइ निवो, जइ एवं तो तुमं महामंति ! । सव्वे दंसणिणो वाहरित्तु धम्मं वियारेसु ॥६॥
होउ त्ति एवं भणिऊण, मंती सकुंडलं वा वयणं नवत्ति । एयं समस्साइ पयं, लिहेउ ओलंबिऊणं च भणेइ एवं ॥७॥
जो सह इमिणा पाएण, संगयत्थेण पूरिय समस्सं । रंजेइ पुहइनाहं, तस्सेव इमो हवइ भत्तो ॥८॥
इय सोऊणं अहमहमिगाइ सव्वेवि तत्थ दंसणिणो । तं गहिऊणं पायं, रइउं वित्तं ससत्तीए ॥९॥

तत्र कुरु-
चन्द्रनरेन्द्र
कथा ।

पत्ता निवअत्थाणे, आसीवायं भणेवि उवविट्ठा । तो रण्णो णुण्णाए पढेइ एवं सुगयसीसो ॥१०॥

मालाविहारंमि मइज्ज दिट्ठा, उवासिया कंचणभूसियंगी । वक्खित्तचित्तेण मए न नायं, सकुंडलं वा वयणं नवत्ति ॥११॥

अन्यः प्रोवाच—

भिक्खाभमंतेण मइज्ज दिट्ठं, पमयामुहं कमलविसालनित्तं । वक्खित्तचित्तेण मए न नायं, सकुंडलं वा वयणं नवत्ति ॥१२॥

अपरः प्रणिजगाद—

फलोदएण म्हि गिहं पविट्ठो, तत्थासणत्था पमया मि दिट्ठा । वक्खित्तचित्तेण मए न नायं, सकुंडलं वा वयणं न वत्ति ॥१३॥

तो सारेयरभावं, निवेण कव्वाण पुच्छिया विबुहा । जंपंति न हु विसेसं, एसि वयं देव ! पिच्छामो ॥१४॥

जं इयमेहिं वक्खित्तचित्तया अक्खिया फुडं सा उ । अजिइंदियत्तमूलं, सहधम्मो तेण चिंतमिणं ॥१५॥

तं सोऊणं मयमवि, वीमंसित्ता पयंपइ नरिंदो । कह मंतिसत्तम ! अहं, उत्तमधम्मं वियाणिस्सं ? ॥१६॥

पभणइ मंती नरवर ! जिणदंसणिणोवि अत्थि इह मुणिणो । विहि(दि)यपयत्था पालियमहव्वया पवरगोवसमा ॥१७॥

समतिणमणिणो सममित्तसत्तुणो तुल्लरंकनरवइणो । महुयरवित्तीकयपाणवित्तीणो धम्मफलतरुणो ॥१८॥

सज्झायज्झाणरया, जिंइदिया जियपरीसहकसाया । ते आहूयावि इहं, इंति न इंति व न याणामि ॥१९॥

भणियं निवेण वरमन्ति ! झत्ति वाहरसु ते महामुणिणो । तत्तो अखुद्दबुद्धी, खुड्डमुणी तेण आहूओ ॥२०॥

नमिउं भणिउं रण्णा, खुड्डय ! किं मुणसि काउं तं कव्वं ? । गुरुपायपसाएणं, मुणेमि इय भणइ साहूवि ॥२१॥

तो कुरुचन्दनरिंदो, तयं समस्सापयं पयंपेइ । सिंगाररसविरहिया मुणिणावि हु पूरिया एवं ॥२२॥
खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स, अज्झप्पजोगे गयमाणसस्स । किं मज्झ एएण वितिंचिएणं सकुंडलं वा वयणं नवत्ति ॥२३॥
भणइ निवो खुड्ड ! तए, सिंगारेणं न पूरिया किमियं ? । स भणइ जिइंदियाणं, जईण वुत्तुं न सो जुत्तो ॥२४॥
सिरिअंगारो सिंगारउत्ति जंपंति तंपि जइ जइणो । ता नूणं चन्दबिंबाओ, अग्गिवुट्ठी समुप्पन्ना ॥२५॥

किंच—

"उल्लो सुक्को य दो छूढा गोलया मट्टियामया । दोवि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सो वलग्गई ॥२६॥
एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा । विरत्ता उ न लग्गंति, जहा से सुक्कगोलए ॥२७॥
इय दुद्दमइंदियदुट्ठअस्सअस्संदमस्स वरमुणिणो। वयणं सुणिउं राया, चमक्किओ चिंतए चित्ते ॥२८॥
अमयं रसेसु गोसीसचन्दणं चन्दणेसु जह पवरं । सव्वेसुवि धम्मेसु, नूणं धम्मो उ जिणपणीओ ॥२९॥
एवं चिंतिय सम्मं, खुड्डेण समं गमित्तु गुरुपासे । सोऊणं धम्मकहं, गिहत्थधम्मं पवज्जेइ ॥३०॥
चिरकालं परिपालिय, धम्मं सचिवेण रोहगेण समं। कुरुचन्दमहाराओ, जाओ सुक्खाण आभागी ॥३१॥

तत्र कुरुचन्द्रनरेन्द्रकथा ।

एवं निशम्य चरितं सुविवेकिकोकिजीमूतगर्जितनिभं कुरुचन्द्रराज्ञः ।
भव्या जनाः ! सपदि गड्डरिकाप्रवाहं, मुक्त्वा श्रयन्तु विशदं जिनराजधर्मम् ॥३१॥

॥ इति कुरुचन्द्रनरेन्द्रकथा ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेषु गड्डुरिकाप्रवाह इति नवमो भेदः, इदानीमागमपुरस्सरं सर्वाः क्रियाः करोतीति दशमं भेदमभिधित्सुराह–

**नत्थि परलोयमग्गे, पमाणमन्नं जिणागमं मुत्तुं। आगमपुरस्सरं चिय, करेइ तो सव्वकिरियाओ ॥६९॥**

'नास्ति' न विद्यते परः–प्रधानो लोको–मोक्षस्तस्य मार्गे ज्ञानादित्रयरूपे 'प्रमाणं' प्रत्ययहेतुरन्यत् जिना–रागादिजेतारस्तैः प्रणीतः सिद्धान्तो–जिनागमस्तं मुक्त्वा, तस्यैवान्यथात्वासम्भवाद् ।

उक्तं च–

"रागाद्वा द्वेषाद्वा मोहाद्वा वाक्यमुच्यते ह्यनृतम् । यस्य तु नैते दोषास्तस्यानृतकारणं किं स्यात्" १ ॥

पूर्वापराविरुद्धत्वाच्च, तथाहि–

"धर्मस्य मूलं करुणा यथोदिता, तद्वत्क्रियाप्यङ्गिहिता जिनोत्तमैः ।
सामायिकं साधितमादितो यथा, क्षान्त्यादयोप्येवममुष्य पालकाः" ॥

'आगमपुरस्सरम्' आगमपर्यालोचनपूर्वकमेव, चियशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, 'करोति' अनुतिष्ठति, ततः–तस्मात्कारणात् 'सर्वाः क्रियाः' देववन्दनकप्रत्याख्यानप्रतिक्रमणादिरूपाः, वरुणमहाश्रावकवत् ।

तत्र देववन्दनविधिरेवम्–

१० आगमपुरस्सरं सर्वासां क्रियाणां करणम्।

तत्र देववन्दनविधिः

दहतियं[1] अहिगमपणगं[2] दुदिसि[3] तिहुग्गहं[4] तिहा उ वंदणया[5]। पणिवाय[6] नमुक्कारा[7] वण्णा, सोलसयसीयाला ॥१॥
इगसीइसयं तु पया[9], सगनउई संपयाउ[10] पण दण्डा[11]। बारस अहिगारा[12], ति वन्दणिज्जे[13] सरणिज्जे[14] चउह जिणा[15] ॥२॥
चउरो थुई[16] निमित्तट्ठ[17], बार हेऊ[18] य सोल आगारा[19]। गुणवीसदोसं[20] उस्सग्गमाणं[21] थुत्तं च[22] सगवेला[23] ॥३॥
दस आसायणचाओ[24], एवं चिइवन्दणाइ ठाणाइं। चउवीसदुवारेहिं दुसहस्सा हुन्ति चउसयरा ॥४॥ द्वारगाथा।
तिन्नि निसीही तिन्नि य, पयाहिणा तिन्नि चेव य पणामा। तिविहा पूया य तहा अवत्थतियभावणं चेव ॥५॥
तिदिसिनिरिक्खणविरई, पयभूमिपमज्जणं च तिक्खुत्तो। वण्णाइतियं मुद्दातियं च तिविहं च पणिहाणं ॥६॥
घरजिणहरजिणपूयावावारच्चायओ निसीहितिगं। अग्गद्दारे मज्झे, तइया चीवन्दणासमए ॥७॥
अंगग्गभावभेया पुप्फाहारथुईहिं पूयतिगं। ण्हवणच्चणगारेहिं, नज्जइ छउमत्थवत्थ जिणे ॥८॥
पडिहारअट्ठगेण उ, भाविज्जइ केवलित्तणं तस्स। पलियंकुस्सग्गेहि य सिद्धत्तं इय अवत्थतियं ॥९॥
वण्णतियं वण्णत्थालंबणमालम्बणं तु पडिमाई। जोगजिणमुत्तसुत्ती मुद्दाभेएण मुद्दतियं ॥१०॥
अन्नुन्नंतरअंगुलिकोसागारेहिं दोहिं हत्थेहिं। पिट्टोवरि कुप्परसंठिएहिं तह जोगमुद्द त्ति ॥११॥
चत्तारि अंगुलाइं, पुरओ ऊणाइं जत्थ पच्छिमओ। पायाणं उस्सग्गो(ग्गे), एसा पुण होइ जिणमुद्दा ॥१२॥
मुत्तासुत्तीमुद्दा जत्थ समा दोवि गब्भिया हत्था। ते पुण निडालदेसे, लग्गा अन्ने अलग्ग त्ति ॥१३॥
पचंगो पणिवाओ, थयपाढो होइ जोगमुद्दाए। वन्दण जिणमुद्दाए, पणिहाणं मुत्तसुत्तीए ॥१४॥

पणिहाणतिगं चेइयमुणिवन्दणपत्थणासरूवं वा । मणवयकाएगत्तं सेसतियत्थो उ पयडु त्ति ॥१५॥
सच्चित्तदव्वउज्झणमच्चित्तअणुज्झणं मणेगत्तं । इगसाडिउत्तरासंगं, अंजली सिरसि जिणदिट्ठे ॥१६॥
इय पंचविहाभिगमो, अहवा मुच्चंति रायचिंधाइं । खग्गं छत्तो वाणह मउडं चमरे य पंचमए ॥१७॥
वन्दंति जिणे, दाहिणदिसट्ठिया पुरिस वामदिसि नारी । नव कर जहन्न सट्ठी कर जिट्ठ मज्झुग्गहो सेसो ॥१८॥
नवकारेण जहन्ना, चिइवन्दण मज्झ दण्डथुइजुयला । पणदण्डथुइचउक्कगथयपणिहाणेहिं उक्कोसा ॥१९॥
पणिवाओ पंचंगो दो जाणू करदुगुत्तमंगं च । सुमहत्थनमुक्कारा, इगदुगतिग जाव अट्ठसयं ॥२०॥
वन्नट्ठसट्ठि नवपय, नवकारे अट्ठ संपया तत्थ । सग संपय पयतुल्ला, सतरक्खर अट्ठमी दुपया ॥२१॥
पणिवायअक्खराइं, अट्ठावीसं तहा य इरियाए । नवनउयमक्खरसयं, दुतीसपय संपया अट्ठ ॥२२॥
दुग दुग चउ सग इग पण, दस इक्कग इरियसंपयाइ पया । इच्छा इरि गम ओसा, जेमे एगिंदि अभि तस्स ॥२३॥
दो सगनउया वण्णा, नव संपय पय तित्तीस सक्कथए । चेइयथयट्ठसंपय, तिचत्त पय वन्न दुसयगुणतीसा ॥२४॥
दु ति चउ पण पण पण दु चउ, ति पय सक्कत्थयसंपयाइ पया । नमु आइग पुरिसो लोगु अभय धम्मप्प जिण सव्वं ॥२५॥
दु छ सग नव तिय छच्चउ, छप्पय चिइसंपयापया पढमा । अरिहं वन्दण सद्धा अन्न सुहुम एव जा तात्र ॥२६॥
नामथयाइसु संपय, पयसम अडवीस सोल वीस कमा । अदुरुत्तवण्ण दोसट्ठ दुसय सोलट्ठ नउयसयं ॥२७॥
पणिहाणि दुपन्नसयं, कमेण सगतिचउवीसतित्तीसा । गुणतीस अट्ठवीसा चउतीसिगुणतीस बार गुरुवण्णा ॥२८॥

पण दंडा सक्कत्थय, चेइयनामसुयसिद्धनामेसु । दो इग दो दो पंच य अहिगारा बारस कमेण ॥२९॥
नमु जे[अ]इय अरिहं, लोग सव्व पुक्ख तम सिद्ध जो देवा । उज्जिं चत्ता वेयावच्चग अहिगारपढमपया ॥३०॥
चत्तारि वंदणिज्जा, जिणसुयसिद्धमुणि सुसरणिज्ज सुरा । चउह जिणा नामठवणदव्वभावजिणभेएहिं ॥३१॥
नामजिणा जिणनामा, ठवणजिणा पुण जिणिंदपडिमाओ । दव्वजिणा जिणजीवा, भावजिणा समवसरणत्था ॥३२॥
पढमहिगारे वंदे, भावजिणे बीययंमि दव्वजिणे । इगचेइयठवणजिणे, तइए तुरियंमि नामजिणे ॥३३॥
तिहुयणठवणजिणे पुण, पंचमए विहरमाण जिण छट्ठे । सत्तमए सुयनाणं अट्ठमए सव्वसिद्धथुई ॥३४॥
तित्थाहिववीरथुई नवमे दसमे य उज्जयंतथुई । इगदसमे अट्ठावय, सुदिट्ठिसुरसुमरणा चरिमे ॥३५॥
अहिगयजिणपढमथुई, बीया सव्वाण तइय नाणस्स । वेयावच्चगराण उ उवओगत्थं चउत्थथुई ॥३६॥
पावखवणत्थ इरियाइ, वंदणवत्तियाइ छ निमित्ता । पवयणसुरसरणत्थं, उस्सग्गो इय निमित्तट्ठ ॥३७॥
चउ तस्सउत्तरीकरणपमुह सद्धाइया उ पण हेऊ । वेयावच्चगरत्ताइ, तिन्नि इय हेउबारसगं ॥३८॥
अन्नत्थु(त्थ)आइ बारस, आगारा एवमाइआ चउरो । अगणी पणिंदिछिंदण बोहीखोभा इ डक्को य ॥३९॥
घोडगलया इ खंभे, कुड्डे माले य सबरिवहुनियले । लंबुत्तरथणउद्धी, संजइखलिणे य वायस कविट्ठे ॥४०॥
सीसो कंपिय मूई अंगुलि भमुहा य वारुणी पेहा । एगूणवीस दोसा, काउस्सग्गंमि वज्जिज्जा ॥४१॥
इरिउस्सग्गपमाणं, पणवीसुस्सास अट्ठ सेसेसु । गंभीरमहुरसद्दं महत्थजुत्तं हवइ थुत्तं ॥४२॥

१० आगमपुरस्सरं सर्वासां क्रियाणां करणम् ।

तत्र देववन्दनविधिः

पडिकमणे जिणहर जिमण चरिम पडिकमण सुयण पडिबोहे । चिइवंदणमिय जइणो, सत्त उ वारा अहोरत्ते ।।४३।।

पडिकमओ गिहिणो वि हु, सगवेला पंचवेल इयरस्स । पूयासु तिसंझासुं होइ तिवेला जहन्नेण ।।४४।।

तंबोल पाण भोयण वाणह मेहुन्न सयण निट्ठवणं । मुत्तुच्चारं जूयं, वज्जे जिणनाहगब्भहरे ।।४५।।

अन्ये पुनराचार्याश्चतुरशीतिसंख्या आशातना एवं प्रतिपादयन्ति—

खेलं[1] केलिं[2] कलिं[3] कला[4] कुललयं[5] तंबोल[6]मुग्गालयं[7], गाली[8] कंगुलिया[9] सरीरधुवणं[10] केसे[11] नहे[12] लोहियं[13] ।
भत्तोसं[14] तयं[15] पित्तं[16] वंतं[17] दसणे[18] विस्सामणं[19] दामणं[20], दंत[21]च्छी[22]नह[23]गंड[24]नासियं[25]सिरो[26] सोयं[27]छवीणं मेला[28] ।।१।।
मंतु[29]म्मीलणं[30] लेक्खयं[31] विभजणं[32] भंडार[33] दुट्ठासणं[34], छाणी[35]कप्पड[36]दालि[37]पप्पड[38]वडीविस्सारणं[39] नासणं[40] ।
अक्कंदं[41] विकहं[42] सरत्थ[43]घडणं तेरिच्छ[44]संठावणं, अग्गीसेवणं[45] रंधणं[46] परिक्खणं[47] निस्सीहियाभंजणं[48] ।।२।।
छत्तो[49] वाणह[50] सत्थं[51] चामर[52] मणोणेगत्तं[53]मब्भंगणं[54] सच्चित्ताणं[55]मचाय चायमजिए[56] दिट्ठीइ नो अंजली[57] ।
साडेगुत्तरसंगभंगं[58] मउडं[59] मोलिं[60] सिरोसेहरं[61], हुड्डा[62] जिंडुहगिड्डियाइरमणं[63] जोहार[64] भंडक्किरियं[65] ।।३।।
रिक्कारं[66] धरणं[67] रणं[68] विवरणं वालाणं[69] पल्हत्थियं[70] पाऊ[71] पायपसारणं[72] पुडपुडी[73] पंकं[74] रओ[75] मेहुणं[76] ।
जूया[77] जेमणं[78] जुंज्झ[79] विज्झं[80] वणिजं[81] सिज्जं[82] जलं[83] मज्जणं[84] एमाईयमवज्जकज्जमुज्जुओ वज्जे जिणिंदालए ।।४।।

वन्दनकविधिं पुनर्वृद्धा एवं प्रपञ्चितवन्तः—

मुहणंतयदेहावस्सएसु पणवीस हुन्ति पत्तेयं । छट्ठाण छ गुरुवयणा, छच्च गुणा हुन्ति नायव्वा ।।१।।

१० आगम-पुरस्सरं सर्वासां क्रियाणां करणम्।

अहिगारिणो य पंच य, इयरे पंचेव पंच पडिसेहा । इक्को वग्गह पंचाभिहाण पंचेव आहरणा ॥२॥
आसायणतित्तीसं दोसा बत्तीस कारणा अट्ठ । बाणउयसयं ठाणाण वन्दणे होइ नायव्वं ॥३॥
दिट्ठिपडिलेह एगा, अक्खोडा तिन्नि तिन्नि अन्तरिया । अक्खोडा पक्खोडा नव नव इय पुत्तिपणवीसा ॥४॥
पयाहिणेण तिय तिय, बाहुसु सीसे मुहंमि उयरे य । पिट्ठीइ हुन्ति चउरो छप्पाए पुत्तिपणवीसा ॥५॥
दुओणयं अहाजायं, किइकम्मं बारसावयं । चउसिरं तिगुत्तं च, दुपवेसं एगनिक्खमणं ॥६॥
इच्छा य अणुन्नवणा, अव्वाबाहं च जत्त जवणा य । अवराहखामणावि य छट्ठाणा, हुंति वंदणए ॥७॥
छंदेण अणुजाणामि, तहत्ति तुब्भंपि वट्टए एवं । अहमवि खामेमि तुमे, वयणाइं वंदणारिहस्स ॥८॥
विणओवयार माणस्स, भंजणा पूयणा गुरुजणस्स । तित्थयराण य आणा, सुयधम्माराहणाऽकिरिया ॥९॥
आयरिय उवज्झाए, पवित्ति थेरे तहेव रायणिए । एएसिं किइकम्मं, कायव्वं निज्जरट्ठाए ॥१०॥
पासत्थो ऊसन्नो, होइ कुसीलो तहेव संसत्तो । अहछंदोवि य एए, अवंदणिज्जा जिणमयंमि ॥११॥

तत्र गुरुवन्दनविधिः

वक्खित्तपराहुत्ते, पमत्ते मा कयाइ वंदिज्जा । आहारं च करंतो, नीहारं वा जइ करेइ ॥१२॥
देविंदरायगिहवइसागरिसाहम्मि उग्गहा पंच । गुरुउग्गहो इहं पुण, आयपमाणो चउदिसिंपि ॥१३॥
वंदणचिइकिइकम्मं, पूयाकम्मं च विणयकम्मं च । वंदणगस्स उ एए, नामाइं हवंति पंचेव ॥१४॥
सीयले खुड्डए कण्हे, सेवए पालए तहा । पंच एए उ दिट्ठंता, किइकम्मे हुंति नायव्वा ॥१५॥

[1]पुरओ [2]पक्खास[3]न्ने, गंता [6]चिट्ठणनिसीय[9]णायम[10]णे । आलोयण[11]ऽपडिसु[12]णणे पुव्वाल[13]वणे य आलोए[14] ॥१६॥
तह उवद[15]सं निमंत[16]णं ख[17]द्धा [18]अयणे तहा [19]अपडिसुणणे । [20]खद्धत्ति य [21]तत्थगए किं[22] तुम[23] तज्जा[24]य नोसुम[25]णे ॥१७॥
नो [26]सरसि कहं [27]छित्ता, परिसं [28]भित्ता अणु[29]ट्ठियाइ कहे । संथारपायघट्टण[30] [31]चिट्ठो[32]च्चसमा[33]सणे यावि ॥१८॥
अणाढियं १ च थद्धं २ च पविद्धं ३ परिपिंडियं ४ । टोलगइ ५ अंकुसं ६ चेव, तहा कच्छभरिंगिवं ७ ॥१९॥
मच्छुव्वत्तं ८ मणसा थ, पउट्ठं ९ तहय वेइयाबद्धं १० । भयसा ११ चेव भयंतं १२ मित्ती १३ गारव १४ कारणा १५ ॥२०॥
तेणियं १६ पडिणियं १७ चेव, रुट्ठं १८ तज्जियमेव य १९ । सढं २० च हीलीयं २१ चेव, तहा विप्पलिउंचियं २२ ॥२१॥
दिट्ठमदिट्ठं २३ च तहा, सिंगं २४ च कर २५ मोयणं २६ । आलिद्धमणालिद्धं २७ ऊणं २८ उत्तरचूलियं २९ ॥२२॥
मूयं ३० च ढड्डरं ३१ चेव, चुडुलियं ३२ च अपच्छिमं । बत्तीसदोसपरिसुद्धं किइकम्मं पउंजए ॥२३॥ दारं ।
आयरकरणं आढा, तव्विवरीयं अणाढियं होइ १ । दव्वे भावे थद्धो, चउभंगो दव्वओ भइओ २ ॥२४॥
पव्विद्धमणुवयारं, जं अप्पिंतो न जन्तिओ होइ । जत्थ व तत्थ व उज्झइ, कयकिच्चो वक्खरं चेव ३ ॥२५॥
संपिंडिए च वंदइ, परिपिंडियवयणकरणओ वावि ४ । टोलो व्व उप्फिडंतो ओसक्कहिसक्कणं कुणइ ५ ॥२६॥
उवगरणे हत्थंमि व, घित्तु निवेसेइ अकुसं बिंति ६ । ठियविट्ठरिंगणं जं तं कच्छभरिगियं नाम ७ ॥२७॥
उट्ठिंतनिवेसिंतो उव्वत्तइ, मच्छउ व्व जलमज्झे । वंदिउकामो वऽन्नं झसो व परियत्तए तुरियं ८ ॥२८॥
अप्पपरपत्तिएणं, मणप्पओसो अणेगउट्ठाणो ९ । पंचेव वेइयाओ १०, भयं तु निज्जूहणाईयं ११ ॥२९॥

र्मरत्न-
करणम्
२१७॥

१० आगम-
पुरस्सरं
सर्वासां
क्रियाणां
करणम् ।

भयइ व भइस्सइत्ति व इय वंदइ निहोरयं निवेसंतो १२ । एमेव य मित्तीए १३ गारव सिक्खाविणीओ हं १४ ॥३०॥
नाणाइतिगं मोत्तुं, कारणमिह लोगसाहगं होइ । पूयागारवहेउं नाणग्गहणेवि एमेव १५ ॥३१॥
आयरतरेण हंदी, वंदामी तेण पच्छ पणइस्सं । वंदणगमोल्लभावो, न करिस्सइ मे पणयभंगं ॥३२॥
हाउं परस्स दिट्ठिं, वंदंतो तेणियं हवइ एयं । तेणो विव अप्पाणं, गूहइ ओभावणा मा मे १६ ॥३३॥
आहारस्स उ काले, नीहारस्सावि होइ पडिणी १७ । रोसेण धमधमंतो, जं वंदइ रुट्ठमेयं तु १८ ॥३४॥
न वि कुप्पसि न पसीयसि कट्ठसिवो चेव तज्जियं एयं । सीसंगुलिमाईहिं तज्जेइ गुरुं पणिवयंतो १९ ॥३५॥
वीसंभट्ठाणमिणं, सब्भावजढे सढं हवइ एयं । । कवडं ति कइअवं ति य सढया विय होंति एगट्ठा २० ॥३६॥
गणिवायगजिट्ठज्ज त्ति हीलियं किं तुमे पणमिएणं २१ । दरवंदियंमिवि, कहं करेइ पलिउंचियं एयं २२ ॥३७॥
अंतरिओ तमसे वा, न वंदई वंदई उ दीसंतो । एयं दिट्ठमदिट्ठं २३ सिंगं पुण कुंभपासेहिं २४ ॥३८॥
करमिव मन्नइ दिंतो, वंदणयं आरहन्तियकरो त्ति २५ । लोइयकराउ मुक्का, न मुच्चिमो वंदणकरस्स २६ ॥३९॥
आलिद्धमणालिद्धं रयहरसीसेहिं होइ चउभंगो २७ । वयणक्खरेहिं ऊणं जहन्नकालो व (लो ण) सेसेहिं २८ ॥४०॥
दाऊण वंदणं मत्थएण वंदामि चूलिया एसा २९ । मुउ व्व सद्दरहिओ जं वंदइ मूयगं तं तु ३० ॥४१॥
ढड्ढरसरेण जो पुण, सुत्तं घोसेइ ढड्ढरं तमिह ३१ । चुडलिं व गिण्हिऊणं, रयहरणं होइ चुडलीओ ॥४२॥
पडिकमणे सज्झाए, काउसग्गाऽवराहपाहुणए । आलोयणसंवरणे उत्तमट्ठे य वंदणयं ॥४३॥ इति ।

तत्र गुरुव-
न्दनविधिः

॥२१७॥

प्रत्याख्यानविधिः पुनरेवं प्रकटीक्रियते—

दस पच्चखाणं[1] तिविही[2] आहारं[3] दुवीसगार[4] अदुरुत्ता[5] । दस विगई विगइगया तीसं[6] भंगा[7] य छ सुद्धी[8] ॥१॥ दारं ।
नवकारसहिय पोरिसि पुरिमड्ढेक्कासणेगठाणे य । आयंबिल अभत्तट्ठे चरिमे य अभिग्गहे विगई ॥२॥
उग्गए सूरे य नमो, पोरिसि पच्चक्ख उग्गए सूरे । सूरे उग्गए पुरिमं, अभत्तट्ठं पच्चक्खाइ त्ति ॥३॥
भणइ गुरू सीसो पुण, पच्चक्खामित्ति एव वोसिरइ । उवओगित्थ पमाणं, न पमाणं वंजणच्छलणा ॥४॥
नवकारं चउहारं, रत्तिंपि मुणीण सेस तिह चउहा । निसिपोरिसिपुरिमेगासणाइ सड्ढाण दुतिचउहा ॥५॥
असणे मुग्गोयणसत्तुमंडपयखज्जकंदरब्बाई । पाणे कंजियजवकयरकक्कडोदगसुराइजलं ॥६॥
खाइमि भत्तोसफलाइ, साइमे सुंठिजीरअजमाई । महुगुलतंबोलाई, अणहारे मोयनिंबाई ॥७॥
दो नवकारि छ पोरिसि सग पुरिमड्ढे इगासणे अट्ठ । सत्तेगठाणि अंबिलि अट्ठ पण चउत्थि छ प्पाणे ॥८॥
चउ चरिमे चउभिग्गहि, पण पावरणे नवट्ठ निव्वीए । आगारुक्खित्तविवेग मुत्तु दवविगइनियमिट्ठ ॥९॥
विस्सरणमणाभोगो, सहसागारो सयंमुहपवेसो । पच्छन्नकालु मेहाइ, दिसिविवज्जासु दिसिमोहो ॥१०॥
साहुवयण उग्घाडापोरिसि तणुसुत्थया समाहि त्ति । संघाइकज्ज महयर गिहत्थबंदाइ सागारी ॥११॥
आउंटणमंगाणं गुरुपाहुणसाहु गुरुअब्भुट्ठाणं । परिठावण विहिगहिए जईण पावरणि कडिपट्टो ॥१२॥
खरडिय लूहिय डोवाइ, लेव संसट्ठ दुद्ध(डुच)मंडाई । उक्खित्तपिंडविगईण मक्खियं अंगुलीहि मणा ॥१३॥

लेवाड दक्खपाणाइ इयरु सोवीर अच्छमुसिणजलं । बहलधोयण आयाम ससित्थं इयरु सित्थविणा ॥१४॥
पोरिसि सड्ढ अवड्ढं दुगभत्तं पोरिसाइ सम कमसो । अंगुट्ठमुट्ठिगंठीसचित्तदव्वाइ अभिगहियं ॥१५॥
खीरघयदहियतिल्लं, गुलपक्कन्नं छ भक्खविगईओ । गोमहिसिउट्टिअयएलगाण पण दुद्ध अह चउरो ॥१६॥
घयदहिया उट्टिविणा तिल सरिसव अयसि लट्ट तिल्ल चऊ । दवगुडपिंडगुडा दो, पक्कन्नं तिल्लघयतलियं ॥१७॥
पयसाडि खीरि पेयाऽवलेहि दुद्धट्टि दुद्धविगइगया । दक्ख बहुअप्पतंदुल तच्चुन्नंबिलसहिय दुद्धे ॥१८॥
निब्भंजण वीसंदण, पक्कोसहितरियकिट्टि पक्कघयं । दहिए करंब सिहरिणि, सलवणदहिघोल घोलवडा ॥१९॥
तिलकुट्टि निभंजण पक्कतिल्ल पक्कुसहतरिय तिल्लमली । सक्कर गुलवाणय पाय खंड अद्धकड्ढिइक्खुरसो ॥२०॥
पूरियतवपूया बीयपूओ १ तन्नेहि तुरियघाणाई २ । गुलहाणिय ३ जललप्पसिय ४ पंचमो पुत्तकयपूओ ५ ॥२१॥
दुद्धदही चउरंगुल, दवगुडघयतिल्ल एगु भत्तुवरिं । पिंडगुलमक्खणाणं अद्दामलयं च संसट्ठं ॥२२॥
विगईगयं दव्वहया, विगई पुण तेण तं हयं दव्वं । उद्धरिए तत्तंमि उ उक्किट्ठदव्वं इमं अन्ने ॥२३॥
वरिसोलगकक्करियाइ राइणंबाइ दक्खवाणाई । डोलिय तिल्लाई इय सरसुत्तमदव्व लेवकडा ॥२४॥
विगईगया संसट्ठा उत्तमदव्वा य निव्विगइयंमि । कारणजायं मुत्तुं कप्पन्ति न भुत्तु जं वुत्तं ॥२५॥
विगइं विगईभीओ विगइगयं जो उ भुंजए साहू । विगई विगयसहावा विगई विगइं बला नेइ ॥२६॥
कुत्तिय मच्छिय भामर महुं तिहा कट्ठपिट्ठ मज्ज दुहा । थलजलखग मंस तिहा घय व्व मक्खण चउअभक्खा ॥२७॥

१० आगम-पुरस्सरं सर्वासां क्रियाणां करणम् ।

तत्र प्रत्याख्यानविधिः

॥२१८॥

मण[1]–वयण[2]–काय[3]–मणवय[4]–मणतणु[5]–वयतणु[6]–ति[7]जोगि सग सत्त । कर[1]कार[2]णुमई[3] दु[6]ति[7]जुय तिकालि सीयालभंगसयं ॥२८॥
एयं तु उत्तकाले सयं च मणवइतणूहिं पालणियं । जाणगुजाणगपासित्ति भंगचउगे तिसु अणुन्ना ॥२९॥
फासिय पालिय सोहिय तीरिय किट्टिय आराहिय छसुद्धं । पच्चक्खाणं फासिय, विहिणोचियकालि जं पत्तं ॥३०॥
पालिय पुण पुण सरियं, सोहिय गुरुदत्तसेसभोयणओ । तिरिय समहियकाला, किट्टिय भोयणसमयसरणा ॥३१॥
इय पडियरियं आराहियं तु अहवा छ सुद्धि सद्दहणा । जाणणविणयणुभासणअणुपालणभावसुद्धि त्ति ॥३२॥

## प्रतिक्रमणविधिं पुनरेवं पूज्याः प्रतिपादयन्ति—

तत्र प्राभातिकप्रतिक्रमणविधिः–

इरिया कुसुमिणुसग्गो जिणमुणिवन्दण तहेव सज्झाओ । सव्वस्सवि सक्कथओ तिन्नि य उस्सग्ग कायव्वा ॥१॥
चरणे दंसणनाणे दुसुलोगुज्जोय तइय अइयारा । पुत्ती वन्दण आलोय सुत्त तह वन्द खामणयं ॥२॥
वन्दण तवउस्सग्गो पुत्ती वन्दणय पच्चक्खाणं तु । अणुसट्ठी तिन्नि थुई वन्दण बहुवेल पडिलेहा ॥३॥

## रात्रिकं पुनरेवम्—

जिणमुणिवन्दण अइयारुस्सग्गो पुत्ति वन्दणालोए । सुत्तं वन्दण खामण वन्दण चरणाइ उस्सग्गा ॥१॥
उज्जोय दु इक्किक्का सुयखित्तुस्सग्ग पुत्ति वन्दणयं । थुइतिय नमुत्थुथुत्तं पच्छित्तुस्सग्गसुत्तं च ॥२॥

## पाक्षिकं त्वेवम्—

मुहपुत्ती वन्दणयं, संबुद्धाखामणं तहा लोए। वन्दण पत्तेय खामणाइं वन्दणयसुत्तं च ॥१॥
सुत्तं अब्भुट्ठाणं, उस्सग्गो पुत्तिवन्दणं तह य। पज्जन्ते खामणयं तह चउरो छोभवन्दणया ॥२॥

चातुर्मासिकसांवत्सरिकप्रतिक्रमणे पाक्षिकप्रतिक्रमणमिव वाच्ये, नवरं कायोत्सर्गे विशेषः, तथाहि–

चत्तारि दो दुवालस वीसं चत्ता य हुन्ति उज्जोया। देसिय राइय पक्खिय चाउम्मासे य वरिसे य ॥१॥
साय सयं गोसद्धं, तिन्नेव सया हवन्ति पक्खंमि। पंच य चाउम्मासे अट्ठसहस्सं च वारिसिए ॥२॥ इति।

वरुणज्ञातं त्वेवम्—

तत्र वरुणज्ञातम्।

वरमलयजतरव इव, प्रासादा यत्र भोगिजनकलिताः। सततं सन्तापहरा भोगपुरं नाम तदिह पुरम् ॥१॥
वरुणस्तत्र महेभ्यः, सर्वेभ्यः पुरजनेभ्य आढ्यतरः। गमसङ्गमसुभगागमनिगदितविधिविशदपथपथिकः ॥२॥
तस्य च नितान्तकान्ता, श्रीकान्तासञ्ज्ञिताऽभवत् कान्ता। तनयः सुलसः सुलसद्विनयादिगुणाम्भसः कलशः ॥३॥
अथ नगरे भवचक्रे, चक्रेश्वरशक्रचक्रबलदलनः। निवसति वसतिर्दुस्तरतरतमसां मोहभूभर्त्ता ॥४॥
सहसा सोऽन्येद्युरभूच्चिन्ताचयचुम्बितः सभासीनः। अथ रागकेशरी स्माह, विस्मितस्तात! ननु किमिदम्? ॥५॥
यत्त्वयि कुपिते शत्रेव, विद्यया खेचरी त्रिलोकीयम्। चिन्तासन्तानावर्त्तगर्ते परिवर्तिनी भवति ॥६॥
कृतनिखिलशत्रुबलभरशातस्तातस्तु वहति यच्चिन्ताम्। तत्किमपि महच्चित्रं, मोहोऽथ जगाद हे वत्स! ॥७॥
चारित्रधर्मनामा, वामात्मा ननु सदा ममाप्यस्ति। उद्दामसदागमचष्टदुष्टसाहाय्यदुर्ललितः ॥८॥

॥२१९॥

रागः प्राह विरूपकमसाधुना किमधुनाऽमुना चक्रे ?। मोहः स्माह न सम्प्रति वत्स ! कृतं किन्तु कर्त्ताऽसौ ॥९॥
भोगपुरेऽस्ति सदागमवचनैकरुचिः शुचिर्वरुण इभ्यः । तस्य तनूजः सुलसः, प्रज्ञाविज्ञानकुलभवनम् ॥१०॥
तं यदि सदागमोऽयं व्युद्ग्राहयिता निजे मते दुष्टः । निश्चितमस्मत्कन्दान्निष्कन्दयिता स एव तदा ॥११॥
रागोऽभ्यधादहं लघु, कुदृष्टिरागेण निजकरूपेण । तमधिष्ठाय विधास्ये, वशम्वदं तातपादानाम् ॥१२॥
मोहो जगाद तुष्टः, साधूक्तं साधु वत्स! तव भवतु । कुशलं पथ्यनुजोऽयं, द्वेषगजेन्द्रः सहायस्ते ॥१३॥
पित्रा तावित्युक्तावुपसुलसं जगमतुस्तदा तत्र । नगरे कश्चिच्चरकः, सुदुस्तपं तप्यते हि तपः ॥१४॥
तं नन्तुं भूरिमुदा, गच्छन्तं वीक्ष्य पुरजनं सर्वम् । सुलसः कौतुकितमनाः, तं गत्वा प्रणिपपातोच्चैः ॥१५॥
लब्धावसरेणाथो, कुदृष्टिरागेण सदृढमधितष्ठे । तममन्यत तत्त्वधिया, गुरुमिव देवमिव जनकमिव ॥१६॥
प्रतिदिवसमसमभक्तिस्तं प्रणमति नौति पर्युपास्ते च । कृतकृत्यं मन्वानः, परिहृतसकलान्यकर्त्तव्यः ॥१७॥
अथ विज्ञाय सदागमनिषिद्धविधिलालसं सुतं सुलसम् । वरुणः स्फूर्जत्करुणस्तं प्रति हितमिति निगदति स्म ॥१८॥
रागादिवीरविजयी, कृतसुरसेवः सदा जिनो देवः । शक्त्या जिनगदितागमविधिकरणपरः सुसाधुगुरुः ॥१९॥
गतसकलदूषणगणं, विलसन्निःशेषभूषणं परमम् । आगमतत्त्वं नित्यं, यस्य गृहे ज्ञायते वत्स ! ॥२०॥
स हि कथमयथातथदर्शिदर्शिते पापकुञ्जरनिकुञ्जे । आगमविधिविपरीते तत्त्वाभ्यासेऽपि रज्येत ? ॥२१॥
किं वत्स ! सरसबिसिनीबिसविसरोत्पन्नसततसौहित्यः । कादम्बो हि कदम्बे निम्बे वा लम्बते क्वापि ? । २२॥

जलमुक्विमुक्तमुक्ताफलनिर्मलसलिलबिन्दुपानचणः । कश्मलनड्वलनीरं, बप्पीहोऽपीहते किंनु ? ॥२३॥ १० आगमपुरस्सरं सर्वासां क्रियाणां करणम् ।
बहुनिष्कृत्रिमपक्त्रिमफलभरसारं विलोक्य सहकारम् । चेतोऽपि दधीत कदापि, किं शुकः किंशुकसतृष्णम् ॥२४॥
दुस्तपतपसः कर्तुर्भर्तुः समतां सदापि जैनमुनेः । कोऽन्यत्र मुनौ सुमनाः, स्वमनः कुर्वीत वीततमाः ? ॥२५॥
अथ विहितसन्निधानो, द्वेषगजेन्द्रेण सुलस इत्यूचे । किं तात ! पातकादपि न बिभेषि महात्मनो निन्दन् ? ॥२६॥
मासक्षपणविधाता, निर्दोषसमस्ततत्त्वविज्ञाता । अमुना मुनिना सदृशः, कोऽन्यः सकलेऽपि भूमितले ? ॥२७॥
अहह गुणिष्वपि रागं, निवारयन् धारयन् मनो मलिनम् । का जगति गतिस्तव पाप ! भाविनी भाव्यकल्याण ? ॥२८॥
श्रुत्वैवं विच्छायो, वरुणो ह्यरुणोदये प्रदीप इव । दध्यौ धिग् धिग् विलसितमसममिदं दृष्टिरागस्य ॥२९॥
अपि कामस्नेहाख्यौ, रागौ भव्याङ्गिना सुखनिवार्यौ । विदुषापि दुरुच्छेदः, पापीयान् दृष्टिरागस्तु ॥३०॥
कलिकालविलसितं तच्चानुकूलं पचेलिमं कर्म । यदुपेक्षते जनोऽयं, सदागमार्थेऽपि मूढमनाः ॥३१॥
किं वातकी जनोऽयं, पिशाचकी वाऽथवा किमुन्मत्तः ? । आगमविधिं विना यत्, कुरुतेऽन्यत्रापि तत्त्वधियम् ॥३२॥
भविनो भवे भवेयुः, कथमेते दुःषमागलितमतयः ? । तीर्थाधिनाथगदितो, यदि न स्यादागमो भगवान् ॥३३॥ तत्र वरुण ज्ञातम् ।
प्रथितानयेन तनयेन, किमधुना किममुनापि विभवेन ? । श्रीमन्तमागममहं, सेविष्ये संगनिर्मुक्तः ॥३४॥
एवं ध्यात्वा वरुणः, स्वधनं पात्रे ददौ प्रविव्रजिषुः । तत्र तदानीमागाद्धर्मवसुर्नाम मुनिराजः ॥३५॥
इभ्यस्तन्नमनार्थं, प्रययौ नत्वा गुरून् समयविधिना । निषसाद यथास्थानकमथ सूरिर्देशनां चक्रे ॥३६॥

अव्यवहारिकराशौ, गमयित्वाऽननन्तपुद्गलविवर्त्तान् । व्यवहृतिराशौ कथमपि, जीवोयं विशति तत्रापि ॥३७॥
बादरनिगोदपृथिवीजलदहनसमीरणेषु जलधीनां । सप्तति कोटाकोटयः, कायस्थितिकाल उत्कृष्टः ॥३८॥
सूक्ष्मेष्वमीषु पंचस्ववसर्पिण्यो ह्यसंख्यलोकसमाः । सामान्यबादरेऽङ्गुलगणनातीतांशमानास्ताः ॥३९॥
एकेन्द्रियेष्वथावल्यसंख्यभागसमपुद्गलविवर्त्ताः । सामान्येन निगोदेषु, पुनः सार्द्धकतृतीयाः ॥४०॥
सागरशतपृथक्त्वं, गर्भजपञ्चेन्द्रिये तथा पुरुषे । स्त्रीवेदवेदिषु पुनर्दशोत्तरं पल्यशतमधिकम् ॥४१॥
पचेन्द्रियेषु सागरसहस्रमधिकं सकृन्निरयसुरयोः । नवपूर्वकोटिसहितं, त्रसेषु जलनिधिसहस्रयुगं ॥४२॥
मनुजेषु भवा अष्टौ, तथैव पूर्णायुरखिलतिर्यक्षु । कायस्थितिर्जघन्या सर्वत्रान्तर्मुहूर्त्तमिता ॥४३॥
संख्यभवाः पर्याप्ते, विकले संख्याः समासहस्रास्तु । गुरुलघ्वायुरनन्तरतद्भवभेदाच्चतुर्भङ्गी ॥४४॥
धर्मात आ मघाया भवननिवासिभ्य आ सहस्रारात् । शुभ्रिषु सुरेष्वपि चतुः स्यादेकान्तरित उपपातः ॥४५॥
उत्कृष्टजीवितजुषां, तमस्तमायां भवेद् द्विरुत्पादः । आनवमग्रैवेयकमच्युतकल्पात् त्रिरुत्पत्तिः ॥४६॥
इति भवगहनेऽनन्ते, भ्राम्यन् जीवः सहन्नसातभरम् । जातिकुलप्रभृतियुतं, कथमपि लभते मनुजजन्म ॥४७॥
तदपि च संप्रति लब्ध्वा, भवभयदुःखक्षयक्षमं भव्याः । शिवसौख्यैकनिमित्तं, विधत्त यतिधर्ममकलङ्कम् ॥४८॥
श्रुत्वैवमनन्तदुरन्तसंसृतिभ्रमणभीरुको वरुणः । श्रीधर्मवसुमुनीश्वरपदमूले व्रतमशिश्रयत् ॥४९॥
सर्वाः क्रियाः स कुर्वन्, सदा सदागमपुरस्सरं सुमतिः । निर्मलकेवलकलनापरिकलितः शिवपदं प्राप ॥५०॥

सुलसं तु दृष्टिरागी, परापरान् लिङ्गिनो निनाय हठात् । स बभार भक्तिभारं सर्वेष्वपि तेषु मूढमनाः ॥५१॥
अथ मौलिकः कुलिङ्गी, कुपितो दध्यावहो ! कृतघ्नोऽयम् । मामत्रगणय्य सुलसो, बभूव भक्तः परेषु दृढम् ॥५२॥
ध्यात्वेति सुलसमुद्दिश्य, मन्त्रयन्त्रप्रयोगतश्चक्रे । आयससूचीविद्धो दर्भमयः पुत्रकस्तेन ॥५३॥
तदनु स सर्वाङ्गीणव्यथाप्रथाविधुरितोऽशुभध्यानः । मृत्वा जगाम नरके, पुरतो भ्रमिता भवमनन्तम् ॥५४॥

इत्येवमाकर्ण्य कुदृष्टिरागव्यासंगभीरोर्वरुणस्य वृत्तम् ।
सदापि जैनागमपूर्वमुच्चैः सर्वाः प्रवृत्तीर्भविकाः कुरुध्वं ॥५५॥

॥ इतिवरुणज्ञातम् ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेषु आगमपुरस्सरं सर्वाः क्रियाः करोतीति दशमो भेदः, इदानीं यथाशक्तिदानादिप्रवर्त्तनमित्येकादशं भेदं व्याख्यानयन्नाह—





**अनिगूहिंतो सत्तिं, आयअबाहाइ, जह बहुं कुणइ । आयरइ तहा सुमई, दाणाइ चउव्विहं धम्मं ॥७०॥**

'अनिगूहन्' अगोपायन् 'शक्तिं' सामर्थ्यमात्माबाधया—स्वस्य पीडां परिहरन् दानादिचतुर्विधं धर्मं चन्द्रोदरराजवत् आचरतीति सटङ्कः । कथमाचरतीत्याह—यथा बहु करोतीति बहुकालं यावत् तं कर्तुं शक्नोति । अयमत्र भावः—सति विभवे नातितृष्णिको भवति, तनुविभवे नात्युदारः स्यात्, सर्वाभावसंभवात् । अत एवोक्तं सूत्रे—

"लाभोचियदाणे, लाभोचियभोयणे लाभोचियपरिभावे, लाभोचियनिहिगरे सिया"। स एवं कुर्वाणो बहुना कालेन प्रभूतं दद्यात्। एवं शीलतपोभावनास्वपि भावनीयम्। 'आचरति' आसेवते 'तथा' तेन प्रकारेण 'सुमतिः' पारिणामिकीबुद्धिप्रधानो दानादिचतुर्विधं धर्ममिति स्पष्टं भावितं च।

चन्द्रोदरराजचरित्रं पुनरिदम्—

गयडिम्बडमरचक्कं, चक्कपुरं इत्थ अत्थि पवरपुरं। तत्थ सिरीए वज्जाउहु व्व वज्जाउहो राया ॥१॥
नियरुइररूवजियअमरसुन्दरी सुन्दरी पिया तस्स। नियकंतिजिणियकणओ तणओ चन्दोयरो नाम ॥२॥
सो अन्नदिणे राया, राईसरकुमरसुहडसंकिण्णे। जा चिट्ठइ अत्थाणे, इय भणिओ वित्तिणा ताव ॥३॥
देव! इह अज्ज कत्तोवि, आगओ वणकरी महाकाओ। पलयघणगहिरगलगज्जिसद्दपरिपूरियदियन्तो ॥४॥
निज्झरझरंतमयजलनिब्भरअइलोलभसलपरिकिण्णो। आवणवीही चूरइ, मुसुमूरइ गेहसंदोहे ॥५॥
आधोरणे न मन्नइ, न गणइ पडियारिए मणागम्पि। वित्तासइ पउरजणं, कालु व्व, अकालकुविओ सो ॥६॥
तो रन्ना सविसायं, निरिक्खिया रायसुहडसामन्ता। तेवि दिणिन्दे उदिइ व्व किर गहा निप्पहा जाया ॥७॥
अह चन्दोयरकुमरो, कहकहवि निवं अणुन्नवेऊणं। पिच्छिज्जंतो विम्हियजणेण पत्तो गयसमीवं ॥८॥
दट्ठूण करी कुमरं, सम्मुहमिंतं सरोसतुरियगई। चलिओऽभिमुहं पच्चक्खमेव नज्जइ जमो भीमो ॥९॥
तक्केलिकोउगेणं, नरवरतणएण सम्मुहं तस्स। पक्खित्तमुत्तरीयं, मंडलागारमारइउं ॥१०॥

करिणावि गहिय सुण्डादण्डेण तयं नहंगणे खित्तं । दक्खत्तणेण कुमरोवि, तस्स पुट्ठिं समभिरूढो ॥११॥
हत्थीवि खणं महिमंडलंमि गयणे खणं च दीसंतो । कुमरं अवहरिय गओ, अदंसणपहं खणद्धेणं ॥१२॥
वज्जाउहनरनाहो, नाऊणं वइयरं इमं सहसा । सह चउरंगबलेणं लग्गो पिट्ठीइ कुमरस्स ॥१३॥
पडुपवणेण पयाइं, भग्गाइं करिस्स तो निवो वलिओ । पत्तो नियंमि भवणे, कहकहवि गमेइ दिवसाइं ॥१४॥
अह तेण गयवरेणं, कुमरो नेउं गिरिंमि वेयड्ढे । मुक्को इंदपुराहिवपउमुत्तरनरवरसमीवे ॥१५॥
अइसंभमेण रण्णा, उववेसिय आसणे समुचियंमि । पणयभरभारियाए, स भारईए इमं वुत्तो ॥१६॥
कुमरवर ! सत्तवंताण, सत्तपुत्ताण उवरि संभूया । धूया उदाररूवा, ससिलेहा नाम मह अत्थि ॥१७॥
तं पत्तजुव्वणं अईयवासरे पिच्छिउं मए पुट्ठो । जोइसिओ मह साहसु, को धूयाए वरो होही ? ॥१८॥
तेणुत्तं चक्कपुराहिवस्स वज्जाउहस्स अंगरुहो । चंदोयराभिहाणो, तुह धूयाए वरो जुग्गो ॥१९॥
लग्गं पुण कह्लि च्चिय, रुइरं इय साहिए मए तत्तो । सक्कारिय सम्माणिय, जोइसिओ पेसिओ सगेहे ॥२०॥
तं पुण वणकुंजररूवधारिणा खेयरेण एएण । आणाविओ सि इहयं निवसुय ! जयविस्सुयगुणोह ! ॥२१॥
ता एयं णे धूयं, विवाहिउं निव्वुए कुणसु अम्हे । इय पत्थिओ निवेणं, कुमरो परिणेइ ससिलेहं ॥२२॥
तो तस्स निवो वियरइ, विज्जाओ गयणगमणपमुहाओ । सो चंगभोगकलिओ, अहासुहं चिट्ठए तत्थ ॥२३॥
अन्नदिने वासगिहे, सुहप्पसुत्तो निसीहसमयंमि । कुमरो नहप्पहेणं, अवहरिओ केणवि नरेण ॥२४॥

११ यथाशक्तिदानादिप्रवर्तनम्

तत्र चन्द्रोदरराजचरितम् ।

जा नीओ कंपि पहं, ता पडिबुद्धो इमो भिसं कुविओ । उप्पाडंतो मुट्ठिं, इय भणिओ तेण पुरिसेण ॥२५॥
मा कुप्पसु मह सामिय ! वयणमिणं सुणसु काउ सुपसायं । वेयड्ढे मलयपुरे इहासि राया किरणवेगो ॥२६॥
सो य अपुत्तो सहसा, उप्पन्नपयंडसूलरोगेण । पंचत्तं संपत्तो, किज्जंतुवयारनिवहोवि ॥२७॥
अह हाहारवविरसो, महंतकलकलरवो समुच्छलिओ । अक्कंदरवरउद्दो पलावसद्दो पयट्टो य ॥२८॥
बुद्धिसमिद्धंपि भिसं, संभंतं मंतिमंडलं सयलं । किंकायव्वविमूढो जाओ सामन्तवग्गो वि ॥२९॥
तो खुहिओ नयरजणो, तक्कालुप्पन्नगरुयभयभीओ । तरलनयणो असरणो, सुन्नमणो सुन्नवयणो य ॥३०॥
नाणावियप्पसंकप्पकप्पणाकम्पमाणकरचरणा । ठाणे ठाणे मंतन्ति, थेरवणिया निहुयनिहुयं ॥३१॥
नेसत्थियप्पसारा, सहसा सव्वेवि संवरिज्जंति । दोसियहट्टाणंतो सिचयचया संचइज्जंति ॥३२॥
सोवन्नियपुत्तेहिं पुत्ता विज्जंति सुन्नरुप्पाइं । खडकिज्जंति खणेणं, कंसारियकंसउक्कुरुडा ॥३३॥
पसरन्ति तक्करनरा, तह तालिज्जंति हट्टसंघाया । धावन्ति गंठिछोडा, पुट्टलिया लहु पलायन्ति ॥३४॥
भयसंभमभरभिंभलउट्ठिंतपडंतजंतभज्जंता । जरजुन्नवुड्ढवणिया संवाहिज्जंति तरुणेहिं ॥३५॥
कुंजरघडा गुडिज्जंति पक्खरिज्जंति सारतुक्खारा । सज्जिज्जंति रहवरा, सन्नाहिज्जंति वरसुहडा ॥३६॥
पुव्वविणिज्जियपडिवक्खलक्खदप्पुद्धुरा महावीरा । मागहगणेण गिज्जंति, उवहसिज्जंति काउरिसा ॥३७॥
वज्जंति विजयढक्का, अप्फालिज्जंति समरतूराइं । भंकारभरियभुवणा, तह पूरिज्जंति भेरीओ ॥३८॥

हक्कंता वग्गंता, सुहडा उट्ठंति खग्गवग्गकरा । खग्गखडक्खडभीया, कायरपुरिसा पलायन्ति ॥३९॥
निवडंतनिविडदढगुडधयमुहवडसंकुडंतकुंभयडा । नासंति कायरगया, मोडंता विडविसंघायं ॥४०॥
दढनिविडकवाडाइं गोउरदाराइं लहु पिहिज्जंति । सव्वत्तो पायारो, मालिज्जइ जंतलक्खेहिं ॥४१॥
इय असमंजसविसरो, जा मलयपुरम्मि पसरए देव ! । ता रज्जपहाणनरेहिं संभमुब्भन्तनयणेहिं ॥४२॥
भत्तिविणएण आराहियाइ कुलदेवयाइ तं सामि ! । बहुपुण्णविक्कमगुणो रज्जस्स पहू विणिद्दिट्ठो ॥४३॥
तो अवहरिओसि तुमं, सामि ! मए ता पसीय लहु तत्थ । आगंतुं एस जणो, रज्जमिणं किज्जउ सणाहं ॥४४॥
इय भत्तीए भणिऊण, तेण नीओ खणेण तत्थ इमो । अहिसित्तो रज्जभरे, पहाणप्पुरिसेहिं हिट्ठेहिं ॥४५॥
नासंति तयणु धुत्ता, भवभीया तक्करा निलुक्कंति । बज्झंति गंठिछोडा, कण्णत्तोडा हणिज्जंति ॥४६॥
गयतुरयरहापाइक्कचक्कसामंतमन्तिभडनिवहा । सव्वेवि हट्ठतुट्ठा, सत्थावत्था खणा जाया ॥४७॥
नियपहाणनरेहिं, तत्थाणावेइ झत्ति ससिलेहं । पालइ तिवग्गसारं, राया चंदोयरो रज्जं ॥४८॥
कइयावि भाणुसूरी, बहुसीसजुओ समोसढो तत्थ । सारपरिवारकलिओ, तन्नमणत्थं निवो पत्तो ॥४९॥
वंदित्तु सुगुरुचरणे, उचियट्ठाणे निवंमि आसीणे । इय कहइ गुरू धम्मं, दुन्दुहिउद्दामसद्देण ॥५०॥
इह दाणसीलतवभावणाहिं, चउहा जिणेहि पण्णत्तो । धम्मो चउगइभवभमणगहणवणपलयजलणसमो ॥५१॥
दाणं च तत्थ तिविहं, नाणपयाणं च अभयदाणं च । धम्मोवग्गहदाणं च, नाणदाणं इमं तत्थ ॥५२॥

११ यथाशक्तिदानादिप्रवर्तनम्

तत्र चन्द्रोदरराजचरितम् ।

जीवाजीवाइपयत्थवित्थरं उभयलोयकरणिज्जं । जाणन्ति जेण जीवा, तं नाणं तं च पंचविहं ॥५३॥
आभिणिबोहियनाणं, सुयनाणं चेव ओहिनाणं च । तह मणपज्जवनाणं, केवलनाणं च पंचमयं ॥५४॥
अट्ठावीसइभेयं, मइनाणं तत्थ उग्गहाईया । चउरो भेया तहियं, अवग्गहो होइ पुण दुविहो ॥५५॥
तत्थ मणनयणवज्जियकरणाणं वंजणुग्गहो चउहा । ताणं अपत्तकारित्तणेण पुग्गलगहाभावा ॥५६॥
अत्थपरिच्छेयपरु त्ति, होइ अत्थुग्गहो छहिवि छद्धा । ईहाअवायधारण, पत्तेयं छव्विहा एवं ॥५७॥
कालमसंखं संखं च, धारणा अत्थउग्गहो समओ । सेसा अंतमुहुत्तं, उक्कोसजहन्नओ चेव ॥५८॥
तह बहुबहुविहखिप्पानिस्सियनिच्छियधुवेयरहएहिं । तेहिं अडवीसेहिं तिन्नि सया हुंति छत्तीसा ॥५९॥
नाणासद्दसमूहं, बहुं पिहं मुणइ भिन्नजाईयं । बहुविहमणेगभेयं, इक्किक्कं निद्धमहुराई ॥६०॥
खिप्पमचिरेण तं चिय, सरूवओ तं अणिस्सियमलिंगं । निच्छियमसंसयं जं, धुवमच्चंतं न य कयाइ ॥६१।
मइनाणुक्कोसठिई, छावट्ठी अयर अहिय इगजीवे । एवइकालपमाणं, सुयनाणं तं तु चउदसहा ॥६२॥
अक्खर सण्णी सम्मं, साईयं खलु सपज्जवसियं च । गमियं अंगपविट्ठं, सत्तवि एए सपडिवक्खा ॥६३॥
सम्मत्तपरिग्गहियं, सम्मसुयं लोइयं तु मिच्छत्तं । आसज्ज उ सोयारं, लोइयलोउत्तरे भयणा ॥६४॥
ओहीनाणं दुविहं, भवपच्चइयं च गुणनिमित्तं च । भवपच्चइयं दुण्हं, नेरइआणं सुराणं च ॥६५॥
उक्कोसं तित्तीसं, उयही इयरं तु दससमसहस्सा । अणुगामिअपडिवाई, आजम्ममवट्ठियमवज्झं ॥६६॥

गुणपच्चइयं दुविहं, तिरियाणं तह य होइ मणुयाणं । जहन्नेणिक्को समओ, छावट्ठी अयर अहियरं ॥६७॥
दोवारे विजयाइसुं, तं तिन्नेव अच्चुएगजीवस्स । नरभवअहियं नाणत्तए वि सव्वद्ध सव्वजिए ॥६८॥
ओहीनाणस्स पुणो, अणुगामियमाइया बहू भेया । निच्छयओ पच्चक्खं, तं रूविद्दव्वविसयं च ॥६९॥
एयाइं तिन्नि जीवस्स, सम्मदिट्ठिस्स हुंति नाणाइं । मइसुयनाणा जुगवं, ओही जुगवं च पत्थावा ॥७०॥
एए तिन्निवि नाणा, पणिंदिपज्जत्तसण्णिणो हुंति । सण्णिअपज्जत्तेवि हु, परभवियं ओहिनाणं तु ॥७१॥
एए चेव य नाणा, मिच्छद्दिट्ठिस्स हुंति अण्णाणा । नाणफलाभावाओ, विवरीयन्नाणओ चेव ॥७२॥
परमोही अंतमुहू, लोगपमाणोवही अपडिवाई । मणपज्जवनाणं पुण, अपमत्तजइस्स मणविसयं ॥७३॥
तं दुविहं उज्जुमई, अड्ढाइयअंगुलेहि ऊणं तु । समयक्खित्तं पिक्खइ, तं संपुण्णं तु विउलमई ॥७४॥
जहन्नेणंतमुहुत्तं, देसूणा पुव्वकोडि उक्कोसं । जिणवज्जं ओहिविणावि कस्स चेयं भविज्जावि ॥७५॥
सुयकेवलिआहारगउजुमइउवसंतगावि परिवडिया । हिंडंति भवमणंतं, विउलमई अपडिवायं तु ॥७६॥
केवलनाणं पुण सव्वदव्वपज्जायगोयरमणंतं । सासयमसहायं तं, भवत्थअभवत्थदुगभेयं ॥७७॥
अंतमुहुत्त जहन्नं, पढमं देसूणपुव्वकोडियरं । साईअपज्जवसियं, अभवत्थं केवलं नाणं ॥७८॥
सव्वेसिं नाणाणं, सुयनाणं चेव उत्तमं जम्हा । सपरप्पयासगं दीवउ व्व मूयाणि सेसाणि ॥७९॥
जं केवलीवि भासइ, तं खलु वायाइ होइ सुयनाणं । जाणंतोवि हु जं मूयकेवली तरइ न कहेउं ॥८०॥

नाणं मोहमहंधयारलहरीसंहारसूरुग्गमो, नाणं दिट्ठअदिट्ठइट्ठघडणासंकप्पकप्पदुमो ।
नाणं दुज्जयकम्मकुंजरघडापंचत्तपंचाणणो, नाणं जीवअजीववत्थुविसरस्सालोयणे लोयणं ॥८१॥
नाणेण पुण्णपावाइं, जाणिउं ताण कारणाइं च । जीवो कुणइ पवित्तिं, पुण्णे पावे उ विणियत्तिं ॥८२॥
पुण्णे पवत्तमाणो, पावइ सग्गापवग्गसोक्खाइं । नारयतिरियदुहाण य, मुच्चइ पावाउ विणियत्तो ॥८३॥
जो पढइ अउव्वं सो, लहेइ तित्थंकरत्तमन्नभवे । जो पुण पढावइ परं, सम्मसुयं तस्स किं भणिमो ? ॥८४॥
जइवि हु दिवसेण पयं, धरेइ पक्खेण वा सिलोगद्धं । उज्जोयं मा मुंचसु, जइ इच्छसि सिक्खिउं नाणं ॥८५॥
अण्णाणी विहु पाणी, बहुबहुमाणेण मासतुसउ व्व । नाणंमि उज्जमंतो, लहइ लहुं केवलं नाणं ॥८६॥
इय नाणं निव्वाणस्स, कारणं कुगइवारणं नाणं । सुमुणीवि नाणरहिओ, न कयावि हु पावए मोक्खं ॥८७॥
संविग्गपक्खिओ वि हु, जह नाणी धरइ सुदिढसम्मत्तं । नाणविहूणो न तहा, तिव्वतवचरणनिरओ वि ॥८८॥
लद्धूणवि जिणदिक्खं, पुणो पुणो जे भमंति संसारे । अमुणंता परमत्थं, ते नाणावरणदोसेण ॥८९॥
नाणविहूणो चरणुज्जुओ वि न कयावि लहइ निव्वाणं । अंधु व्व धावमाणो, निवडइ संसारकूवंमि ॥९०॥
अण्णाणी कुणउ कहं, संवेगपरायणोवि संतो वि । जिणभणियं जइधम्मं, सावयधम्मं च विहिपुव्वं ? ॥९१॥
जे सयलजयं मुत्ताहलं व करयलगयं निरिक्खंति । गहचंदसूररिक्खाण, आउमाणं वियाणंति ॥९२॥
सरिसेवि मणुयजम्मे, एयं सयलंपि केइ कयउण्णा । जं जाणंति जए तं, सुयनाणदाणप्पभावेण ॥९३॥

दिंतो य नाणदाणं, भुवणे जिणसासणं समुद्धरइ । सिरिपुंडरीयगणहर, इव पावइ परमपयमउलं ॥९४॥ 11 यथाशक्तिदानादिप्रवर्तनम्
ता दायव्वं नाणं, अणुसरियव्वा सुनाणिणो मुणिणो । नाणस्स सया भत्ती, कायव्वा कुसलकामेहिं ॥९५॥
बीयं तु अभयदाणं, तं इह अभएण सयलजीवाणं । अभउ त्ति धम्ममूलं, दयाइधम्मो पसिद्धमिणं ॥९६॥
इक्कं चिय अभयपयाणमित्थ दाऊण सव्वसत्ताणं । वज्जाउहु व्व कमसो, सिज्झंति पहीणजरमरणा ॥९७॥
नाऊण इमं भवभीरुयाण जीवाण सरणरहियाण । साहीणं दायव्वं, भविएहिं अभयदाणमिणं ॥९८॥
धम्मोवग्गहदाणं, तइयं पुण असणवसणमाईणि । आरंभनियत्ताणं, साहूणं हुंति देयाणि ॥९९॥
तित्थयरचक्कवट्टी, बलदेवा वासुदेवमंडलिया । जायंति जगब्भहिया, सुपत्तदाणप्पभावेण ॥१००॥
जह भयवं रिसहजिणो, घयदाणबलेण सयलजगनाहो । जाओ जह भरहवई, भरहो मुणिभत्तदाणेण ॥१०१॥

अवि य—

दंसणमित्तेणवि मुणिवराण नासेइ दिणकयं पावं । जो देइ ताण दाणं, तेण जए किं न सुविढत्तं ? ॥१०२॥ तत्र चन्द्रोदरराजचरितम् ।
तं सुपवित्तं भवणं, मुणिणो विहरंति जत्थ समभावा । न कयावि साहुरहिओ, जिणधम्मो पायडो होइ ॥१०३॥
ता तेसिं दायव्वं, सुद्धं दाणं गिहीहि भत्तीए । अणुकंपोचियदाणं, दायव्वं निययसत्तीए ॥१०४॥

किञ्च—

न तवो सुट्ठु गिहीणं, विसयपसत्ताण होइ न हु सीलं । सारंभाण न भावो, तो साहीणं सया दाणं ॥१०५॥

इय तिविहंपि हु दाणं, नरवर ! संखेवओ तुह क्खायं । वियरियसिवसुहलीलं, संपइ सीलं निसामेसु ॥१०६॥
सीलं नियकुलनहयलससिव्व कित्ती पयासए भुवणे । नरसुरसिवसुहकरणं, पालेयव्वं सया सीलं ॥१०७॥
जाइकुलरूवबलसुयविज्जाविण्णाणबुद्धिरहियावि । सव्वत्थ पूयणिज्जा, निम्मलसीला नरा हुंति ॥१०८॥
तं पुण सीलं दुविहं, देसे सव्वे य होइ नायव्वं । देसे गिहीण दंसणमूलाणि दुवालस वयाणि ॥१०९॥
साहूणं सव्वसीलं, जं सीलंगाण अट्ठदससहस्सा । वुज्झंति निरइयारा, जावज्जीवं अविस्सामं ॥११०॥
लहुकम्मा गुरुसत्ता, सत्ता विसमावईसु पत्तावि । मणवयणतणुविसुद्धं, सीलं पालंति सीय व्व ॥१११॥
अस्संखभवज्जियकम्ममम्मगुरुघम्महरणपवणसमो । निम्मसीलजुएणवि, जहसत्ति तवो विहेयव्वो ॥११२॥
सो य तवो पुण दुविहो, अब्भिंतरओ तहेव बाहिरओ । इक्किक्को छब्भेओ, पायच्छित्ताणसणमाई ॥११३॥
जं नारया न कम्मं, खवंति बहुएहि वरिससहसेहिं । तं खलु चउत्थभोई, जीवो निज्जरइ सुहभावो ॥११४॥
तिव्वतवचरणरया, करित्तु तित्थुन्नई(इं) समणसीहा । संपत्ता परमपयं विण्हुकुमारु व्व गयकम्मा ॥११५॥
ता कायव्वा भत्ती, सयावि तवसंजुयाण साहूण । कम्मक्खयस्स हेऊ तवो सयं चिय करेयव्वो ॥११६॥
पालउ सीलं दाणंपि, देउ तह निम्मलं तवं कुणउ । भावेण विणा सव्वंपि निप्फलं उच्छुपुप्फं व ॥११७॥
सुहभाववुड्ढिहेउं, अणिच्चयाई य भावणा निच्चं । बारस भावेयव्वा, भवजलनिहितारणतरीओ ॥११८॥
तक्कविहूणो विज्जो लक्खणहीणो य पंडिओ लोए । भावविहूणो धम्मो, तिन्निवि नूणं हसिज्जंति ॥११९॥

अकयसुकयावि पुव्वं, मरुदेवी सामिणि व्व तक्कालं । सुहभावणावसेणं, जीवा पावंति निव्वाणं ॥१२०॥
इय सोऊणं धम्मं, चंदोयरनरवरो पहिट्ठमणो । सम्मत्तकलियममलं, गिहीणं धम्मं पवज्जेइ ॥१२१॥
नमिउं च सूरिपाए, राया पत्तो सयंमि ठाणंमि । भवियपडिबोहहेउं, गुरूवि अन्नत्थ विहरित्था ॥१२२॥
राया पढेइ नाणं, करेइ नाणीणुवग्गहं सययं । सत्तसु खित्तेसु धणं, वियरइ उद्धरइ दीणजणं ॥१२३॥
घोसावेइ अमारिं, नियदेसे धरइ समुचियं सीलं । सत्तीए तवइ तवं, भावइ सुहभावणा हियए ॥१२४॥
अन्नदिणे पियराणं, उक्कंठियमाणसो भिसं निवई । काउ नियरज्जसुत्थं, संचलिओ चक्कपुरउवरिं ॥१२५॥
एगो खयरो पुरओ, गंतुं वज्जाउहं निवं सहसा । वद्धावइ चंदोयरनरवरआगमणकहणेण ॥१२६॥
तो नायसुयागमणो पहाणसामंतमंतिबलकलिओ । हरिसियहियओ कुमरस्स सम्मुहं निग्गओ राया ॥१२७॥
दट्ठूण महारिद्धिं, राया तणयस्स विम्हिओ अहियं । पभणेइ अहो! धन्नो पुण्णब्भहिओ इमो पुत्तो ॥१२८॥
उत्तरिउं विमाणाओ, नमेइ चंदोयरो जणयचलणे । तेणावि नेहनिब्भरमेसो आलिंगिओ गाढं ॥१२९॥
तो विहियहट्टसोहे, संभंतखलंतमिलियपउरजणे । ते नयरंमि पविट्ठा, पहिट्ठचित्ता जणयतणया ॥१३०॥
निव्वाविंयं च चिरविरहताविंयं अम्मयाइ मनभवणं । आणंदबाहसारं, कयप्पणामेण तेण तया ॥१३१॥
वित्ते वद्धावणए, भणियं वज्जाउहेण नरवइणा । करिहरणप्पमुहं मह नियवुत्तंतं कहसु वच्छ ! ॥१३२॥
सोवि नियं वुत्तंतं दुद्धरवणहत्थिहरणमाईणं । वररज्जलाभपज्जंतमक्खए जाव फुडवियडं ॥१३३॥

उज्जाणपालगनरा ता आगंतूण झत्ति नरवइणो । भाणुमुणिंदागमणं, कहंति सिरठविषकरकमला ॥१३४॥
तो तेसि पीइदाणं, दाऊणं पुत्तसंजुओ राया । बहुपरिवारपरिवुडो पत्तो गुरुपायनमणाय ॥१३५॥
वंदिय मुणिंद्चरणे, धम्मकहं सुणिय पुच्छए समए । पहु ! मह सुएण पुव्विं, किं सुकयं विहियमाह गुरू ॥१३६॥
सिरिसंकेयट्ठाणे, आसी नयरे इहं पइट्ठाणे । पयईए दाणरुई, सिट्ठी विंझु त्ति विमलमई ॥१३७॥
तस्स गिहे अन्नदिणे, एगो समणो पसंतमणवयणो । भिक्खाकए पविट्ठो, मासक्खमणस्स पारणए ॥१३८॥
तं दट्ठूणं सिट्ठी, चिंतेइ अहो अहं सुकयपुण्णो । जं एस मुणी समए, भिक्खाए मह गिहं पत्तो ॥१३९॥
सो एसो मरुमंडलमहीइ वरअमरविडविउवलंभो । सा एसा चामीयरवुट्ठी य दरिद्दगेहंमि ॥१४०॥ [ग्रं. ७०००]
मायंगगिहपएसे, तमिणं सुररायदंतिआगमणं । सो एस तमसहाए, तिमिसगुहाए रयणदीवो ॥१४१॥
इय चिंतिऊण असरिसहरिसभरुब्भिन्नबहलपुलयभरो । पडिलाभइ परिवेसियपरमन्नेणं तयं साहुं ॥१४२॥
तप्पुण्णपभावेणं, निबिडं अज्जिणिय भोगफलकम्मं । काले मरिउं जाओ, देवकुराए जुयलधम्मी ॥१४३॥
कोसतियउच्चदेहो, अट्ठमभोई तिपल्लआउधरो । एगूणवन्नदिणमिहुणपालगो पवररूवजुओ ॥१४४॥
मत्तंगया य भिंगा, तुडियंगा जोई दीव चित्तंगा । चित्तरसा मणियंगा, गेहागारा अणियणा य ॥१४५॥
मत्तंगएसु मज्जं, सुहपिज्जं भायणाइं भिंगेसु । तुडियंगेसु य सययं, तुडियाणि बहुप्पयाराणि ॥१४६॥
दीवसिहा जोइसनामिया य निच्चं करंति उज्जोयं । चित्तंगेसु य मल्लं, चित्तरसा भोयणट्ठाए ॥१४७॥

मणियंगेसु य भूसणवराइं भवणाइं भवणरुक्खेसु। तह अणियणेसु धणियं, वत्थाणि बहुप्पयाराणि ॥१४८॥
इय दसविहकप्पद्दुमपरिपूरियसयलभोगदुल्ललिओ। छप्पन्नदुसयपिट्ठीकरंडपरिमंडियसरीरो ॥१४९॥
अप्पकसाओ ईसाविवज्जिओ रोगविरहिओ मरिउं। किंचूणतिपल्लाऊ, जाओ सोहम्मसग्गसुरो ॥१५०॥
तो चविउं वज्जाउहनरिंद! तुह एस नंदणो जाओ। मुणिदाणपभावाओ पत्तो एयारिसिं रिद्धिं ॥१५१॥
कित्तियमित्तं च इमं, इह चेव भवंमि गच्छिही मुक्खं। इय निसुणंतो पुव्वं, जाइं चंदोयरो सरइ ॥१५२॥
इय सुणिय तणयचरियं, गिरिसेणं लहुसुयं ठविय रज्जे। चंदोयरेण सद्धिं, राया दिक्खं पवज्जेइ ॥१५३॥
नीसेससत्तअभयप्पयाणनिरया चिरं निरइयारं। पालित्तु वयं मुक्खं, ते पत्ता दोवि मुणिवसहा ॥१५४॥

एवं विनिर्मितजगत्त्रयविस्मयस्य, चन्द्रोदरस्य नृपतेश्चरितं निशम्य।
दानादिके तदिह धत्त चतुर्विधेऽपि, धर्मे जिनेन्द्रगदिते भविका! प्रयत्नम् ॥१५५॥

॥ इति चन्द्रोदरराजचरितम् ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेषु दानादिचतुर्विधधर्मप्रवर्त्तनमित्येकादशो भेदः, सम्प्रति विह्रीक इति द्वादशं भेदं व्याख्यानयन्नाह-

**हियमणवज्जं किरियं, चिंतामणिरयणदुल्लहं लहिउं।**
**सम्मं समायरंतो, न य लज्जइ मुद्धहसिओ वि ॥७१॥**

१२ क्रिया-
ऽनुष्ठाने
अहीकः

तत्र दत्त-
कथा।

'हितां' पथ्यामिहलोकपरलोकयोः, 'अनवद्याम्' अपापां 'क्रियां' षडावश्यकजिनार्चाद्यनुष्ठानरूपां 'सम्यग्' गुरूपदिष्टविधिना 'समाचरन्' सम्यगासेवमानो न लज्जत इति सम्बन्धः। किंविशिष्टां क्रियामित्याह—चिन्तामणिरत्नमिव दुर्लभां—दुरापां 'लब्ध्वा' अवाप्य मुग्धैरज्ञैर्हसितोऽपि, दत्तवत्।

**तत्कथा चेयम्—**

अत्थि पुरी विस्सउरी, जा सुंदेरिमगुणेण जलनिहिणा। सययं आलिंगिज्जइ, तरंगबाहाहि दइय व्व ॥१॥
अपियंकरो अरीणं, तत्थ नरिंदो पियंकरो नाम। तह बहुरिद्धिसमिद्धो, दत्तो संजत्तिओ वणिओ ॥२॥
स कयावि कंबुदीवे, पत्तो वहणेण पणियभरिएण। अज्जिणिय धणं बहु तत्थ, जाव चलिओ सपुरसमुहं ॥३॥
ता पडिकूलसमीरणपणुल्लियं तस्स पवहणं भग्गं। फलहेण तरिय जलहिं, कहमवि सो सगिहमणुपत्तो ॥४॥
जलहिंमि गयं जलहिंमि, चेव किर लब्भइ त्ति चिंतेउं। घरसारं सव्वं खिविय, पवहणे सो पुणो चलिओ ॥५॥
भग्गमभग्गवसेणं, नियत्तमाणस्स तस्स पुण वहणं। देहसहाओ स गिहे, पत्तो दत्तो दुहक्कंतो ॥६॥
सो तहवि पुरिसयारं, न मुयइ ईहए पुणो जलहिगमणं। किंतु न अप्पइ से कोवि नीविमइहीणविहवु त्ति ॥७॥
ताहे दढं विसन्नो, अईवखिन्नो पणट्ठछुहनिद्दो। जाव झियायइ दीणो, ता इय सरियं जणयवयणं ॥८॥

**तथा हि—**

जइ पुत्त! कहवि विहवो, न हुज्ज तो निविडमज्झभागंमि। कट्ठसमुग्गंमि करंडियाइ वरतंबमइयाए ॥९॥

अंतो मइच्चिय कओ, निरिक्खणिज्जो त्थ पट्टओ तुमए । जं किंचि तत्थ भणियं, न कहिंचि पयासणिज्जं तं ॥१०॥
केवलनिहुत्तकज्जं अइनिउणमणेणणुट्टियव्वं तं । एवं कयंमि एयंमि ते सिरी पीवरा होही ॥११॥
इय सुमरिय पिउवयणो, केणावि अलक्खमाणओ संतो । एगंतंमि विहाडिय समुग्गयं लेइ तं पट्टं ॥१२॥
लिहियं च तत्थ दीवे, गोयमनामंमि रयणतिणचारी । सव्वत्थ अत्थि तं किर, सुरहीवग्गो सुहं चरइ ॥१३॥
इह देसाओ गम्मइ, सोमालकरीसभरियवहणेहिं । पत्तलतरुछायासुं, तं खिप्पइ तत्थ तत्थ बहुं ॥१४॥
दूरेण सयं कीरइ, आवासो ताउ तत्थ सुरहीओ । मज्झण्हे रयणीइवि, आगंतु सुहं उववसिंति ॥१५॥
मुंचंति भूरि छगणं, तं पिंडीकाउ खिविय पोएसु । आणिय सगिहे पिंडा, ते जालिज्जंति जलणेण ॥१६॥
तो रयणाइं वराइं, लब्भंते तत्थ पंचवण्णाइं । इय नायपट्टयत्थो, एवं चित्ते विचिंतेइ ॥१७॥
हियकारिणा परेणवि, न बुद्धिमंतेण भासियं चलइ । किं पुण अइसयवच्छलमणेण निउणेण जणएण ॥१८॥
इय निच्छिऊण दत्तो गहिल्लरूवं करेवि कवडेण । अत्थि मह विउलबुद्धी, न धणं ति भणेइ सयलपुरे ॥१९॥
धणनासेणं दत्तो, हहा ! वराओ गहिल्लओ जाओ । इय करुणारसिएणं, सो आहूओ नरिंदेण ॥२०॥
पुट्ठो य दत्त ! किमिणं, स भणइ बुद्धी महत्थि नय विहवो । तो निववुत्तो दंसइ सिरिहरिओ तस्स विहवभरं ॥२१॥
दीणारलक्खमेगं, गिण्हइ मह इत्तिएण कज्जंति । तत्तो दत्तो चत्तो, झंखेयव्वेण तक्कालं ॥२२॥
अह लहुगहिया गोयमदीवपहवियाणगा नरा तेण । संगहिया कम्मयरा पाउणिया पोयसंघाया ॥२३॥

गिण्हइ जुण्णकरीसं, स न लज्जइ खत्तवहणपमुहेहिं । धूलीधूसरदेहो, कच्छोट्टयमित्तवत्थधरो ॥२४॥
दत्तेण अहो गहियं, पणियं रुइरं ति तं हसंति जणा । दारिद्दस्स विइण्णो, जलंजली संपयं इमिणा ॥२५॥
अन्ने भणंति भद्दं, नरिंदसाहुस्स होउ एयस्स । जेणेरिसो विढत्तो वणिउत्तो पुण्णसंपुण्णो ॥२६॥
अवरे बिंति गहिल्लो, एस वराओ परं निवोवि अहो ! । किं नु गहिल्लो जं अप्पए नियं नीविमेयस्स ॥२७॥
ता लुट्टिएहिं घिप्पइ, तह वारिज्जइ फुरंतकरुणेहिं । तहवि पयट्टो पट्टयलिहियत्थं सो पसाहेउं ॥२८॥
भरिय करीसेणं पवहणाइ पत्तो स गोयमं दीवं । पट्टयअत्थं अणुचिट्ठिऊण पडियागओ सपुरं ॥२९॥
अह बहुगोमयपिंडयभरिए, पोए निएवि हसइ जणो । भंडाओ पडिभंडं, साहु अहो ! आणियं इमिणा ॥३०॥
सो नीओ निवपासे, उवहासपरेहिं सुंकवालेहिं । पुट्ठं रण्णा किं भंडमाणियं सोवि पच्चाह ॥३१॥
देव ! बहुछगणपिंडा, तं उस्सुंकुत्ति हसिय भणइ निवो । गच्छ गिहं संगोवसु, भंडमिणं होसु सुहभागी ॥३२॥
सामिय ! महापसाउत्ति, पभणिउं पणमिउं च रायाणं । पत्तो दत्तो सगिहे, ते संगोवइ छगणपिंडे ॥३३॥
अह ते विहिणा जालइ, पत्ताइं तेसु पवररयणाइं । जायं पुव्वं पिव तस्स मंदिरं लच्छिपडिहत्थं ॥३४॥
रयणेहिं भरिय थालं, पत्तो कइयावि सो निवसमीवे । कत्तो इमाइं इय निवइपुच्छिओ कहइ नियवुत्तं ॥३५॥
एयस्स अहो ! बुद्धी, गम्भीरत्तं अहो ! अहो ! पुण्णं । इच्चाइबहुपयारं पसंसिओ रायपमुहेहिं ॥३६॥
कइयावि सुजसगणहरपासे सुणिउं जिणिन्दवरधम्मं । पत्ते दाउ नियधणं, गहियवओ सुगइमणुपत्तो ॥३७॥

इय एसो दिट्ठंतो, कहिओ इहलोयकज्जसिद्धीए। एवं चिय नायव्वो, परलोइयकज्जसिद्धीए ॥३८॥
इत्थं विमुग्धहसितेष्ववधीरणाकृद्दत्तो बभूव भवनं विभवोच्चयस्य।
तत्सत्क्रियां विदधतो निरवद्यरूपां मा तान्यजीगणत भव्यजनाः! कदाचित् ॥३९॥

॥ इति दत्तकथा ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेषु विह्रीक इति द्वादशो भेदः, इदानीमरक्तद्विष्ट इति त्रयोदशभेदं व्याचिख्यासुर्गाथामाह—

**देहट्ठिईनिबन्धणधणसयणाहारगेहमाईसु। निवसइ अरत्तदुट्ठो संसारगएसु भावेसु ॥७२॥**

देहस्थितिनिबन्धनानि—शरीरोपष्टम्भकारणानि धनस्वजनाहारगेहानि सुप्रतीतानि आदिर्येषां क्षेत्रकलत्रवस्त्रशस्त्रयानवाहनादीनां भावानां तेषु 'निवसति' तिष्ठति गृही इति गम्यते अरक्तद्विष्ट इव अरक्तद्विष्टः 'संसारगतेषु' भवभाविषु 'भावेषु' पदार्थेषु। इयमत्र भावना—शरीरनिर्वाहकारणेष्वपि वस्तुषु ताराचन्द्रनरेन्द्रवत् मन्दादरो भवति भावश्रावकः।



भावयति चैवम्—

"न य अत्थि कोइ सयणो, न सरीरं नेव भोगउवभोगा। जीवो अन्नभवगइं गच्छइ, सव्वंपि मुत्तूणं ॥
तथा दुर्विनीतपरिजनादावपि न विद्वेषं विदध्यात्, अपि तु बहिर्वृत्त्यैवेति।

ताराचन्द्रनरेन्द्रकथा पुनरेवम्—

अत्थि पुरी सावत्थी, नेवत्थि इहं पुरी मम सरिच्छा। जिणगिहठियधयचलणच्छलेण इय कहइ जा निच्चं ॥१॥
तत्थ य पणमिरनरवरसिररयणपहापहासिकमकमलो। आइवराहो नामेण, पत्थिवो अत्थि सुपसिद्धो ॥२॥
ताराचन्दो तस्सासि, नन्दणो नन्दणो गुणतरूणं। वररायलक्खणधरो रूवेणं विजियरइनाहो ॥३॥
सो बालकालओवि हु, पव्वज्जागहणबद्धपरिणामो। हयगयधणसयणाइसु, चिट्ठइ पडिबन्धपडिमुक्को ॥४॥
न कुणइ जलाइकेलिं, न य दूसइ कंपि फरुसभासाए। न हसइ न चेव विलसइ, न य वाहइ पवरकरितुरगे ॥५॥
सहपंसुकीलिएहिवि, मित्तेहिं समं रमेइ न कयावि। मल्लालंकारविलेवणाइ ववहारओ कुणइ ॥६॥
अइसयविसयविरत्तं कयावि कुमरं निएवि नरनाहो। तम्मणवामोहकए जुवरायपए तयं ठवइ ॥७॥
नियपुत्तरज्जविग्घं, चिन्तन्तीए सवत्तिजणणीए। हणणत्थं तस्स रहे, भक्खजुयं कम्मणं दिन्नं ॥८॥
तो तस्स जायमङ्गं, विहुरमसारं दुगुंछणिज्जं च। तयणु घणसोगभरिओ, कुमरो इय चिन्तए चित्ते ॥९॥
रोगभरविहुरियाणं, अधणाणं सयणपरिभवहयाणं। जुज्जइ मरणं देसंतरे व गमणं सुपुरिसाणं ॥१०॥
ता मह खणंपि न खमं, विणट्ठदेहस्स निवसिउं इत्थ। निच्चं दुज्जणकरअंगुलीहिं दंसिज्जमाणस्स ॥११॥
इय चिन्तिऊण सणियं, अवगणिउं परियणं स रयणीए। नीहरिउं गेहाओ, पुव्वदिसाभिमुहमह चलिओ ॥१२॥
मंदु व्व मन्दमन्दं, सो गच्छन्तो कमेण विमणमणो। संमेयगिरिसमीवे, पत्तो एगम्मि नयरम्मि ॥१३॥
गयणग्गलग्गअइचंगसिंगपब्भाररुद्धदिसिपसरं। तत्तो सम्मेयगिरिं सणियं सणियं स आरूढो ॥२४॥

विहियकरचरणसुद्धी, सरसीओ गहिय सरससरसिरुहे । अजियाइजिणिन्दे पूइऊण भत्तीइ इय थुणइ ॥१५॥

जय अजियनाह ! अइसयसणाह ! जय सम्भव ! समियभवग्गिदाह ! ।
अभिनन्दण ! नन्दियभवियनियर ! मह सुमइं सुमइजिणेस ! वियर ॥१६॥
जय पहुपउमप्पह ! अरुणकन्ति जय देव ! सुपास ! पयासकित्ति ! ।
चन्दप्पह ! चन्दसुकन्तदन्त ! देवाहिदेव ! जय पुप्फदन्त ! ॥१७॥
जय सीयल ! सीलियसुद्धचरण ! सिज्जंस ! सुरासुरपणयचरण ! ।
जय विमल ! विहियवच्छरियदाण ! जय देव ! अणंत ! अणंतनाण ! ॥१८॥
जय धम्म ! पयासियसुद्धधम्म ! सिरिसन्ति ! विहियजयसंतिकम्म ! ।
जय कुन्थु ! पमन्थियमोहमल्ल ! अरनाह ! पणासियसयलसल्ल ! ॥१९॥
जय मल्लि ! मलियरागारिवार ! मुणिसुव्वय ! सुव्वयधरणसार ! ।
जय जय नमि ! नमियसुरिन्दवग्ग ! सिरिपास ! पयासियमुक्खमग्ग ! ॥२०॥

तत्र तारा-
चन्द्रनरेन्द्र-
कथा ।

इय थुणिय जिणेसर नमिरसुरेसर भत्तिब्भरनिब्भरमणिण । तुट्ठउ निवनन्दणु बहुपुलइयतणु जा पिच्छइ दसदिसि खणिण ॥२१॥
ता ससहरकरसुन्दरपसरन्तमहन्तकन्तिदिप्पन्तं । ईसिं ओणमियतणुं चरणभरेणं व अक्कन्तं ॥२२॥
हिट्ठा मुहलम्बियसुप्पलम्बकरनहमऊहरज्जूहिं । नरयावडनिवडियजंतुजायमागरिसयन्तं व ॥२३॥

कणयाचलनिच्चलचलणअंगुलीविमलपहनहमिसेण । फुडु पयडन्तंपि व खन्तिपमुहदसविहसमणधम्मं ॥२४॥
गिरिकन्दरगयमुस्सग्गसंठियं सो निएवि मुणिमेगं । परमप्पमोयकलिओ, पत्तो मुणिवरसमीवम्मि ॥२५॥
तो लद्धिनीरनिहिणो, जियसुरतरुकामधेणुमाहप्पं । मुणिणो से पयजुयलं, सिरसा तुट्ठो परामुसइ ॥२६॥
अह मुणिमाहप्पेणं, तक्कालं चिय पणट्ठचिररोगो । ताराचन्दो जाओ, अब्भहियसुरूवरूवधरो ॥२७॥
तं मुणिणो माहप्पं, जा चिट्ठइ दट्ठु विम्हिओ कुमरो । ता विज्जाहरजुयलं, गयणयलाओ समोयरियं ॥२८॥
हरिसवसवियसियच्छं, पणमिय चलणुप्पलं च से मुणिणो । अगणियगुणगणममलं, थोउ निसन्नं महीवीढे ॥२९॥
कुमरेण तओ भणियं, कत्तो तुम्हाण इह समागमणं । केण य कज्जेण तओ, वुत्तं विज्जाहरेण इमं ॥३०॥
वेयड्ढगिरिवराओ, मुणिमेयं नन्तु वयमिहं पत्ता । कुमरेणुत्तं को एस, मुणिवरो आह इय खयरो ॥३१॥
आसी इह वेयड्ढे, राया वरखयरविसरनमियकमो । घणवाहणु त्ति नामेण नामियासेसरिउचक्को ॥३२॥
अन्नदिणे जम्मणमरणरोगरणरणयभीमभवभीओ । सुचिरप्परूढदढमोहवल्लिमुल्लूरिय खणेण ॥३३॥
जरचीवरं व चइउं, रज्जं सज्जो गहेवि पव्वज्जं । अणवरयमासखवणे, करेइ सो एस मुणिवसहो ॥३४॥
इय पभणिय ते खयरा, मुणिं च नमिउं गया सठाणम्मि । हरिसियहियओ कुमरो, भत्तीए इय मुणिं थुणइ ॥३५॥
जय जय मुणिन्द ! खयरिन्दविन्दवन्दियपयारविन्दजुग ! । भवदुहहुयवहसंतत्तसत्तपीऊसवरिससम ! ॥३६॥
निज्जियतिहुयणजगमयणसुहडभडवायभंजणपवीर ! । अइउग्गरोगभरसप्पदप्पनिद्दलणवरगरुड ! ॥३७॥

एवं थुणिय मुणिन्दं, जा किंचिवि विन्नविस्सए कुमरो । ता उस्सग्गं पारेवि, मुणिवरो गयणमुप्पइओ ॥३८॥
तो विम्हइओ कुमरो, नमिय जिणे गिरिवराउ ओयरिओ । गच्छन्तो य कमेणं, रयणउरं नयरमणुपत्तो ॥३९॥
तत्थ य चिरकालपरूढगाढपणएण बालमित्तेण । कुरुचन्देण स दिट्ठो, झडित्ति तह पच्चभिन्नाओ ॥४०॥
आलिंगिऊण गाढं, ससम्भमं पुच्छिओ इमो तेण । अच्छरियमिणं कत्तो, वयंस ! तुह इत्थ आगमणं ? ॥४१॥
कत्थ व इत्तियकालं, सावत्थीओवि णिक्खमित्ताणं । भमिओ सि कह व संपइ पुणन्नवङ्गो तुमं जाओ ? ॥४२॥
ताराचन्देण तओ, सावत्थीनिग्गमाउ आरब्भ । तप्पुरओ परिकहिओ, सव्वोवि हु निययवुत्तंतो ॥४३॥
कुमरेणवि तो पुट्ठं, कहेसु कुरुचन्द ! मित्त ! नियवत्तं । किं इत्थ तुहागमणं, गमणं च पुणो कहिं होही ? ॥४४॥
कह वा ताओ निवसइ, अवि कुसलं सयलरायचक्कस्स ? । सा सावत्थी सुत्था, सगामपुरजणवया धणियं ? ॥४५॥
कुरुचन्देणं भणियं, रायाएसेण इत्थ रयणपुरे । अहमागओ म्हि सम्पइ, सावत्थीए गमिस्सामि ॥४६॥
कुसलं च रायचक्कस्स तह य नयरीइ जणवयजुयाए । तुह दुसहविरहदुहियं, इक्कं मुत्तुं नवरि निवइं ॥४७॥
जप्पभिइ तं न दिट्ठो, तप्पभिइ निवेण पेसिया पुरिसा । तुज्झ पउत्तिनिमित्तं, सव्वत्थ न चेव तं लद्धो ॥४८॥
तो रयणपुरागमणं, जायं मे बहुफलं महाभाग ! । जं लद्धो तुममिण्हिं, पुण्णेहि अतक्कियागमणो ॥४९॥
तो पसिय लहुं नरवरनन्दण ! नियदंसणामयरसेण । निव्वावसु पिउहिययं, दुस्सहचिरविरहदवतवियं ॥५०॥
इय सप्पणयं मित्तेण, पत्थिओ निवसुओ समं तेण । पिउकारियद्दसोहं, सावत्थिं नयरिमणुपत्तो ॥५१॥

पणओ य जणयचलणे, समयम्मि निवेण पुच्छिओ कुमरो। मूला आरब्भ नियं, वुत्तंतं जाव साहेइ ॥५२॥
ता विजयसेणसूरी, समोसढो तत्थ भूरिपरिवारो। तव्वन्दणपडियाए, कुमारजुत्तो निवो पत्तो ॥५३॥
नमिय मुणिन्दं उचियट्ठाणासीणे निवम्मि कहइ गुरू। मंथिज्जमाणजलनिहिउद्दामसरेण धम्मकहं ॥५४॥
इह जरजम्मणसलिलं, बहुमच्छरमच्छकच्छभाइण्णं। उल्लसिरकोववडवाहुयवहजालोलिदुप्पिच्छं ॥५५॥
माणगिरिदुग्गमतरं मायावल्लीवियाणअइगुविलं। अक्खोहलोहपायालपरिगयं मोहआवत्तं ॥५६॥
अण्णाणपवणपिल्लियसंजोगविओगरंगरंगिरतरङ्गं। जइ भवजलनिहिमेयं तरिउं इच्छेह भवियजणा! ॥५७॥
ता सद्दंसणदढगाढबन्धणं सुद्धभावगुरुफलहं। उद्धुरसंवरसंरुद्धसयलछिद्दं अइअणग्घं ॥५८॥
वेरग्गमग्गलग्गं दुत्तवतवपवणजणियगुरुवेगं। सन्नाणकण्णधारं, सरेह चारित्तवरपोयं ॥५९॥
इय सुणिय निवो निरवज्जचरणगहणुज्जुओ भणइ सूरिं। काऊण रज्जसुत्थं पहु! तुह पासे गहेमि वयं ॥६०॥
मा पडिबन्धं खणमवि, काही नरनाह! इय मुणिन्देण। वुत्तम्मि महीनाहो, पमुइयहियओ गओ सगिहं ॥६१॥
नीसेसमन्तिसामन्तमंडलं, पुच्छिऊण सच्छमई। ताराचन्दकुमारं, रज्जे अहिसिंचिही जाव ॥६२॥
तो विणओणयतणुणा, कयअंजलिणा पयंपियं तेण। वयगहणाणुन्नाए ताय! पसायं कुण ममावि ॥६३॥
जं संसारसमुद्दो, रुद्दो उद्दामदुक्खकल्लोलो। न विणा चरणतरंडं, तीरइ तरिउं अइदुरंतो ॥६४॥
तो रण्णा पडिभणियं, जुत्तमिणं वच्छ! नायतत्ताण। किं तु कमागयमेयं, रज्जं पालेसु कइवि दिणे ॥६५॥

नयविक्कमसंजुत्ते, पुत्ते पच्छा ठवित्तु रज्जभरं । कल्लाणवल्लिजलकुल्लतुल्लं दिक्खं गहिज्ज तुमं ॥६६॥
इय भणिय बलावि इमं, राया रज्जे ठवित्तु गिण्हेउं । सिरिविजयसेणपासे, दिक्खं वेमाणिएसु गओ ॥६७॥
अह ताराचन्दनिवो, निच्चं वयगहणसुद्धपरिणामो । पइसमयमुत्तरुत्तरमणोरहसए विचिंतन्तो ॥६७॥
कारंतो जिणभवणे, सयावि जिणपवयणं पभावन्तो । अणुकम्पादाणाइसु, जहाविहाणेण वट्टन्तो ॥६९॥
नियगिहसमीवकारियपोसहसालाइ पोसहुज्जुत्तो । सच्चरिएसु पयट्टं अणुमोयन्तो य धम्मियणं ॥७०॥
बहुनयपमाणगमभंगसंगयं गुरुविचारभारसहं । निसुणंतो पुव्वावरअविरुद्धं सारसिद्धन्तं ॥७१॥
रज्जधरअभावाओ, रज्जमणाहं विमुत्तुमचयन्तो । अप्पजले मीणो इव, दुहेण गेहंमि निवसन्तो ॥७२॥
बाहिरवित्तीय च्चिय चिंतन्तो रज्जरट्ठवावारं । कालेण मरिउ जाओ, अच्चुयकप्पे पवरदेवो ॥७३॥
तत्तो चविय विदेहे, निवपुत्तो होउ गहिय सामण्णं । सव्वत्थवि होऊणं, अरत्तदुट्ठो सिवं गमिही ॥७४॥
इति ज्ञात्वा ताराधिपतिरुचिरोचिष्णुयशसो, मुदा ताराचन्द्रक्षितिपतिलकस्यास्य चरितम् ।
अरक्तद्विष्टास्तत्स्वजनधनगेहप्रभृतिषु, स्फुटं धत्त स्वान्तं शिवसुखकरे शुद्धचरणे ॥७५॥

## ॥ इति ताराचन्द्रकथा ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेष्वरक्तद्विष्ट इति त्रयोदशो भेदः, सम्प्रति मध्यस्थ इति चतुर्दशं भेदं व्याख्यातुकाम आह—

**उवसमसारवियारो, बाहिज्जइ नेव रागदोसेहिं । मज्झत्थो हियकामी, असग्गहं सव्वहा चयइ ॥७३॥**



तत्र प्रदेशि-
राजकथा।

उपशमः—कषायानुदयस्तत्सारं—तत्प्रधानं विचारयति धर्मादिस्वरूपं यः स उपशमसारविचारो भावश्रावको भवति। कथं पुनरेवंविधः स्यादित्याह—यतो विचारं कुर्वन् 'बाध्यते'—अभिभूयते नैव रागद्वेषाभ्याम्। तथाहि—मयायं पक्षः कक्षीकृतो बहुलोकसमक्षम्, बहुभिश्च लोकैः प्रमाणीकृतस्तत् कथमिदानीमात्मप्रमाणीकृतमप्रमाणीकरोमीत्यादिभावनया स्वपक्षानुरागेण न जीयते, तथा ममैष प्रत्यनीको मदीयपक्षदूषकत्वात्, तदेनं बहुजनमध्ये धर्षयामीति सदसद्दूषणोद्घटनाक्रोशदानादिप्रवृत्तिहेतुना द्वेषेणापि नाभिभूयते, किन्तु 'मध्यस्थः' सर्वत्र तुल्यचित्तो 'हितकामी' स्वस्य परस्य चोपकारमिच्छन् 'असद्ग्रहम्'—अशोभनाभिनिवेशं सर्वथा 'त्यजति' मुञ्चति मध्यस्थगीतार्थगुरुवचनेन, मदेशिमहाराजवत्।

तच्चरितं पुनरेवम्—

यत्रारामा रामाः, सच्छायाः सुवयसो वरारोहाः। आकाराद् भिद्यन्ते, आमलकल्पा पुरी साऽस्ति ॥१॥

तत्र पवित्रचरित्रः, संशयशतशैलभृङ्गभङ्गविधौ। अतिकठिनकुलिशकल्पः, श्रीवीरजिनोऽन्यदाऽयासीत् ॥२॥

विधिवद्विदधे विबुधैर्वप्रत्रयसुन्दरं समवसरणम्। भावारिवारविधुरितजगत्त्रयत्राणदुर्गमिव ॥३॥

अथ हरिहरिता स्वामी, प्रविश्य तीर्थाय नम इति प्रभणन्। सिंहासने निषद्य च विदधे वरदेशनामेवम् ॥४॥

उग्रसमीरसमीरितकुशाग्रजलबिन्दुचपलतरमायुः। गिरिवाहिवाहिनीनीरपूरसदृशाः स्वजनयोगाः ॥५॥

सन्ध्याभ्ररागविभ्रमविडम्बिनी तरुणताऽपि तनुभाजाम्। मत्तकरिकलभकर्णास्थिररूपो विभवसम्भारः ॥६॥

एवं वस्तुसमूहं, सर्वं क्षणिकं विभाव्य भव्यजनाः!। अक्षणिकसुखविधायिनि, धर्मे यत्नं सदा कुरुत ॥७॥

अत्रान्तरे विमानप्रभाभिराशाः प्रकाशयन् रविवत् । आगत्य कोऽपि देवो, धर्मकथान्ते बभाणेदम् ॥८॥
स्वामिन्नविकलकेवलसुवेदसा कलयताऽखिलं यूयम् । गौतममुख्यमुनीनां नाट्यविधिं दर्शयामि पुनः ॥९॥
द्रव्यस्तवमिति कृत्वा, मुनीश्वरो मौनमभजदथ देवः । अप्रतिषिद्धं ह्यनुमतमिति विधिना नाटकमकार्षीत् ॥१०॥
पुनरपि नमन् स एवं, जगदे जगदेकतायिना यद् भोः ! । कृत्यं जीतमिदं तव, सोऽगादथ निजदिवं मुदितः ॥११॥
अथ गौतमगणराजो, जिनवरमानम्य पृष्टवानेवम् । कोऽयं सुरः किमु पुरा, कृतसुकृतं स्वाम्यथोवाच ॥१२॥
आद्यदिवि वरविमाने, सूर्याभोऽयं सुरो हि सूर्याभः । पूर्वभवे त्विदममलं सुकृतं कृतिना कृतमनेन ॥१३॥

तथा हि—

श्रीपरिकलिता रामाभिनन्दिनी विष्णुमूर्त्तिवदिहास्ति । श्वेतविका नामपुरी, गदान्विता नैव सा किन्तु ॥१४॥
तत्राख्यया प्रदेशी, प्रवासं देशी विपक्षवर्गस्य । चार्वाकसमयचातुर्यकलितचित्तोऽभवत् भूपः ॥१५॥
लावण्यरूपकान्ता, सत्कान्ता तस्य सूर्यकान्ताख्या । निजतेजोजितसूर्यः, सुतः पुनः सूर्यकान्तोऽभूत् ॥१६॥
निजमतिजितगीःपतिमतिविभवः सचिवस्तु चित्रनामाभूत् । यो राजमानसे राजहंस इव वासमाप सदा ॥१७॥
सोऽन्येद्युरर्पयित्वा, प्राभृतिकं प्रैषि राजकार्येण । क्षितिपतिना श्रावस्तीपुर्यां जितशत्रुनृपपार्श्वे ॥१८॥
तत्र च सोपि समस्तं, ढौकनमाढौक्य राजकार्यं तत् । शीघ्रमसाधयदखिलं, यच्छीघ्रविधायिनः सुधियः ॥१९॥
तत्रोद्याने चित्रः पार्श्वजिनान्वयिनमुज्ज्वलचरित्रम् । परिपूर्णपूर्वसहितं ज्ञानैश्च चतुर्भिरपि कलितम् ॥२०॥



तत्र प्रदेशि-
राजकथा।

पञ्चाचारविचारप्रपञ्चपञ्चास्यकाननसमानम् । दुर्मथमन्मथमथनं, शिवपथरथममलगुणयुक्तम् ॥२१॥
यतिततियुतं कुमारश्रमणं केशीति संज्ञया प्रथितम् । सूरिं ददर्श नत्वा च, तमिति सद्धर्ममश्रौषीत् ॥२२॥
निदर्शनैश्चोल्लकपाशकाद्यैर्दुष्प्रापमासाद्य मनुष्यजन्म । तद्धर्ममेवाखिलसौख्यहेतुं, भो भव्यलोकाः ! कुरुतादरेण ॥२३॥
इत्याकर्ण्य सकर्णः, सचिवः श्रीकेशिसूरिचरणान्ते । सम्यक्त्वमूलमनघं श्रावकधर्मं प्रपन्नोऽथ ॥२४॥
अभणच्चैवं पूज्या ! आयात श्वेतवीं विहारेण । यदि तत्र तत्रभवतां, भवतां सद्देशनां श्रुत्वा ॥२५॥
कथमपि विभुरस्माकं, प्रदेशिराजः प्रपद्यते धर्मम् । तच्छोभनं भवेदथ, केशिगणेशो बभाणेदम् ॥२६॥
स हि चण्डो निष्करुणो, निर्द्धर्मा पापकर्मकृतचित्तः । इहलोकप्रतिबद्धः, परलोकपराङ्मुखः क्रूरः ॥२६॥
तत्कथमस्य विबोधो, भविता धीसख ! धिया विभावय भोः ! । भूयः सोऽपि बभाषे, किमनेन मुनीश ! युष्माकम् ? ॥२८॥
तत्रान्येऽपि वसन्ति, श्रेष्ठीश्वरतलवरादयो बहवः । ये वसतिपीठफलकप्रमुखं ददते सुसाधूनाम् ॥२९॥
सत्कारं सन्मानं च, ये सदा विदधते ह्यतस्तेषाम् । क्रियतामनुग्रहो गुरुरथाह विज्ञास्यते मन्त्रिन् ! ॥३०॥
अन्येद्युरथो केशी, दिनमणिरिव भव्यकमलवरबोधम् । विदधानः सम्प्राप, श्वेतविकां नाम वरनगरीम् ॥३१॥
इह केशिगणभृदागादेवं वर्द्धापितो नियुक्तनरैः । चित्रस्तुतोष बाढं, लब्धनिधी रोरपुरुष इव ॥३२॥
तत्र स्थितोऽपि चित्रः, सूरिं नत्वेति दध्यकौ चित्ते । अस्माकमयं भूपो बहुपापः प्रबलमिथ्यात्वः ॥३३॥
यदि मय्यपि सचिवेऽयं नरकं यास्यति हहा ! मम मतेस्तत् । किं कौशलमत एनं, नयामि कथमपि गुरोः पार्श्वम् ॥३४॥

ध्यात्वेति तेन नरपतिरुद्याने वाहवाहनाव्याजात् । निन्ये सोऽथ सुदुर्दमतुरङ्गघनदमनतः श्रान्तः ॥३५॥
तत्र प्रदेश आस्यत, नृपः प्रदेशी स तेन विश्रान्त्यै । यत्र गुरुर्गुरुसदसि व्याकुर्वाणोऽस्ति जिनधर्मम् ॥३६॥

दृष्ट्वाथ सूरिं नृप आह चित्रं, मुण्डोऽयमुच्चैः किमु रारटीति ? ।
सोऽप्याह जाने न विभोऽन्तिके चेद्, गत्वा निशम्येत किमु प्रणश्येत् ? ॥३७॥
आगादथो नरपतिः सुगुरोः समीपे, तद्बोधबन्धुरमतिर्गुरुरप्युवाच ।
मुक्त्वा प्रमादमखिलं परमार्थशत्रुं, धर्मं जना ! विदधतां परमार्थपथ्यम् ॥३८॥
ऊचे ततः क्षितपतिर्भवतो वचो मे, नो चेतसः प्रचुरसंमदमादधाति ।
यद्भूमिनीरहुतभुक्पवनातिरिक्तो, जीवः समस्ति न परः परलोकयायी ॥३९॥

तथा हि—

जीवो नास्ति समक्षादर्शनतः खरविषाणमिव नूनम् । यत्तु न तथा पुनस्तत् भूतचतुष्टयमिवात्रास्ति ॥४०॥
गुरुराह भद्र ! किमयं, जीवस्त्वद्विशददर्शनाग्राह्यः । उत सर्वेषां तत्र च नाद्यविकल्पः सुकल्पः स्यात् ॥४१॥
एवं हि देशकालस्वभावसूक्ष्मादिविप्रकृष्टानाम् । भूभूधरादिकानां भवत्यभावस्त्वदग्रहणात् ॥४२॥
नापि द्वितीयपक्षो, जीवक्षेपाय दक्षतां धत्ते । सर्वजनसमक्षाणां तत्रासमक्षत्वतो राजन् ! ॥४३॥
किञ्चेदं चैतन्यं किं भूतानां स्वभाव उत कार्यम् ? । तावन्नहि स्वभावो, ह्यचेतनत्वात् स्वयं तेषाम् ॥४४॥

नो कार्यमपि च तत्स्यादसमुदितानां हि समुदितानां वा । आद्यभिदि पृथक् तेषां, चिदनधिगतिरेव दोषः स्यात् ॥४५॥
पिष्टादिभ्यो मद इव, भूतेभ्यः समुदयं गतेभ्योऽथ । चैतन्यं भवतीति, द्वितीयपक्षोऽपि न हि दक्षः ॥४६॥
यद्येषु पृथग् न भवति, न तेषु तत्समुदितेष्वपि हि युक्तम् । सिकताकणे ह्यदृष्टं, तैलं किं भवति ननु बहुषु ? ॥४७॥
पिष्टादिभ्यो मद इव, इत्यत्र तु मात्रयास्ति मदशक्तिः । न हि सर्वथाऽसतः खरशृङ्गस्येवेक्षितोत्पत्तिः ॥४८॥

अपि च—

स्पृष्टं श्रुतमाघ्रातं, भुक्तं स्मृतमीक्षितं किल मयेति । कथमेककर्तृकाः खलु, भावा भूतात्मवादे स्युः ? ॥४९॥
परलोकयायिजीवाभावे कस्यास्ति कर्मसम्बन्धः ? । तदभावे भावानामियं कथं चित्रता युक्ता ? ॥५०॥

क्ष्माभृद्रङ्कयोर्मनीषिजडयोः सद्रूपनीरूपयोः, श्रीमद्दुर्गतयोर्बलाबलवतोर्नीरोगरोगार्त्तयोः ।

सौभाग्यासुभगत्वसङ्गमजुषोस्तुल्येऽपि नृत्वेऽन्तरं, यत्तत्कर्मनिबन्धनं तदपि नो जीवं विना युक्तिमत् ॥५१॥

तस्मात् क्षितिप ! स्वतनावहं सुखीत्यादिसंविदा ग्राह्यः । कर्त्ता भोक्ता जीवः, परलोकगमी भवति सिद्धः ॥५२॥
निजदेह इव विशिष्टां चेष्टामुपलब्धिपूर्विकां वीक्ष्य । परदेहेऽप्यनुमेया तत्सिद्धिर्धीधनैः स्वधिया ॥५३॥
अथ गदति स्म नरेन्द्रो, यद्यस्ति परत्र गामुको जीवः । तर्हि ममासीज्जनकः, प्राणिवधप्रमुखपापरतः ॥५४॥
युष्मन्मतेन सोऽगान्नरकं तत्किमिति मामिहेत्यैषः । न हि बोधयति यथाऽघं मा विधा दुःखदं वत्स ! ॥५५॥
तत्कथममुत्रयायी, युक्तिघटाकोटिमटति जीवोऽत्र । प्रतिभाप्रगल्भताजितदेवगुरुर्गुरुरथ प्रोचे ॥५६॥

कस्मिन् महापराधे, क्षिप्तो गुप्तौ यथा नरः कश्चित् । न हि वीक्षितुमपि लभते, निजकान् यामिकनरेभ्योऽत्र ॥५७॥
तद्वद्दारुणनिजकर्मशृङ्खलानिगडितो हि नैरयिकः । आगन्तुं न हि लभते, परमाधार्मिकसुरेभ्योऽत्र ॥५८॥
भूयो बभाण भूपो, मम माता वत्सला मयि सदाऽभूत् । सामायिकपौषधमुख्यधर्मकर्मणि विहितचित्ता ॥५९॥
भवदाकूतेन दिवं, साऽगात्तत्कथमिहेत्य मम पुरतः । न वदति वत्स ! यथा कुरु, धर्ममिहामुत्र सौख्यकरम् ॥६०॥
तस्मात् सङ्गतिमङ्गति, जीवस्यामुत्रयायिता हि कथम् ? । पीयूषपोषसमया गिराऽगृणादेवमथ सूरिः ॥६१॥
असमर्थितकर्त्तव्या दिव्यप्रेमानुगा विषयसक्ताः । अनधीनमनुजकार्या अशुभत्वान्मर्त्यलोकस्य ॥६२॥
जिनजन्मादिककल्याणकानि सुमुनेस्तपोनुभावं च । समवसरणकादि विना नायान्ति सुरा इह प्रायः ॥६३॥ युग्मम् ।
पुनरपि नृप आचख्यौ, मयान्यदैको मलिम्लुचश्चक्रे । अतिसूक्ष्मतरान् खण्डान्, कोऽप्यात्मा तत्र नैक्षि परम् ॥६४॥
तद्भूतव्यतिरिक्तः, कथमात्मा मम चकास्तु चित्तेऽत्र ? । अथ षट्तर्कसुकर्कशविचारचतुरो गुरुरवोचत् ॥६५॥
अग्न्यर्थी कोऽपि नरो, विकटाटव्यामटाट्यमानः सन् । प्राप्य महदरणिकाष्ठं मन्दमतिः खण्डशश्चक्रे ॥६६॥
न च तत्र वह्निकणमपि, सोऽपश्यदथो महामतिः कश्चित् । पुरुषः शरेण सद्यः, प्रमथ्य तं पातयाञ्चक्रे ॥६७॥
यदि मूर्त्तस्यापि सतोऽपि हुतभुजस्तत्र भवति न ग्रहणम् । तज्जीवस्यामूर्त्तस्य, को हि दोषस्त्वनुपलम्भे ? ॥६८॥
भूयो भूयोऽभिदधे, जीवन्नेवैकको मया चौरः । अयसो मञ्जूषायां क्षिप्तः साऽसारि मदनेन ॥६९॥
उद्घाटिता च पुनरपि, तद्देहः प्रैक्षि कृमिकमय एव । रन्ध्राभावे तस्या, निरगादात्मा कथं तस्य ? ॥७०॥

तत्र प्रदेशि-
राजकथा ।

अन्तश्च भूरयस्ते, कृमिजीवाः प्रविविशुः कथं तस्याः ?। कथममुरुविचारभारं, तदमुत्रगमी सहेतात्मा ? ॥७१॥
अथ जगदेऽसौ गुरुणा, करुणासम्भारनीरनीरधिना। इह कस्मिंश्चिन्नगरे, सुशाङ्खिकः कोऽपि वसतिस्म ॥७२॥
तस्यास्त्येवं लब्धिर्यत् शङ्खं धमति गोचरगतोऽपि। तदपि च कर्णप्रान्ते, वाद्यत इति मन्यते लोकः ॥७३॥
तत्रत्य नृपोऽन्येद्युर्वर्चोगेहे व्रजन्निशम्य रवम्। शङ्खस्य तस्य शङ्काकुलचित्तोऽलभत न हि विष्टाम् ॥७४॥
अथ राज्ञाऽपि स हन्तुं, तेनोचे नाथ ! लब्धिरेषा मे। यद् दूरगोऽपि शब्दः श्रुतिमूल इवेति बुद्धिः स्यात् ॥७५॥
कथमेतदिति परीक्षानिमित्तमवनीधवेन सोऽक्षेपि। अयसः कुम्भ्यां साऽसारि सर्वतो मदनपिण्डेन ॥७६॥
सोऽवादयदथ शङ्खं, तद्ध्वनिना बधिरिता सभा सकला। अन्वैक्षि तत्र विवरादिकं च न पुनः किमप्यैक्षि ॥७७॥

तथा—

आयसपिण्डस्यान्तर्विवराभावे विशन्ति कथमुच्चैः। वह्निकणा येन स्यादयं ज्वलज्ज्वलनपिण्डाभः ॥७८॥
इति निर्गमप्रवेशे, यदि मूर्त्तस्यापि भवति न विघातः। तज्जीवस्यामूर्त्तस्य, को हि तत्सम्भवे दोषः ? ॥७९॥
भूयो जजल्प भूपोऽतोल्यत जीवन्मयैककश्चौरः। पञ्चत्वगतोऽपि परं, तौल्याधिक्यं मया नैक्षि ॥८०॥
कोऽप्यात्मा यदि तु भवेत्तौल्याधिक्यं तदोपलभ्येत। तस्मादमुत्रयायी, संशीतिगतोऽधुनाप्यात्मा ॥८१॥
अथ संशयशतगुरुशाखिशातनानिशितपर्शुराह गुरुः। दृतिमत्र कोऽपि गोपः, सकौतुकोऽपूरयन्मरुता ॥८२॥
तमतोलयदथ रिक्तीकृत्यातोलयदतीव कौतुकिकः। न च तत्र किमपि तौल्याधिकत्वमुपलब्धवानेषः ॥८३॥

चेत् स्पर्शनमेयत्वान्मूर्त्तेऽप्यनिले समस्ति न विशेषः । तोल्ये तदमूर्त्तस्यात्मनो हि कथमस्तु स विशेषः ? ॥८४॥
अत्रान्तरे प्रबुद्धो, नृपतिः सम्मोदमेदुरमनस्कः । भक्तिभरनिर्भराङ्गः, कृताञ्जलिः प्रोचिवानेवम् ॥८५॥
भगवन् ! मोहपिशाचो, मम नष्टः पूज्यवचनवरमन्त्रैः । नवरं नास्तिकवादं, क्रमागतं वर्जयामि कथम् ? ॥८६॥
केशी जगाद नैतत्, किञ्चिन्नरनाथ ! सति विवेके हि । व्याधिर्दारिद्र्यं वा, क्रमागतं मुच्यते न किमु ? ॥८७॥

तथा—

हेयोपादेयविचारचातुरीकलितचित्त ! धरणीश ! । अत्रार्थे दृष्टान्तः, स्पष्टं श्रृणु सावधानमनाः ॥८८॥
इह कोऽपि पुरा वणिजो, विदेशमगमन् धनार्जननिमित्तम् । तत्रायसः खनौ बहु, तदतिसमर्घं समाददिरे ॥८९॥
सार्थवशात्ते चाग्रे यान्तस्त्रपुभूमिमाप्य तत्रायः । त्यक्त्वैके बुद्धिधनास्तदयोमूल्येन लान्ति स्म ॥९०॥
अपरे त्वेतदयः स्वयमङ्गीकृतमुज्झ्यते कथङ्कारम् । इति तदविहाय जगृहुर्न बालिशा बङ्गमङ्ग हहा ॥९१॥
एवं रजतं कनकं, तत्तत्खनौ यथोत्तरं सुधियः । लान्ति स्म पूर्वपण्यं, त्यक्त्वा न पुनर्जडा इतरे ॥९२॥



अथ कथमपि रत्नाकरमासेदुस्तत्र केचन पुमांसः । मार्गानुसारिमतयो, हेयोपादेयविधिविदुराः ॥९३॥
त्यक्त्वा सुवर्णमप्यथ, बहुगुणयुक्तानि निर्मलानि तथा । रत्नानि समाददिरे, त्रासादिकदोषविकलानि ॥९४॥
अपरे तु भण्यमाना, अपि सार्थजनैर्मणिग्रहणविषये । कदभिनिवेशावेशात् पूर्वगृहीता य उज्झित्वा ॥९५॥
जगृहुर्न हि रत्नानि, द्वयेपि चाजग्मुरथ निजे देशे । तत्रादिमाः सुखयशःप्रचुरश्रीभाजनं जाताः ॥९६॥

अपरे तु कदाग्रहिणः, क्रमागतायोऽपरित्यजन्तो हि । पश्चात्तापानुगताः, सञ्जाता दुःखिनो नित्यम् ॥९७॥
तद्वत्त्वमपि नरेश ! क्रमागतं नास्तिकस्य मतमेतत् । अप्रोज्झन्निह मा भूः, पश्चात्तापानुगो गाढम् ॥९८॥
एवं निशम्य विगलितमिथ्यात्वः केशिसुगुरुपदमूले । नृपतिर्गृहस्थधर्मं, सम्यक्त्वपुरस्सरं जगृहे ॥९९॥
अथ केशिगणधरो, मृदुवाण्या क्षितिपतिमवोचदिति हि यथा । पूर्वं रम्यो भूत्वा यथोचितं दानदातृत्वात् ॥१००॥
पश्चान्नरेश ! मा भूररम्यकस्तन्निषेधकरणेन । अस्माकमन्तरायात् प्रवचनखिंसेति हेतोश्च ॥१०१॥
एवमिति केशिगणधरवाक्यं प्रतिपद्य परमविनयेन । पूर्वोदितमुच्चावचभाषणमुख्यं स्वमपराधम् ॥१०२॥
क्षमयित्वा च जगाम, स्वधाम मुदितः प्रदेशिभूपोऽथ । श्रीमत्केशिगणेशोऽप्यन्यत्र विहारमाधत्त ॥१०३॥
चित्रवरमन्त्रियुक्तः, प्रदेशिभूपस्ततो निजं देशम् । जिनराजसदनराजीविराजितं कारयामास ॥१०४॥
अन्यमपि जैनधर्मे, प्रवर्त्तयामास बहुतरं लोकम् । सामायिकपौषधमुख्यधर्मकर्मणि सदा निरतः ॥१०५॥
मन्वानो विषयसुखं, विषमिव स मुमोच युवतिसम्पर्कम् । दुर्वारमारविधुरा, दध्याविति सूर्यकान्ताऽथ ॥१०६॥
भोगान् स्वयं न भजते, स्वायत्तां मां दधाति च नृपोऽयम् । तत् सत्यमिदं जज्ञे, न म्रियते त्यजति न च मञ्चम् ॥१०७॥
तद्वन्मि भूपमेनं, केनापि विषादिना ह्युपायेन । पुत्रं निवेश्य राज्ये, भोगान् भोक्ष्ये ततः स्वेच्छम् ॥१०८॥
अपरेऽह्नि पौषधस्याथ, पारणे राजवारणस्यास्य । रसवत्यां क्षिप्तवती, विषमविषं सूर्यकान्ताऽथ ॥१०९॥
तेन च नरेन्द्रदेहे, सुदुस्सहा दाहवेदना जज्ञे । जज्ञौ च सूर्यकान्ता विषमेतददादिति महीशः ॥११०॥

बुद्ध्वा स्वमरणसमयं, कृतपञ्चाणुव्रतादिकोच्चारः । इत्यन्ववशात् त्वमात्मन्! कुरु मैत्रीं सर्वसत्त्वेषु ॥१११॥
मा कार्षीः क्वापि रुषं, विशेषतो ह्युपरि सूर्यकान्तायाः । कुर्वत्येत्यनयाऽत्रोटि दुःखदः स्नेहनिगडस्ते ॥११२॥
यदवश्यवेदनीयं, नरकादिषु दुःखलक्षदं कर्म । अत्रैव क्षपयन्ती, तवेयमुपकारिणी जीव! ॥११३॥
यदि तु करिष्यस्यात्मनस्या अप्युपरि कोपमभितस्ते । नूनं भविष्यति तदा, रेखा मुख्या कृतघ्नेषु ॥११४॥
किञ्च भवेऽनन्तेऽस्मिन्ननन्तशो नारकादिषु भवेषु । रे जीव! यानि दुःखान्यतीव कटुकानि सोढानि ॥११५॥
तदपेक्षया न किञ्चिद् दुःखमिदं धीरिमाणमिति कृत्वा । सर्वं सह स्वयंकृतकर्मविपाकं सुघोरमिमम् ॥११६॥
एवं समाधिनाऽसौ ध्यायन् परमेष्ठिमन्त्रमचलमनाः । श्रीमत्केशिगुरोः सत्प्रसादमुज्ज्वलगुणांश्च तथा ॥११७॥
मृत्वा सूर्याभाख्ये, सौधर्मत्रिदिवतिलकसङ्काशे । सुविमाने सञ्जातः, सूर्याभ इति प्रवरदेवः ॥११८॥
अनुभूय सुखं विपुलं, तत्र च पल्योपमानि चत्वारि । च्युत्वा महाविदेहे च, लप्स्यते परमपदसौख्यम् ॥११९॥
एवं प्रदेशिनरपतिचरित्रमाकर्ण्य गौतमो मुदितः । अनमस्यद्भगवन्तं, प्रभुरप्यन्यत्र विजहार ॥१२०॥

दृष्टान्तं विशदं प्रदेशिनृपतेरित्येवमुच्चैरुभाकर्ण्याऽऽकर्ण्य सकर्णकर्णयुगलीपीयूषपोषप्रदम् ।
त्यक्त्वा दूरतरं कदाग्रहमहो मोहाकुलीना जना! माध्यस्थ्यं भजत प्रयत्नवशतो धर्म्ये विचारे सदा ॥१२१॥

॥ इति प्रदेशिमहाराजचरितं समाप्तम् ॥



इति प्रपञ्चितः सप्तदशसु भेदेषु मध्यस्थ इति चतुर्दशो भेदः, सम्प्रत्यसम्बद्ध इति पञ्चदशं भेदं निरूपयितुमाह—

भावंतो अणवरयं, खणभंगुरयं समत्तवत्थूणं । संबद्धोवि धणाइसु, वज्जइ पडिबंधसंबंधं ॥७४॥

'भावयन्' पर्यालोचयन् 'अनवरतम्' प्रतिक्षणं 'क्षणभङ्गुरताम्' सततविनश्वरताम् 'समस्तवस्तूनाम्' तनुधनस्वजनयौवनजीवितप्रभृतिसर्वभावानाम् 'संबद्धोऽपि' बाह्यवृत्त्या प्रतिपालनवर्द्धनादिरूपया युक्तोऽपि 'धनादिषु' धनस्वजनकरिहरिप्रभृतिषु 'वर्जयति' न करोति प्रतिबन्धो-मूर्छा तद्रूपं सम्बन्धं-संयोगम्, नरसुन्दरनरेश्वर इव । यतो भावयत्येवं भावश्रावकः—

"चिच्चा दुपयं चउपयं च खित्तं गिहं धणधन्नं च सव्वं । कम्मप्पबीओ अवसो पयाइ परं भवं सुंदर पावगं वा" ॥ इत्यादि ।

पयडियउदया बहुविहसत्ता वरकम्मगंथवित्ति व्व । नवरं बंधविमुक्का, अत्थि पुरी तामलित्तीह ॥१॥

सम्मं परिणयजिणसमयअमयरसहणियविसयविसपसरो । गिहिवाससिढिलचित्तो, राया नरसुंदरो तत्थ ॥२॥

निरुवमलवणिमरूवा, बंधुमई नाम आसि से भइणी । उज्जेणिसामिणा, सा अवंतिनाहेण परिणीया ॥३॥

सो तीए अणुरत्तो, आसत्तो मज्जपाणवसणंमि । जूयंमि अइपसत्तो, मत्तो वोलेइ बहुकालं ॥४॥

तंमि निवंमि पमत्ते, रज्जे रट्ठे य सीयमाणंमि । रज्जपहाणनरेहिं, सचिवेहि य मंतिउं सम्मं ॥५॥

पुत्तं ठवेवि रज्जे, मज्जं पाइत्तु निसि पसुत्तो सो । देवीइ समं नियमाणुसेहिं, उज्झाविओ रण्णे ॥६॥

चेलंचले य बद्धो, लेहोऽणागमणसूयगो तस्स । अह गोसे पडिबुद्धो, जा दिसिचक्कं नियइ राया ॥७॥

हरिहरिणरुद्दसद्दूलसंकुलं सव्वओत्ति ता रण्णं । तं लेहं च निरिक्खिय, सविसाओ भणइ इय दइयं ॥८॥

उ पिच्छ पिच्छ पावाण, ताण सामंतमंतिपमुहाण । तह तह उवयरियाणं, वियरियगुरुदाणमाणाणं ॥९॥

निच्चं गुरुगुरुतरबहुपसायपावियपसिद्धिरिद्धीणं । अवराहपएवि सया, सिणिद्धदिट्ठीइ दिट्ठाणं ॥१०॥
अविभिन्नरहस्साणं, संसइयत्थेसु पुच्छणिज्जाणं । नियकुलकमाणुरूवं चिट्ठियमेवंविहं सुयणु ! ॥११॥
इय विरसं जंपंतो, अविभावियदुट्ठदिव्वपरिणामो । राया बंधुमईए, सुजुत्तिजुत्तं इमं वुत्तो ॥१२॥
किं चिंतिएण सामिय ! विहलीकयसयलपुरिसयारस्स । अघडंतघडणरुइणो हयविहिणो विलसिएणिमिणा ? ॥१३॥
लहु पहु ! चयसु विसायं, गच्छामो तामलित्तिनयरीए । नरसुंदरनरनाहं, पिच्छामो तत्थ सप्पणयं ॥१४॥
रण्णा पडिवन्नमिणं, गंतु पयट्टाइं ताइं तो कमसो । पत्ताइं तामलित्तीपुरीसमीवट्ठिउज्जाणे ॥१५॥
अह बंधुमई जंपइ, इहेव चिट्ठेसु सामि ! खणमेगं । तुह आगमणं गंतूण, भाउणो जाव साहेमि ॥१६॥
कहकहवि होउ एवंति, जंपिए नरवरेण अह पत्ता । निविडपडिबंधबंधुरबंधवगेहंमि बंधुमई ॥१७॥
तत्थ य महंतसामंतविंदसेविज्जमाणपयजुयलो । पासट्ठियपणतरुणीकरचालियचामरुप्पीलो ॥१८॥



जय जीव जीव इय सेवगेहि वुच्चंतओ य पइवयणं । सिंघासणोवविट्ठो, दिट्ठो नरसुंदरो तीए ॥१९॥
तेणवि विम्हियमणसा, भगिणी अवितक्कियागया दट्ठुं । उचियपडिवत्तिपुव्वं, पुट्ठा सयलंपि वुत्तंतं ॥२०॥
तो तीइवि सो कहिओ, उज्जाणे जाव चिट्ठइ निवु त्ति । सव्विड्ढीइ तओ सो, तयभिमुहं पट्ठिओ झत्ति ॥२१॥
सो पुण अवंतिनाहो, अइगाढछुहाइ पीडिओ तइया । वालुंकिभक्खणत्थं एगंमि य चिब्भिडीकच्छे ॥२२॥
अवदारेणं चोरु व्व, पविसमाणो स कच्छगनरेण । मम्मपएसंमि हओ, मुट्ठीए तह य लट्ठीए ॥२३॥

निट्ठुरपहारविहुरो, पलायमाणो तओ इमो तुरीयं । धरणीवट्ठे पडिओ, निच्चिट्ठो कट्ठघडिउ व्व ॥२४॥
इत्तो नरसुंदरनरवरोवि नियविजयरहवरारूढो । भगिणीवइस्सभिमुहं, तंमि पएसंमि संपत्तो ॥२५॥
नवरं तरलतुरंगमनिट्ठुरखुरखणियरेणुपूरेण । उद्धुरतिमिरक्कंतं व नहयलं तक्खणे जायं ॥२६॥
तो दंसणविरहाओ, नरवररहतिक्खचक्कधाराए । तह निवडियस्स कंठो, दुहा कओऽवंतिनाहस्स ॥२७॥
अह पुवुत्तुज्जाणे, अवंतिनाहं निवो अपिच्छंतो । संभंतो भइणीए, वुत्तंतमिमं कहावेइ ॥२८॥
हा दिव्व ! दिव्व ! किमियं ति संभमुब्भंततरलतारच्छी । बंधुमई बंधुगिरं, निसामिउं आगया तत्थ ॥२९॥
तो अवलोयंतीए, पणट्ठरयणं व निउणदिट्ठीए । कहकहमवि तमवत्थं, संपत्तो तीइ सो दिट्ठो ॥३०॥
अह नाउ मयं सपइं, गुरुमुग्गरचूरियव्व सा सहसा । पडिया अतुच्छमुच्छा, निमीलियच्छी महिवीढे ॥३१॥
पासट्ठियपरियणविहियसिसिरउवयारलद्धचेयन्ना । परिमुक्कपिक्कपुक्कं, एवं विलवेइ दीणमणा ॥३२॥
हा हिययदइय ! पिययम ! गुणनिवहनिवास ! पणयकयतोस ! । केणं पाविट्ठेणं, एयमवत्थं तुमं नीओ ? ॥३३॥
हा नाह ! तायसु मह विओगवज्जासणीइ भिज्जंतं । हिययं हिययसुहावह ! कीस उविक्खेसि चिरकालं ? ॥३४॥
हयदिव्व किं न तुट्ठो, रज्जवहारेण देसचाएण । सुहिजणविओयणेण य, जमेयमवि ववसिओ पाव ! ॥३५॥
इच्चाइ विलवमाणी, वारिज्जंतीवि बंधवनिवेण । सा नियपइणा सद्धिं, पडिया जालाउले जलणे ॥३६॥
अह निव्वेओवगओ, राया नरसुंदरो विचिंतेइ । अविचिंतणीयरूवा, अहो अणिच्चा जयस्स ठिई ॥३७॥

जत्थ सुही वि हु दुहिओ, निवोवि रोरो सुमित्तमवि सत्तू । संपत्ती वि विवत्ती, निमेसमित्तेण परिणमइ ॥३८॥
कहमहुणा भइणीए चिरकालाओ समागमो जाओ । कहमिण्हिंपि विओगो धिरत्थु संसारवासस्स ॥३९॥

अवि य—

जे खलु तिहुयणजणपलयताणकरणक्खमा जिणवरिंदा । सययं अणिच्चयाए, उररीकीरंति तेवि हहा ! ॥४०॥
रणसवडंमुहउब्भडभिडंतरिउसुहडचक्कअक्कमणे । जे पहुणो तेवि खणेण चक्किणो जंति हा निहणं ॥४१॥
जे गुरुभूयबलबलभद्दसंगया दलियदक्खपडिवक्खा । तेवि हु हरिणो हरिणुव्व हरेइ हा हा कयंतहरी ॥४२॥
मन्ने करिकण्णसुरिंदचावतडिचावलेण निम्मवियं । इत्थं वत्थु समत्थं, तेणं खणदिट्ठनट्ठं त्ति ॥४३॥
एवंविहे य जं इह, खणमवि निवसंति मुणियपरमत्था । वीसत्था सगिहेसुं, अहह ! महाधिट्ठिमा तेसिं ॥४४॥
इय सो विरत्तचित्तो, संबद्धोवि हु धणाइसु कहंपि । भावेण अपडिबद्धो, गेहंमि गमेइ कइवि दिणे ॥४५॥
कालेण नंदणे रज्जभारधरणुद्धुरे ठविय रज्जं । सिरिसेणगुरुसमीवे, दिक्खं गिण्हइ महीनाहो ॥४६॥
वत्थाइसु गामाइसु समयाइसु कोहमाणमाईसु । दव्वे खित्ते काले, भावे परिमुक्कपडिबंधो ॥४७॥
काऊण अणसणं सासणं मणे जिणवराण धारंतो । देहेवि अपडिबद्धो, मरिउं बंभे सुरो जाओ ॥४८॥
तत्तो य उत्तरुत्तरसुरनरसिरिमणुहवित्तु कइवि भवे । पव्वज्जं पडिवज्जिय सो संपत्तो पयं परमं ॥४९॥
श्रुत्वेवं नरसुन्दरस्य चरितं हेतोर्गरीयस्तरात्, कस्मादप्यनलम्भविष्णुमनसो दीक्षां गृहीतुं द्रुतम् ।



तत्र नरसु-
न्दरनरेश्वर-
कथा ।

सम्बद्धा अपि गेहदेहविषयद्रव्यादिषु द्रव्यतो, भावेन प्रतिबन्धबुद्धिमसमां मैतेषु भव्याः! कृतः ॥५०॥

॥ इति नरसुन्दरकथा ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेष्वसम्बद्ध इति पञ्चदशो भेदः, सम्प्रति परार्थकामोपभोगीति षोडशभेदमभिधित्सुराह—

संसारविरत्तमणो, भोगुवभोगो न तित्तिहेउ त्ति । नाउं पराणुरोहा, पवत्तए कामभोएसु ॥७५॥

संसारोऽनेकदुःखाश्रयोऽयम् । यतः—

"दुःखं स्त्रीकुक्षिमध्ये प्रथममिह भवेद् गर्भवासे नराणां, बालत्वे चापि दुःखं मललुलिततनुः स्त्रीपयःपानमिश्रम् ।

तारुण्ये चापि दुःखं भवति विरहजं वृद्धभावोऽप्यसारः, संसारे रे मनुष्या ! वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचिद्" ॥ इति ।

तस्माद्विरक्तमनाः, अमी भोगोपभोगाः—

"सइ भुज्जइ त्ति भोगो, सो पुण आहारपुप्फमाईओ । उवभोगो य पुणो पुण, उवभुज्जइ भवणविलयाई" ॥

इत्येवमागमप्रतीतास्ते न तृप्तिहेतवो भवन्ति प्राणिनामिति 'ज्ञात्वा' अवधार्य 'परानुरोधात्' अन्यजनदाक्षिण्यादिना प्रवर्त्तते कामेषु–शब्दरूपेषु भोगेषु–गन्धरसस्पर्शेषु भावश्रावकः, पृथ्वीचन्द्रनरेन्द्रवत् ।

तच्चरितं पुनरिदम्–

अत्थिह पुरी अउज्झा, उज्झायसएहिं भूसिया सययं । नयवन्तपढमलीहो, नरनाहो तत्थ हरिसीहो ॥१॥

मयणविलासविणिज्जियपउमा पउमावई पिया तस्स । पुत्तो पुहईचन्दो, चन्दुज्जलभूरिजसपसरो ॥२॥
सो मुणिदंसणवससरियपुव्वभवविहियचारुचारित्तो । उग्गविसभोगिभोगव्व, कामभोगे चयइ दूरं ॥३॥
न कुणइ उब्भडवेसं, सिंगारगिरं न जंपइ कयावि । मित्तेहि वि नवि कीलइ, न दमइ दुद्दमकरितुरंगे ॥४॥
मायपिइभत्तिजुत्तो, मुणिपयभत्तो जिणच्चणुज्जुत्तो । परमत्थसत्थनिवहं, चिंतन्तो चिट्ठइ सयावि ॥५॥
तयणु विचिंतइ राया, कह नाम इमो नरिन्दसुयजुग्गे । भोगोवभोगमग्गे, लग्गिस्सइ मयणसमरूवो ? ॥६॥
नवजुव्वणपारम्भे, सलहिज्जइ निवसुयाण जियलोए । सिंगारहार(व)चरियं, रिउविजये उज्जमो धणियं ॥७॥
एस पुण मुणिवरो इव, सत्थविचिंतणपरो पसन्नमणो । होही गम्मो उज्झियपरक्कमो दुव्विणीयाण ॥८॥
ता जुत्तमिणं संपइ, करेमि कलत्तसंगहं एयं । सयमेव तव्वसगओ, काही सव्वंपि जं भणियं ॥९॥
ता छेओ ता माणी, ता धम्मी ताव उज्जुओ सोमो । जाव घरट्ट व्व नरो, न भामिओ दढमहेलाहिं ॥१०॥
इय चिंतिय सप्पणयं, परिणयणत्थं निवो भणइ कुमरं । जणयाणुरोहओ तं, सो पडिवज्जइ अकामो वि ॥११॥
तयणु कुमरेण समगं, महन्तसामन्तकुलपसूयाणं । अट्ठण्ह कन्नयाणं, पाणिग्गहणं करावेइ ॥१२॥
वज्जिरमंगलतूरे, वीवाहमहूसवे पयट्टंते । नच्चंतयम्मि तरुणीयणम्मि लोए पहिट्ठमणे ॥१३॥
पुहईचन्दकुमारो, निज्जियमारो विवेयगुणसारो । चिट्ठइ मज्झत्थमणो, अरत्तदुट्ठो जहा समणो ॥१४॥
चिंतइ य अहह गहणं, मोहमहारायविलसियं एयं । जेण जणोवि नडिज्जइ, अमुणियतत्तो मुहा एसो ॥१५॥

१६ परार्थ-
कामभोगी

तत्र पृथ्वी-
चन्द्रनरेन्द्र-
कथा ।

गीयं पलावपायं, देहपरिस्समकरं फुडं नट्टं । गुरुभारालंकारा, भोगुवभोगा किलेसकरा ॥१६॥
जणयाण अहो! मोहो, जं कइवयदिणकयम्मि संवासे । खिज्जंति मज्झ कज्जे, एवं अइनिविडनेहेण ॥१७॥
रंभागब्भअसारे, इह संसारे खणंपि न हु जुत्तं । रमिउं विण्णायजिणिंदसमयतत्ताण सत्ताण ॥१८॥
अइनिविडो निब्बन्धो, अम्मापियराण इत्थ वत्थुम्मि । मह विरहं खणमवि न हु, सहन्ति गुरुनेहनडिया ते ॥१९॥
पेमभरपरवसाओ, परिणीयाओ इमाउ बालाओ । मुचन्तीओ संपइ, मोहाउ हवन्ति दुहियाओ ॥२०॥
मोहा अन्नोवि जणो, निन्दइ मं पव्वयन्तमित्ताहे । तायाणुरोहओ ही, अहयं कह संकडे पडिओ ? ॥२१॥
किंपि न विणट्ठमहवा, इण्हिंपि इमाउ जइ विबोहेमि । लहुकम्मयाइ दिक्खं, कयावि सव्वाउ गिण्हन्ति ॥२२॥
जइ पव्वयामि अहयं, पियरो पडिबोहिउं जिणमयम्मि । तो सव्वेसिमिमेसिं, उवयरियं हुज्ज निच्छयओ ॥२३॥
इय चिंतिय निव्वत्तियदिणकरणिज्जो पियाहि सह कुमरो । रइगेहगओ उचियट्ठाणासीणो भणइ एवं ॥२४॥
इह भोगा विसमिव, मुहमहुरा परिणामदारुणविवागा । सिवनयरमहागोउरनिविडकवाडोवमा भोगा ॥२५॥
भोगा सुत्तिक्खबहुदुक्खलक्खदवहुयवहिंधणसमाणा । धम्मदुमउम्मूलणसमीरलहरीसमा भोगा ॥२६॥

किञ्च—

जं भुत्तमणाइभवे, जीवेणाहारभूसणाईयं । एगत्थ पुंजियं तं अहरेइ धरुद्धरं धरणिं ॥२७॥
पीयाइं जाइं सुमणोरमाइं पाणाइं पाणिणा पुव्विं । विज्जंति ताइं न हु तत्तियाइं सलिलाइं जलहीसु ॥२८॥

पुप्फाणि फलाणि तहा, दलाणि भुत्ताणि पाणिणा पुव्विं । विज्जंति न तिहुयणतरुगणेसु किर वट्टमाणेसु ॥२९॥

अवि य–

भुत्तूणं सुइसुन्दरे सुरवहूसंदोहदेहाइए, भोए सायरपल्लमाणमणहे देवत्तणे जं नरा ।
रज्जंति त्थिकलेवरेसु असुइपुण्णेसु रिट्ठोवमा, मन्ने तित्तिकरा जियाण न चिरं भुत्तावि भोगा तओ ॥३०॥

ता पडिबुज्झह बुज्झह, मा भोगपरव्वसं मणं काउं । दुत्तरअणोरभवजलनिहिंमि परिभमह दुक्खत्ता ॥३१॥
इय सोउ कुमरवयणं, ताउ पबुद्धाउ निवइधूयाओ । विसयविरत्तमणाओ, कयंजलीओ भणन्ति इमं ॥३२॥
सामिय ! अवितहमेयं, जं तुमए जंपियं परं कहसु । को परिहरणोवाओ, विसयाण कहेइ तो कुमरो ॥३३॥
सुहगुरुगिराइ अकलंकचरणआसेवणं तओ ताओ । पभणन्ति सामि ! अम्हे दिक्खाए लहु विसज्जेसु ॥३४॥
तुह घरिणीसद्देणं, वयं कयत्थाउ इत्थ जायाओ । संपइ पुण गिहवासे, न खणंपि रइं लहेमु त्ति ॥३५॥
तुट्ठो भणइ कुमारो, जुत्तमिणं तुम्ह वरविवेयाणं । किंतु समाहिजुयाओ, गुरुआगमणं पडिक्खेह ॥३६॥
समए वयमवि एवं, काहामो ताउ तं पवज्जंति । परियणमुहाउ एयं, हरिसीहनिवेण विण्णायं ॥३७॥
तो तेण चिंतियमिणं, वसीकओ नेव एस महिलाहिं । नवरं इमिणा चरणुज्जुयाउ एयाउ विहियाओ ॥३८॥
तो ससिणेहं पभणिय, इमं निउंजेमि रज्जदंडम्मि । जं तव्वाउलयाए, वीसारइ धम्मवत्तंपि ॥३९॥
इय निच्छिय तेणुत्तो, कुमरो बहुरज्जगहणविसयंमि । पडिकूलिउमचयन्तो, पिउवयणं सो सुदक्खिण्णो ॥४०॥

चिंतइ अहो ! विरुद्धं, रज्जग्गहणं तवुज्जुयमईणं । सागरगमणमणाणं, हिमवन्ताभिमुहगमणं व ॥४१॥
निब्बन्धो पुण पिउणो, लक्खिज्जइ गुरुतरो इहत्थंमि । दुप्पडियारा गुरुणो, न लंघियव्वा सयण्णेहिं ॥४२॥
संभाविज्जइ पच्छावि, पत्थणा एरिसा किर इमस्स । धम्मायरियागमणं, पडिक्खियव्वं मएवि धुवं ॥४३॥
ता परमपीइपउणं, पिउणो वयणं करेमि अहमिण्हिं । इय चिंतिय पडिवज्जइ, कुमरो निवसासणं सिरसा ॥४४॥
तो पुहइचंदकुमरं, असेससामंतमंतिसंजुत्तो । अभिसिंचिय रज्जभरे, कयकिच्चो नरवई जाओ ॥४५॥
नवराया पुण तीए, रायसिरीए न रंजिओ किंपि । कुणइ तहावि पवित्तिं, उचियं जणयाणुरोहेण ॥४६॥
रज्जं वसणविरहियं, विहियं मुक्काउ सयलगुत्तीओ । घुट्ठो य अमाघाओ सयले नियमंडले तेण ॥४७॥
पायं अन्नोवि जणो, विहिओ जिणसासणंमि अइभत्तो । सच्चं च वयणमेयं जह राया तह पया होइ ॥४८॥
कइयावि सभासीणो, स वित्तिणा पभणिओ जहा देव ! । तुह दंसणं समीहइ, देसंतरवाणिओ सुधणो ॥४९॥
मुंचसु इय निवभणिए, सो मुक्को वित्तिणा तओ सुधणो । नमिऊण पुहइनाहं, उचियट्ठाणंमि आसीणो ॥५०॥
रण्णा भणियं भो सिट्ठि ! कहसु कत्तो समागओसि इहं ? । भमिरेण महिं कत्थवि, किं दिट्ठं अच्छरिज्जं व ? ॥५१॥
सिट्ठीवि आह सामिय ! गयपुरनगराउ आगओ म्हि इहं । भुवणजणविम्हयकरं, अच्छरियं पुण इमं दिट्ठं ॥५२॥

तथा हि—

आसिह गयपुरनयरे, बहुरयणो रयणसंचओ सिट्ठी । भज्जा सुमंगला से, पुत्तो गुणसायरो नाम ॥५३॥

अह रयणसंचयएणं पसरियनवजुव्वणस्स तस्स कए । अट्ठण्ह नयरसिट्ठीण, अट्ठ धूयाउ वरियाओ ॥५४॥
अन्नदिणे ओलोयणठिएण गुणसायरेण रायपहे । भिक्खत्थं पुरमज्झे, पविसंतो मुणिवरो दिट्ठो ॥५५॥
कत्थवि एरिसरूवं, पुरावि मे पिच्छियं ति चिंततो । परिपालियचरणभरं, पुव्वभवं संभरइ सो उ ॥५६॥
अइनिब्बंधेण तओ, वयगहणकए सुपुच्छए पिउणो । रुयमाणी दीणमणा, से जणणी भणइ तो एयं ॥५७॥
जइवि तुह वच्छ! चित्तं, खणंपि न रइं गिहे कुणइ तहवि । नवपरिणियनियसुहदंसणेण रंजेसु णे हिययं ॥५८॥
तयणु वयगहणविसए तुहंतरायं न किंपि काहामो । इय जणणीए वयणं, तह त्ति पडिवज्जए सोवि ॥५९॥
वेवाहियसिट्ठीणं, कहावियं रयणसंचएण इमं । परिणयणाणंतरमेव, मह सुओ गिण्हिही दिक्खं ॥६०॥
तं सोउं ते वाउलहियया मंतंति किंपि ता धूया । जंपंति किमिह ताया! कन्ना दिज्जंति वारदुगं? ॥६१॥
सो चिय भत्ता जं सो, करिस्सए तं वयंपि काहामो । तेणं च अपरिणीया, न करिस्सामो वरं अवरं ॥६२॥
इय सोउ पुत्तिवयणं, ते सव्वे सिट्ठिणो पहिट्ठमणा । गुणसायरेण कारंति पाणिगहणं नियसुयाणं ॥६३॥
गिज्जंतबहुलधवले, वीवाहमहे पयट्टमाणंमि । कयसयलजणक्खेवे, पुरओ नट्टंमि वट्टंते ॥६४॥
गुणसायरोवि नासानिहियच्छो रुद्धइंदियवियारो । चिंतइ एगग्गमणो, समणो होहं सुए अहयं ॥६५॥
एवं तवं करिस्सं, एवं काहं गुरूण विणयभरं । इय संजमे जइस्सं, इय झाइस्सं सुहज्झाणं ॥६६॥ [ग्रं० ७५००]
इय चिंततो निहुयं, सुमरंतो पुव्वभवसुयरहस्सं । उल्लसियसियज्झाणो, संपत्तो केवलं नाणं ॥६७॥

ताओवि नववहूओ, तह निच्चललोयणं तमेगग्गं। पेहंति पहिट्ठाओ, लज्जामउलिंतनयणाओ ॥६८॥
चिंतंति अहो! धन्नो, उवसमलच्छीइ रंजिओ धणियं। अम्हासु कहं रज्जइ, सज्जो सावज्जभरियासु ॥६९॥
वयमवि सुपुण्णपुण्णा, जं लद्धो एस सुगुणधणअड्ढो। सिवनयरसत्थवाहो, भवरण्णविलंघणसमत्थो ॥७०॥
एयाणुमग्गलग्गा, सम्मं धम्मं सुनिम्मलं चरिउं। काहामो भूरिभवुब्भवाण दुक्खाण वुच्छेयं ॥७१॥
एवं विचिंतिरीओ, अणुमोयंतीउ सुद्धभावाओ। पत्ताउ केवलसिरिं, खणेण ताओवि सव्वाओ ॥७२॥
तव्वेलं चिय जयरवविमिस्सपडुपडहसद्दभरियनहं। घोलंतकण्णकुंडलसुरमंडलमागयं तत्थ ॥७३॥
पडिवन्नदव्वलिंगं, तं मुणिपवरं नमेइ सुरसंघो। केवलमहिमं परमं, करेइ हरिसंसुपडिपुण्णो ॥७४॥
दट्ठूण तं च वित्तं, सुमंगला रयणसंचओ सिट्ठी। गुरुसंवेगोवगओ संपत्तो, झत्ति वरनाणं ॥७५॥
इय पिच्छिवि अच्छरियं, राया सिरिसेहरो सपरिवारो। पत्तो तहिंवि पणमिय सुमुणिं पुरओ समासीणो ॥७६॥
अहयंपि पुव्वपेसियवरवाहणजाणपरियणो देव!। इह आगंतुमणोवि हु, पत्तो कोऊहलेण तहिं ॥७७॥
नियचरियकहणपुव्वं, तेणुत्तो हं जहा तुमं सुयण!। उज्झाए गंतुमणो, पत्तो पुण कोउगेण इहं ॥७८॥

तथा हि—

दूरं पत्तो सत्थो, पुणरवि सुलहं न एरिसं चुज्जं। इय चिंतावाउलिओ, न तरसि गंतुं न वा ठाउं ॥७९॥
ता कित्तियमित्तमिणं वित्तं चित्तं इह खिवइ जं ते। दच्छसि इत्तो अब्भहियमब्भुयं तत्थ संपत्तो ॥८०॥

इय सम्मं आयण्णिय, नमिय गुरुं इह समागओ म्हि कमा। संपइ अच्छरियकरं पहु ! तुह पासं समणुपत्तो ॥८१॥
इय निसुणंतो गुरुतरगुणाणुरागाइरेगओ राया। आणंदमुद्दियमणो, चिंतिउमेवं समारद्धो ॥८२॥
सच्चगुणसायरो सो, महाणुभावो महामुणी जेण। तह साहियं सकज्जं, निज्जियमोहाणुबंधेण ॥८३॥
धन्नाणं भंजियमोहनिविडनिगडाण भोगसामग्गी। न तरइ काउं धम्मंतरायमच्चंततुंगावि ॥८४॥
हा कह जाणंतु च्चिय, पडिओ हं रज्जकूडजंतंमि। गुरुजणदक्खिण्णवसा वसारसा मत्तदंतिव्व ॥८५॥
कइया सहेलपरिमुक्कसयलभोगोवभोगजोगाणं। धम्मधराण मुणीणं, मज्झे गणणं लहिस्सामि ? ॥८६॥
कइया गुरुपयपणओ, नाणचरित्ताण भायणं होही। कइया सम्मं सहिहं, उवसग्गपरीसहुप्पीलं ? ॥८७॥
इच्चाइ चिंतयन्तो, अपुव्वकरणक्कमेण स महप्पा। सिवपयगमनिस्सेणिं, खवगस्सेणिं समारूढो ॥८८॥
सियझाणघणेण खणेण, तेण घणघाइकम्मसंघायं। संचुण्णिऊण संपत्तमुत्तमं केवलं नाणं ॥८९॥
अह तत्थ सुहम्मवई, पत्तो अपित्तु दव्वलिंगं से। पणमित्तु चलणजुयलं, केवलमहिमं करेसी य ॥९०॥
तं दट्ठुं हरिसीहो, राया पउमावईइ सह तत्थ। संपत्तो जंपंतो अहो, किमेयं किमेयं ति ॥९१॥
ताओवि तस्स भज्जाउ, तत्थ हरिसेण आगयाउ लहुं। संवेगपरिगयाओ, केवलनाणं च पत्ताओ ॥९२॥
एयं तं गुणसायरकेवलिकहियं महंतमच्छेरं। सो सुधणसत्थवाहो, विम्हियचित्तो विचिंतेइ ॥९३॥
अह पुच्छइ नरनाहो, भयवं ! किं तुम्ह उवरि अम्हाण। अइगरुओ पडिबंधो, तो इय जंपइ समणसीहो ॥९४॥

तं निव ! चंपाइ पुरा, जयराया पियमईपिओ हुत्था । कुसुमाउहु त्ति नामेण, नंदणो तुज्झ अहमासि ॥९५॥
संजमगुणेण तुब्भे, विजयविमाणे सुरा समुप्पन्ना । अहयं पुण सव्वट्ठे, संजोगो पुण इहं जाओ ॥९६॥
तो मज्झ उवरि गरूओ, नेहो तुम्हाण इय सुणंताण । ताणं जायं जाईसरणं तह केवलं नाणं ॥९७॥
तेसिंपि कया महिमा, सुरवइणा भत्तिभारनमिरेण । जाओ परमाणंदो, नयरीए जणियजणचुज्जो ॥९८॥
अह सुधणसत्थवाहो, मुणीसरं नमिय पुच्छए एवं । तुम्ह गुणसायरस्स य, समाणगुणया कहमिवेसा ! ॥९९॥
साहइ तओ मुणिंदो, पुव्वभवे एस कुसुमकेउ त्ति । मह नंदणो अहेसी, वयं गहेसी मए सद्धिं ॥१००॥
मम समसुचिण्णधम्मो, तणुइयकम्मोऽणुभूयसुरजम्मो । सो कुसुमकेउतियसो सुंदरगुणसायरो जाओ ॥१०१॥
पुण्णं सुहाणुबंधं, समपरिणामेहि पुव्वमम्हेहिं । समसुहपरंपराए, परिणयमेयं तओ अम्ह ॥१०२॥
एयाओवि वहूओ णंतरभवभारियाउ दुण्हंपि । कयसंजमाउ णुत्तरसुरेसु वसिऊण सुहजोगा ॥१०३॥
जायाओ जायाओ, एवं भवियव्वयानिओगेण । संपत्ताओ केवलसिरिं च सामग्गिजोगेण ॥१०४॥
इय सोउं पडिबुद्धो, सुधणोवि सुसावयत्तमणुपत्तो । अन्नोवि बहू लोगो सुचरियचरणुज्जओ जाओ ॥१०५॥
हरिणा हरिसीहसुओ, ठविओ रज्जंमि तयणु हरिसेणो । पुहईचंदरिसीवि हु, सुचिरं विहरिय सिवं पत्तो ॥१०६॥
पृथ्वीचन्द्रक्षितिपचरितं सन्निशम्येति सम्यक्, तातभ्रातृस्वजनदयितामुख्यलोकोपरोधात् ।
दीक्षादानप्रगुणमतयो गेहवासेऽपि सन्तो, भव्या ! लोकास्त्यजत सततं कामभोगेषु सक्तिम् ॥१०७॥

## ॥ इति पृथ्वीचन्द्रनरेन्द्रचरितम् ॥

इत्युक्तः सप्तदशसु भेदेषु परार्थकामोपभोगीति षोडशो भेदः, सम्प्रति वेश्येव निराशंसो गृहवासं पालयतीति सप्तदशं भेदं व्याख्यानयन्नाह—

**वेसव्व निरासंसो अज्जं कल्लं च यामि चिंतंतो । परकीयं पिव पालेइ, गेहावासं सिढिलभावो ॥७६॥**

'वेश्या' पण्याङ्गना तद्वद् 'निराशंसः' परित्यक्तास्थाबुद्धिः, यथा हि वेश्या निर्द्धनकामुकादिशिष्टलाभमसम्भावयन्ती किञ्चिल्लभमाना चाद्य श्वो वैतं त्यजामीति मन्दादरा तमुपचरति, भावश्रावकोऽप्येवमेवाद्य श्वो वा मोक्तव्योऽयं मयेति मनोरथवान् 'परकीयमिव' अन्यसत्कमिव पालयति गृहवासम्, कुतोपि हेतोः परित्यक्तुमशक्नुवन्नपि 'शिथिलभावो' मन्दादरः सन् । सहि किल व्रताप्राप्तावपि कल्याणमवाप्नोति, वसुश्रेष्ठिसुतसिद्धवत् ।

तथा हि—

तत्र सिद्धकथा ।

अत्थिह नगरी तगरा, नगरायमहि व्व सुकणया सुपहा । सययं पुव्वाभासी, आसी सिट्ठी वसू तत्थ ॥१॥
पयडियगुरुजणविणया, सेणो सिद्धो य तस्स दो तणया । पयइपसंता भद्दा, पियंवया धम्मतिसिया य ॥२॥
सेणो सुणेवि धम्मं पव्वइओ सीलचंदगुरुमूले । चरणकरणेसु नवरं, पमायसीलो दढं जाओ ॥३॥
वुड्ढपिउपालणत्थं, अगहियदिक्खो गिहंमि निवसंतो । सिद्धो पुण सुद्धमई, अणवरयं चिंतए एवं ॥४॥

कइया अदब्भआरंभकारणं चइय गेहवासमिमं । गिण्हिस्सं परमसुहिकहेउ सव्वण्णुणो दिक्खं ? ॥५॥
कइया सव्वं संगं, अंगंमि वि निप्पिहो अहं चइउं । मिगचारियं चरिस्सं, सुहगुरुपयसेवणासत्तो ? ॥६॥
कइया पहाणउवहाणसंगयं सयलदोसपरिमुक्कं । आयारप्पमुहमहं, आगमसत्थं पढिस्सामि ? ॥७॥
समिईगुत्तिपहाणं, पालिस्सं दुद्धरं कया चरणं । कइया उवसमलच्छी, वच्छे रमिही मम जहिच्छं ? ॥८॥
गुरुतरउज्जलतवचरणकरणजलणंमि खिविय अप्पाणं । नीसेसमलविमुक्कं, कणगं व कया करिस्सामि ? ॥९॥
संलिहियदव्वभावो, कइया इहपरभवेसु निरविक्खो । आराहणमाराहिय, पाणच्चायं करिस्सामि ? ॥१०॥
इय सुमणोरहगुरुरहआरूढमणो गमेइ सो कालं । अन्नदिणे सेणमुणी, सिद्धं दट्ठुं समणुपत्तो ॥११॥
जिणसुयभावियमइणो उप्पलदलकोमलाइ वाणीए । दाउं चोयणमन्नुन्नमेगहिं दोवि उवविट्ठा ॥१२॥
अह कम्मघिहाणाओ, विवाइया दोवि असणिपाएण । अच्चंतदुक्खिओ तो जाओ जणओ परियणो य ॥१३॥
तत्थन्नया महप्पा, जुगंधरो केवली समोसरिओ । पुट्ठो गईविसेसं, वसुणा सो निययपुत्ताणं ॥१४॥
केवलिणा सिट्ठं से, सिद्धो सोहम्मकप्पमणुपत्तो । सेणो पुणो महिड्ढी वंतरदेवो समुप्पन्नो ॥१५॥
कारणमिह सामन्ने सुद्धे सिद्धस्स आसि करणिच्छा । इयरेण उ सामण्णं, गहियंपि न पालियं सम्मं ॥१६॥
इय सोउ गेहवासे, विरत्तचित्तो बहू जणो जाओ । भवियपडिबोहहेउं गुरूवि अन्नत्थ विहरित्था ॥१७॥
सिद्धस्य वृत्तमेवं निशम्य भव्याः ! शुभेन भावेन । प्रतिमुक्तप्रतिबन्धा गेहे मन्दादरा भवत ॥१८॥

॥ इति सिद्धकथा ॥

इत्युक्तो भावश्रावकस्य सप्तदशोऽपि भेदः। आह—स्त्रीन्द्रियविषयाणामरक्तद्विष्टमध्यस्थासम्बद्धानां गेहगेहवासयोश्चैकविषयाणां भेदो नोपलभ्यते, तत्कथं न पुनरुक्तदोष इति ? सत्यम्, देशविरतेश्चित्ररूपत्वादेकस्मिन्नपि विषये परिणामनानात्वम्, एकस्यापि परिणामस्य विषयभेदोऽपि सम्भवतीति सर्वभेदनिषेधार्थत्वात् प्रपञ्चस्य न पौनरुक्त्यमिति व्याख्यानगाथाभिः प्रकाशितमेव, अतः सूक्ष्मधियाऽऽलोच्य समाधानान्तरमपि विधेयमिति।

इति प्ररूपिताः सदृष्टान्ताः सप्तदशाऽपि भावश्रावकभेदाः। तत्प्ररूपणे च प्ररूपितं सप्रपञ्चं भावश्रावकस्य भावगतलिङ्गकदम्बकम्। सम्प्रति एतदेवोपसंहरन् प्रस्तावान्तरं च सम्बन्धयन्नाह—

इय सतरसगुणजुत्तो, जिणागमे भावसावगो भणिओ।
एस उण कुसलजोगा, लहइ लहुं भावसाहुत्तं ॥७७॥

'इति' उक्तप्रकारेण सप्तदशगुणयुक्तो 'जिनागमे' भावश्रावको भणित इति प्रकटार्थः। 'एषः' एवंविधः 'पुनः' शब्दो विशेषणार्थः। किं विशिनष्टि ? द्रव्यसाधुस्तावदेष भणित एवागमे—

तत्र १ मार्गानुसारिणी क्रिया।

यदुक्तम्—

"मिउपिंडो दव्वघडो, सुसावओ तह य दव्वसाहु त्ति। साहू य दव्वदेवो सुद्धनयाणं तु सव्वेसिं" ॥

एवंविधपरिणामोपार्जितकुशलयोगात् पुनः 'लभते' अवाप्नोति 'लघु' शीघ्रम् 'भावसाधुत्वम्' यथावस्थितयतित्वमिति ।

कीदृशः पुनर्भावसाधुर्भवतीति? उच्यते ।

"निर्वाणसाधकान् योगान्, यस्मात्साधयतेऽनिशम् । समश्च सर्वभूतेषु, तस्मात्साधुरुदाहृतः ॥१॥

क्षान्त्यादिगुणसम्पन्नो, मैत्र्यादिगुणभूषितः । अप्रमादी सदाचारे, भावसाधुः प्रकीर्त्तितः" ॥२॥ इति ।

कथं पुनश्छद्मस्थैरयं ज्ञायते? लिङ्गैः ।

कानि पुनस्तानीत्याह—

**एयस्स उ लिंगाइं, सयला मग्गाणुसारिणी किरिया[1] । सद्धा पवरा धम्मे[2] पण्णवणिज्जत्तमुजुभावो[3] ॥७८॥**

**किरियासु अप्पमाओ[4], आरंभो सक्कणिज्जणुट्ठाणे[5] । गुरुओ गुणाणुराओ[6], गुरुआणाराहणं परमं[7] ॥७९॥**

द्वारगाथाद्वयम् । अस्य व्याख्या—

'एतस्य' पुनर्भावसाधोः, 'लिङ्गानि' चिह्नानि—'सकला' समस्ता 'मार्गानुसारिणी' मोक्षाध्वानुपातिनी 'क्रिया' प्रत्युपेक्षणादिका चेष्टा १, तथा 'श्रद्धा' करणेच्छा 'प्रवरा' प्रधाना 'धर्मे' संयमविषये २, तथा 'प्रज्ञापनीयत्वम्' असदभिनिवेशत्यागित्वम् 'ऋजुभावात्' अकौटिल्येन ३, तथा 'क्रियासु' विहितानुष्ठानेषु 'अप्रमादो'ऽशैथिल्यम् ४, तथा 'आरम्भः' प्रवृत्तिः 'शकनीये' शक्त्यनुरूपे 'अनुष्ठाने' तपश्चरणादौ ५, तथा 'गुरुः' महान् 'गुणानुरागो' गुणपक्षपातः ६, तथा 'गुर्वाज्ञाराधनम्' धर्माचार्यादेशवर्त्तित्वं 'परमं' सर्वगुणप्रधा-

नम् ७ इति सप्त लक्षणानि भावसाधोरिति द्वारगाथासमासार्थः।

व्यासार्थं तु सूत्रकारः स्वयमेवाह—

**मग्गो आगमनीई, अहवा संविग्गबहुजणाइण्णं। उभयाणुसारिणी जा, सा मग्गणुसारिणी किरिया॥८०॥**

मृग्यते—अन्विष्यतेऽभिमतस्थानावाप्तये पुरुषैर्यः स मार्गः, स च द्रव्यभावभेदाद् द्वेधा—द्रव्यमार्गो ग्रामादेः, भावमार्गो मुक्तिपुरस्य सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपः क्षायोपशमिकभावरूपो वा, तेनेहाधिकारः। स पुनः कारणे कार्योपचारादागमनीतिः—सिद्धान्तभणिताचारः। अथवा संविग्नबहुजनाचीर्णमिति द्विरूपोऽवगन्तव्य इति। तत्रागमो—वीतरागवचनम्।

उक्तं च—

"आगमो ह्याप्तवचनमाप्तं दोषक्षयाद् विदुः। वीतरागोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेत्वसम्भवात्" ॥

तस्य नीतिः—उत्सर्गापवादरूपः शुद्धसंयमोपायः स मार्गः।

उक्तं च—

तत्र १ मार्गानुसारिणी क्रिया।

यस्मात् प्रवर्त्तकं भुवि, निवर्त्तकं चान्तरात्मनो वचनम्। धर्मश्चैतत्संस्थो, मौनीन्द्रं चैतदिह परमम्॥१॥

अस्मिन् हृदयस्थे सति, हृदयस्थस्तत्त्वतो मुनीन्द्र इति। हृदयस्थिते च तस्मिन्नियमात्सर्वार्थसंसिद्धिः" ॥ इति।

तथा संविग्ना—मोक्षाभिलाषिणो ये बहवो जना अर्थाद् गीतार्थाः, इतरेषां संवेगायोगात् तैर्यदाचीर्णमनुष्ठितं क्रियारूपम्। इह च संविग्नग्रहणमसंविग्नानां बहूनामप्यप्रमाणतां दर्शयति, यद्व्यवहारः—

"जं जीयमसोहिकरं, पासत्थपमत्तसंजयाईहिं । बहुएहिवि आयरियं, न पमाणं सुद्धचरणाणं" ॥ ति ।

बहुजनग्रहणं संविग्नोऽप्येकोऽनाभोगानवबोधादिभिर्वितथमप्याचरेत्ततः सोऽपि न प्रमाणमित्यतः संविग्नबहुजनाचरितं मार्ग इति । अत एवाह–उभयानुसारिणी याऽऽगमाबाधया संविग्नव्यवहाररूपा सा मार्गानुसारिणी क्रियेति ।

आह–आगम एव मार्गो वक्तुं युक्तो बहुजनाचीर्णस्य पुनर्मार्गीकरणमयुक्तम्, शास्त्रान्तरविरोधादागमस्य चाप्रामाण्यापत्तेः ।

तथा हि–

"बहुजणपवित्तिमित्तं, इच्छन्तेहिं इहलोइओ चेव । धम्मो न उज्झियव्वो, जेण तहिं बहुजणपवित्ती ॥१॥

ता आणाणुगयं जं, तं चेव बुहेण होइ कायव्वं । किमिह बहुणा जणेणं, हंदि न सेयत्थिणो बहुया ॥२॥

तथा–

"जिट्ठंमि विज्जमाणे, उचिए अणुजिट्ठपूयणमजुत्तं । लोयाहरणंपि तहा, पयडे भयवन्तवयणंमि" ॥

आगमस्तु केवलिनापि नाप्रमाणीक्रियते । यतः–

"ओहा सुओवउत्तो, सुयनाणी जइवि गिण्हइ असुद्धं । तं केवलीवि भुंजइ, अपमाणसुयं भवे इहरा" ॥

किञ्च–आगमे सत्यप्याचरितस्य प्रमाणीकरणे तस्य लघुता स्फुटैवेति ।

नैतदेवम्–

अस्य सूत्रस्य शास्त्रान्तराणां च विषयविभागापरिज्ञानात् । तथा हि–इह सूत्रे संविग्नगीतार्था आगमनिरपेक्षं नाचरन्ति, किं तर्हि ?

"दोसा जेण निरुज्झन्ति, जेण खिज्जंति पुव्वकमाइं। सो सो मुक्खोवाओ, रोगावत्थासु समणं व"।

इत्याद्यागमवचनमनुस्मरन्तो द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषाद्यौचित्यमालोच्य संयमवृद्धिकार्ये च किञ्चिदाचरन्ति, तच्चान्येऽपि संविग्नगीतार्थाः प्रमाणयन्तीति स मार्गोऽभिधीयते। भवदुच्चारितशास्त्रान्तराणि पुनरसंविग्नगीतार्थलोकमसमञ्जसप्रवृत्तमाश्रित्य प्रवृत्तानि ततः कथं तैः सह विरोधसम्भवः? तथागमस्यापि नाप्रमाणतापत्तिः, अपि तु सुष्ठुतरं प्रतिष्ठा, यस्मादागमेऽप्यागमश्रुताज्ञाधारणाजीतभेदात् पञ्चधा व्यवहारः प्ररूप्यते। यत उक्तं श्रीस्थानाङ्गे-"पञ्चविहे ववहारे पन्नत्ते, तंजहा-आगमववहारे, सुयववहारे, आणाववहारे, धारणाववहारे, जीयववहारे"। जीताचरितयोश्चानर्थान्तरत्वादाचरितस्य प्रमाणत्वे सुतरामागमस्य प्रतिष्ठासिद्धिः। तस्मादागमाविरुद्धमाचरितं प्रमाणमिति स्थितम्।

अत एवेदमाह—

**अन्नह भणियंपि सुए, किंची कालाइकारणाविक्खं। आइन्नमन्नहच्चिय, दीसइ संविग्गगीएहिं॥८१॥**



'अन्यथा' प्रकारान्तरेण 'भणितमपि' उक्तमपि 'श्रुते' पारगतगदितागमे किञ्चिद्वस्तु 'कालादिकारणापेक्षं' दुःषमादिस्वरूपालोचनपूर्वकम् 'आचीर्णं' व्यवहृतमन्यथैव चियशब्दस्यावधारणार्थत्वाद् 'दृश्यते' साक्षादुपलभ्यते 'संविग्नगीतार्थैः' उक्तस्वरूपैरिति।

किं तदित्याह—

**कप्पाणं पावरणं, अग्गोयरचाउ झोलियाभिक्खा। ओवग्गाहियकडाहयतुम्बयमुहदाणदोराई॥८२॥**

'कल्पानाम्' आत्मप्रमाणायामसार्द्धद्विहस्तविस्तराणामागमप्रतीतानां 'प्रावरणं' परितो वेष्टनं प्रतीतमेव। ते हि किल कारणव्यतिरेकेण भिक्षाचर्यादौ गच्छता संवृताः स्कंधत एव वोढव्या इत्यागमाचारः, संप्रति प्राव्रियन्ते। 'अग्गोयर'त्ति अग्रावतारः परिधानविशेषः साधुजनप्रतीतस्तस्य त्यागः कटीपट्टकस्यान्यथाकरणम्, तथा 'झोलिका' ग्रन्थिद्वयनियन्त्रितपात्रबन्धरूपा तया भिक्षा, आगमे हि मणिबन्धप्रत्यासन्नं पात्रबन्धाञ्चलद्वयं मुष्ट्या ध्रियते, कूर्परसमीपगमे च बध्यते इति व्यवस्था। तथौपग्रहिककटाहकतुम्बकमुखदानदवरकादयः सुविदिता एव साधूनामाचरिताः संप्रतीति गम्यते इति।

तथा—

**सिक्किगनिक्खिवणाई पज्जोसवणाइतिहिपरावत्तो। भोयणविहिअन्नत्तं एमाई विविहमन्नंपि॥८३॥**

सिक्किको—दवरकरचितो भाजनाधारविशेषः, तत्र निक्षेपणं बन्धनमर्थात् पात्राणाम्, आदिशब्दाद्युक्तिलेपेन पात्रलेपनादि, तथा पर्युषणादितिथिपरावर्त्तः—पर्युषणा सांवत्सरिकम्, आदिशब्दाच्चातुर्मासकपरिग्रहः, तयोः स्थितिपरावर्त्तः—तिथ्यन्तरकरणं सुप्रतीतमेतत्, तथा भोजनविधेरन्यत्वं यतिजनप्रसिद्धमेव, 'एमाइ' त्ति प्राकृतशैल्यैवंशब्दे वकारलोपः, तत एवमादिग्रहणेन षड्जीवनिकायामप्यधीतायां शिष्य उत्थाप्य इत्यादि गीतार्थानुमतं विविधमन्यदप्याचरितं प्रमाणभूतमस्तीत्यवगन्तव्यम्।

तथा च व्यवहारभाष्यम्—

"सत्थपरिन्ना छक्कायसंजमो पिंड उत्तरज्झाए। रुक्खे वसहे गोवे, जोहे सोही य पुक्खरिणी" ॥१॥

अस्या अयमर्थलेशः—

शस्त्रपरिज्ञाध्ययने सूत्रतोऽर्थतश्चावगते भिक्षुरुत्थापनीय इत्यप्रमेयप्रभावपारमेश्वरप्रवचनमुद्रा, जीतं पुनः षट्कायसंयमो—दशवैकालिकचतुर्थाध्ययने षट्जीवनिकाख्ये ज्ञाते भिक्षुरुत्थाप्यत इति । तथा पिण्डैषणायां पठितायामुत्तराध्ययनान्यधीयन्ते स्म, संप्रति तान्यधीत्याचार उद्दिश्यते। पूर्वं कल्पपादपा लोकस्य शरीरस्थितिहेतवोऽभूवन्, इदानीं सहकारकरीरादिभिर्व्यवहारः । तथा वृषभाः—पूर्वमतुलबला धवलवृषभा बभूवुः, संप्रति धूसरैरपि लोको व्यवहरति । तथा गोपाः—कर्षकाश्चक्रवर्त्तिगृहपतिरत्नवत् तद्दिन एव धान्यनिष्पादका आसन्, संप्रति तादृगभावेपीतरकर्षकैर्लोको निर्वहति । तथा पूर्वं योधाः—सहस्रयोधादयः समभवन्, संप्रत्यल्पबलपराक्रमैरपि राजानः शत्रूनाक्रम्य राज्यमनुपालयन्ति । तद्वत् साधवोपि जीतव्यवहारेणापि संयममाराधयन्तीत्युपनयः । तथा शोधिः—प्रायश्चित्तम्, षाण्मासिक्यामप्यापत्तौ जीतव्यवहारे द्वादशकेन निरूपितेति । पुष्करिण्योऽपि प्राक्तनीभ्यो हीना अपि लोकोपकारिण्य एवेति दार्ष्टान्तिकयोजना पूर्ववत् । एवमनेकधा जीतमुपलभ्यत इति । अथवा किंबहुना—

**जं सव्वहा न सुत्ते, पडिसिद्धं नेव जीववहहेऊ । तं सव्वंपि पमाणं, चारित्तधणाण भणियं च ॥८४॥**

तत्र १ मार्गानुसारिणी क्रिया।

यत्तु सर्वथा—सर्वप्रकारैर्नैव सूत्रे—सिद्धान्ते प्रतिषिद्धं निवारितं—सुरतासेवनवत् ।

उक्तं च—

"न य किंचि अणुन्नायं, पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं । मोत्तुं मेहुणभावं, न तं विणा रागदोसेहिं" ॥



नापि जीववधहेतुराधाकर्मग्रहणवत्, तद्—अनुष्ठानं सर्वमपि प्रमाणं चारित्रमेव धनं येषां तेषां चारित्रधनानां—चारित्रिणामागमानु-

ज्ञातत्वाद्, भणितमुक्तं च पूर्वाचार्यैरिति ॥

यद्भणितं तदेवाह—

**अवलंबिउण कज्जं, जंकिंपि समयारंति गीयत्था । थोवावराहबहुगुण सव्वेसिं तं पमाणं तु ॥८५॥**

अवलम्ब्य–आश्रित्य कार्यं संयमोपकारि यत् किमपि समाचरन्ति–संगतं–सिद्धान्तानुयाय्याचरन्त्यासेवन्ते गीतार्था–विदितागमतत्त्वास्तोकापराधमल्पदोषम्, निष्कारणपरिभोगत्वेन प्रायश्चित्तापत्तेः, बहुगुणं–गुरुग्लानबालवृद्धक्षपनकादीनामुपष्टम्भेन बहूपकारं मात्रकादिपरिभोगवत् सर्वेषामपि, चारित्रिणां तत् प्रमाणमेव, तु शब्दस्यैवकारार्थत्वाद्, आर्यरक्षितसूरिसमाचरितं दुर्बलिकापुष्यमित्रस्येव ।

तथाहि—

इह दसपुरनयरे सोमदेववरविप्पवंसनहतरणी । अक्खुद्दरुद्दसोमातणुसरसीरायहंससमो ॥१॥
पाडलिपुरा चउद्दस, विज्जाठाणाणि पढिय संपत्तो । तुट्ठेण निवेण पुरे, पवेसिओ गुरुविभूईए ॥२॥
आणंदियनयरजणो, जणणीवयणेण दिट्ठिवायसुयं । पढिउं सिरितोसलिपुत्तसूरिपासंमि पव्वइओ ॥३॥
सिरिवइरसामिगणहरपयमूले गहियसड्ढनवपुव्वो । दिक्खियलहुबंधवफग्गुरक्खियजणणिप्पमुहलोओ ॥४॥
बहुविहउवायगाहियचरित्तपिउमुणिविदिन्नकडिदोरो । सिरिअज्जरक्खियपहू अहेसि सूरी जुगप्पवरो ॥५॥
तस्स त्थि तिन्नि सीसा, विणीयत्तिणया विसिट्ठलद्धिजुया । घयवत्थपूसमित्ता दुब्बलियापुस्समित्तो य ॥६॥
तत्थ घयपूसमित्तस्स, अत्थि लद्धी इमा कयचमक्का । दव्वे घयमाणेयं, खित्ते उज्जेणिनयरीए ॥७॥

काले जिट्ठासाढेसु, भावओ नियडपसवसमयाए । दिन्नं दरिद्दइत्थीइ, भावओ गच्छपरिमाणं ॥८॥
एसा पुण लद्धी वत्थपूसमित्तस्स अत्थि जह दव्वे । वत्थं आणेयव्वं, खित्ते महुराइ नयरीए ॥९॥
कालंमि सिसिरकाले, भावंमि दरिद्दविहवमहिलाए । दिन्नं परिमाणे पुण, पडिपुन्नं सयलगच्छस्स ॥१०॥
दुब्बलियपूसमित्तो नव पुव्वाइं पढित्तु ताइं सया । परियट्टइ तव्वसओ, अईव सो दुब्बलो जाओ ॥११॥
तस्स य दसपुरनयरे, दसबलभत्ता समत्थि बहुसयणा । ते कोउगेण गुरुणो, पासं पत्ता इय भणंति ॥१२॥
तुम्हाण नत्थि झाणं, झाणपरा अम्ह भिक्खुणो सययं । जंपंति गुरु झाणं, अम्हं चिय नणु अइपहाणं ॥१३॥
जं एस तुम्ह नियगो, झाणेणं चेव दुब्बलो जाओ । ते बिंति इमो गेहे, निद्धाहारेहि आसि बली ॥१४॥
संपइ पुण तयभावा, जाओ दुब्बलतणू तओ गुरुणो । जंपंति कयावि इमो नेहेण विणा न भुंजेइ ॥१५॥
कत्तो तुम्हं नेहु त्ति, तेहि वुत्ते भणंति मुणिपहुणो । घयपूसाउ इमाओ, तहावि नहु पत्तियंति इमे ॥१६॥
तो पडिबोहणहेउं, पेसंति तयं गुरू गिहे ताण । ते दिंति निद्धपेसलआहारे सोवि गिण्हेइ ॥१७॥
भुंजेवि तयणु पुव्वे, झरमाणो हवइ तारिसो चेव । गाढतरं दिंति तओ, तहवि झरंतो किसो एसो ॥१८॥
ते निव्विन्ना दाउं, बिंति गुरू पुसमित्त ! इत्ताहे । मा झरसु कइवि दिवसे, आहारसु अंतपंताइं ॥१९॥
तह चेव कए एसो बलियसरीरो फुरंततेयभरो । पडिपुन्नगलकवोलो, थोवदिणेहिंपि संजाओ ॥२०॥
तं दट्ठु महच्छरियं, ते बुद्धा बुद्धमग्गमुज्झेउं । रक्खियपहुपयमूले, गिहत्थधम्मं पवज्जंति ॥२१॥



तत्र दुर्बलि-
कापुष्यमि-
त्रकथा ।

तग्गच्छे दुब्बलिया पुस्सो विञ्झो य फग्गुरक्खी य । गुट्ठामाहिलनामा, चत्तारि जणा पहाण त्ति ॥२२॥
तत्थ य विञ्झो विञ्झो व्व, समयसुत्तत्थहत्थिआहारो । कइयावि साहुनाहं भत्तीए विन्नवेइ इमं ॥२३॥
पहु ! सुत्तमंडलीए, परिवाडीए समेइ सुचिरेण । आलावगो तओ मह, देह पुढो वायणायरियं ॥२४॥
गुरुणावि पूसमित्तो, तो दिन्नो तस्स वायणायरिओ । सो दाउ वायणं कइवि वासरे भणई इय सूरिं ॥२५॥
दिंतस्स वायणाउ अणुपेहावज्जिणो य सयणगिहे । पहु ! अज्झरियं च मज्झं, नवमं पुव्वं पणिस्सिहिइ ॥२६॥
तं सोउ चिंतइ गुरू, अइमेहाविस्स इय झरंतस्स । जइ एयस्सवि नस्सइ, ता नट्ठं चेव इयराण ॥२७॥
अइसयकओवओगो, मइमेहाधारणाइ परिहीणे । नाऊण सेसपुरिसे, खित्तं कालाणुभावं च ॥२८॥
सविसयमसद्दहंता, नयाण तम्मत्तगं च गिण्हंता । मन्नंता य विरोहं अपरीणामाइपरिणामा ॥२९॥
मा मिच्छत्तं गच्छिज्ज, इय विचिंतिय इमो समणनाहो । सुनिगूहियनयमग्गे पुढोणुओगे इय करेसि ॥३०॥

तथाहि—

चरणकरणाणुओगे, कालियसुयछेयसुत्तमाईणि । धम्मकहाअणुओगे ठवेइ इसिभासियाइसुयं ॥३१॥
रविससिपन्नत्तीओ, करेइ गणियाणुओगविसयाओ । सव्वोवि दिट्ठिवाओ, ठविओ दव्वाणुओगम्मि ॥३२॥

तथा—

दसपुरनगरुच्छुघरे, ठिओ मुणीणं कयावि दयहेउं । मत्तगपरिभोगंपिहु अणुजाणइ वरिसयालंपि ॥३३॥

आलोयणवयदाणं, छेयसुयं संजईण वारेइ । आगमभणियंपि इमो, कालं भावं च आसज्ज ॥३४॥
जं निरवज्जं एमाइतेण असढेण पभणियं तइया । मग्गाणुसारिबुद्धीण, अणुमयं तं परेसिंपि ॥३५॥
पसरंतबहुलअन्नाणधन्तहीरंतजन्तुसुपईवो । कइयावि अज्जरक्खियसामी य महुराउरिं पत्तो ॥३६॥
तत्थ य भूयगुहाए, वन्तरभवणे ठिओ सपरिवारो । सीमन्धरपहुपासे, इओ निगोए हरी सुणिउं ॥३७॥
पुच्छइ भयवं ! भरहेवि, कोवि एए जिए वियारेइ । साहइ सामी रक्खियअज्जो अहमिव वियारेइ ॥३८॥
सक्को बम्भणरूवं, काउमिहागम्म पुच्छइ निगोए । गोला इ असंखिज्जा इच्चाइ गुरूवि साहेइ ॥३९॥
पुण भणइ हरी भयवं, वुड्ढत्ता काउ इच्छिमोऽणसणं । भण मह कित्तियमाउं, सुयउवओगा तओ सूरी ॥४०॥
जा पिच्छइ दो अयरे, किंचूणे तस्स आउं भणइ गुरू । इंदो भवंति सक्को, तो काउ सरूवमिय थुणइ ॥४१॥
निरइसएवि हु काले, नाणं विप्फुरइ निम्मलं जस्स । विम्हाइयतेलुक्कं, तस्स नमो होउ तुह नाह ! ॥४२॥
जय जिणआगमअणुमयसुद्धसमायारआयरणवित्त ! । जय रागदोसजलरासिसोसकुंभुब्भव मुणिंद ! ॥४३॥
इय थुणिय जा सट्ठाणं, इंदो गच्छइ गुरूहिं तो भणिओ । पडिवालसु खणमेगं, जा विहरिय इंति इह मुणिणो ॥४४॥
दट्ठूण तुमं वासव ! अज्जवि सीलंगसंगसुभगमणे । हरिणोवि नमंति मुणी, इय थिरया हवइ तेसिंपि ॥४५॥
सक्कोवि आह मुणिपहु ! ते मं दट्ठुं विसिट्ठरूवधरं । काहंति अप्पसत्ता नियाणमिय जामि सट्ठाणं ॥४६॥
इय जंपिय तस्स उवस्सयस्स काऊण दारमवरमुहं । नमिय मुणिंदं पत्तो, पुरंदरो नियय़ट्ठाणंमि ॥४७॥



तत्र दुर्बलि-
कापुष्यमि-
त्रकथा ।

ता तत्थ मुणी पत्ता, कओ दुवारं ति बिंति तो गुरुणा । वाहरिया एह इओ, सिट्ठं तह सक्कआगमणं ॥४८॥
ते आहु किं न धरिओ, खणमेगं तो कहंति गुरुणोवि । तं वुत्ततं सयलंपि पाडिहेरावसाणं ति ॥४९॥
अन्नदिणे विहरन्ता, ते भयवन्तो गया दसपुरम्मि । पबलो नाहियवाई, महुराइ समुट्ठिओ इत्तो ॥५०॥
सिरिअज्जरक्खियाणं जुगप्पहाणागमाण पासंमि । संघेण सुगुणसंघेण पेसिओ साहुसंघाडो ॥५१॥
तेहिवि गुट्ठामाहिलनामो नियमाउलो तहिं पहिओ । गुरुवायलद्धिणा तेण, झत्ति सो निज्जिओ वाई ॥५२॥
सो तयणु सावगेहिं, धरिओ वासासु हिट्ठचित्तेहिं । रक्खियपहुणा इत्तो अइथोवं आउ नाउ नियं ॥५३॥
को गणहरो ठविज्जइ, इय चिंतन्तेण निउणबुद्धीए । आयरियठाणजुग्गो, समिक्खिओ दुब्बलियपूसो ॥५४॥
जे पुण से सयणजणा, तेसिं किर फग्गुरक्खिओ समणो । माहिलओ वाऽभिमओ, तो ते वुत्ता इमं गुरुणा ॥५५॥
निष्फावतिल्लघयगाण इह कुडेसुं अहोमुहकएसु । सव्वेवि नेन्ति तिल्ला तिल्लं पुण लग्गए किमवि ॥५६॥
लग्गइ सुबहुंपि घयं, एमेव अहंपि सुत्तअत्थेहिं । निप्फावकुडसमाणो, दुब्बलियं पइ महाभागा ॥५७॥
तह फग्गुरक्खियमुणिं, गुट्ठामाहिलमुणिं च आसज्ज । तिल्लघयकुडु व्व कमा, अहयं इय कारणा भद्दा ! ॥५८॥
सुत्तत्थतदुभयधरो, सद्धासंवेगसंगओ सुमई । सक्किरियाकरणरओ, रायकरंडगसमाणगुणो ॥५९॥
ससमयपरसमयविऊ, दुब्बलिओ एस होउ तुम्ह गुरू । तेवि तहत्ति पडिच्छन्ति सीसवीसंतकरकमला ॥६०॥
वूढो गणहरसद्दो, गोयममाईहिं धीरपुरिसेहिं । जो तं ठवइ अपत्ते, जाणंतो सो महापावो ॥६१॥

इय चिंतिऊण गुणपक्खराइणा सूरिणा समयविहिणा । ठविऊण पूसमित्तो आयरियपए इमं वुत्तो ॥६२॥
जह फग्गुरक्खिए माहिले य इह वट्टिओ अहं वच्छ ! । तह वट्टिज्ज तुमंपि हु, तहत्ति तं गिण्हइ इमोवि ॥६३॥
सयणा उ इमं वुत्ता, जह तुब्भे वट्टिया मइ सयावि । एयंमिवि मुणिनाहे, तह वट्टिज्जेह विणयपरा ॥६४॥
अविय अहं अकए वा कएवि वा नेव रूसिओ कइया । एसो उण नहु खमिही, ता वट्टिज्जेह सुट्ठुयरं ॥६५॥
एवं दुन्निवि वग्गे अप्पाहिय हियकरेहि वयणेहिं । भत्तं पच्चक्खाइत्तु सूरिणो सग्गमणुपत्ता ॥६६॥
दुब्बलियपूसमित्तोवि गणहरो हरियसयलसंदेहो । मग्गाणुसारिकिरियानिरओ कयभवियजणहरिसो ॥६७॥
दप्पिट्ठदुट्ठकुग्गहनिम्महियजणाभिमाणघणपवणो । विहियनियगच्छसुत्थो, कमेण सुहभायणं जाओ ॥६८॥

श्रुत्वेति वृत्तं त्रिजगत्पवित्रं श्रीपुष्यमित्रस्य मुनीश्वरस्य ।
मुमुक्षवः संतु कृतप्रयत्ना मार्गानुसारिप्रवरक्रियायां ॥६९॥

## ॥ इति दुर्बलिकापुष्यमित्रकथा समाप्ता ॥

अत्र कश्चिदेवमाह—नन्वेवमाचरिते युष्माभिः प्रमाणीकृतेऽस्माकं पितृपितामहादयो नानारम्भमिथ्यात्वक्रियाप्रवृत्तयोऽभूवन्नतोऽस्माकमपि तथैव प्रवर्त्तितुमुचितमिति । अत्रोच्यते—सौम्यमार्गेणापि नीयमानो मोन्मार्गेण गमः, यतोऽस्माभिः संविग्नाचरितमेव स्थापितम्, न सर्वपूर्वपुरुषाचरितमित्यतएवाह—

जं पुण पमायरूवं गुरुलाघवचिंताविरहियं सवहं। सुहसीलसढाइन्नं चरित्तिणो तं न सेवंति ॥८६॥

यत् पुनराचरितं प्रमादरूपं संयमबाधकत्वात्, अत एव गुरुलाघवचिंताविरहितं–सगुणमपगुणं वेति पर्यालोचनवर्जितमत एव सवधं यतनाभावात् सुखशीला–इहलोकप्रतिबद्धाः शठा–मिथ्यालम्बनप्रधानास्तैराचीर्णं–समाचरितं चारित्रिणः–शुद्धचारित्रवन्तस्तं न सेवन्ते-नानुतिष्ठन्तीति।

अस्यैवोल्लेखं दर्शयन्नाह–

जह सड्ढेसु ममत्तं राढाइ असुद्धउवहिभत्ताई। निद्दिज्जवसहितूलीमसूरमाईण परिभोगो ॥८७॥

यथेत्युपदर्शने श्राद्धेषु–श्रावकेषु ममत्वं–ममकारं 'मदीयोऽयं श्रावक' इति गाढाग्रहं "गामे कुले वा नगरे च देसे ममत्तभावं न कहिंचि कुज्जा।" इत्यागमनिषिद्धमपि केचित् कुर्वन्ति। तथा राढया–शरीरशोभाकाम्ययाऽशुद्धोपधिभक्तादि केचन गृह्णन्ति। तत्राशुद्धमुद्गमोत्पादनादिदोषदुष्टम्, उपधिर्वस्त्रपात्रादिर्भक्तमशनपानखाद्यस्वाद्यादि, आदिशब्दादुपाश्रयग्रहणम्, एतान्यप्यागमेऽशुद्धानि निषिद्धान्येव। यत एवमार्षम्–

"पिंडं सिज्जं च वत्थ च, चउत्थं पायमेवय। अकप्पियं न इच्छिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं" ॥ इति।

इह च राढाग्रहणं पुष्टालम्बनेन दुर्भिक्षाक्षेमादौ पञ्चकपरिहाण्या किंचिदशुद्धमपि गृह्णतो न दोष इति ज्ञापनार्थम्, यतोऽभाणि पिण्डनिर्युक्तौ–

"एसो आहारविही जह, भणिओ सव्वभावदंसीहिं। धम्मावस्सगजोगा, जेण न हायन्ति तं कुज्जा ॥१॥

तथा—

"कारणपडिसेवा पुण, भावेणासेवणत्ति दट्ठव्वा। आणाइ तीइ भावे, सो सुद्धो मुक्खहेउ त्ति" ॥

तथा 'निद्दिज्ज' त्ति पत्रलेखनेनाचन्द्रकालिकं प्रदत्ता वसतिर्गृहमेषापि साधूनामकल्पनीया, अनगारत्वहानेः भग्नसंस्थापनादौ कायवधसंभवात्। तथा च पठ्यते—

"अविकत्तिऊण जीवे, कत्तो घरसरणगुत्तिसंठप्पं। अविकत्तिया य तं तह पडिया अस्संजयाण पहे" ॥

एतद्ग्रहणमप्येकैराचर्यते। तथा तूलीमसूरकादीनामपि परिभोगः कैश्चिद्विधीयते। तत्र तूलीमसूरके प्रतीते, आदिशब्दात्तूलिका-खल्लककांस्यताम्रपात्रादीनां परिग्रहः, एतान्यपि यतीनां न कल्पन्ते इति।

अथ प्रस्तुतमुपसंहरन्नाह—

**इच्चाई असमंजसमणेगहा खुद्दचिट्ठियं लोए। बहुएहिवि आयरियं, न पमाणं सुद्धचरणाणं ॥८८॥**

इत्यादि—एवंप्रकारमसमञ्जसं—वक्तुमप्यनुचितं शिष्टानामनेकधाऽनेकप्रकारं क्षुद्राणां—तुच्छसत्त्वानां चेष्टितमाचरितं लोके—लिङ्गिजने बहुभिरप्यनेकैरप्याचीर्णं न प्रमाणं—नालम्बनहेतुः शुद्धचरणानां—निष्कलङ्कचारित्रिणाम्। अप्रमाणता पुनरेतस्य सिद्धान्तनिषिद्धत्वात् संयमविरुद्धत्वादकारणप्रवृत्तत्वाच्च सम्यगालोचनीयेति।

एवमानुषङ्गिकमभिधाय प्रस्तुतोपसंहारमाह—

**गीयत्थपारतन्ता, इय दुविहं मग्गमणुसरंतस्स । भावजइत्तं जुत्तं दुप्पसहंतं जओ चरणं ॥८९॥**

गीतार्थपारतन्त्र्याद्–आगमविदाज्ञया, इति–उक्तनीत्या द्विविधम्–आगमनीत्या आगमानुमतवृद्धसमाचारभेदेन द्विप्रकारं मार्गमनुसरतस्तदनुसारेण व्यवहरतः साधोरिति गम्यते भावयतित्वं–सुसाधुत्वं युक्तमुचितं वक्तुमिति शेषः । किमित्यत आह दुष्प्रसहान्तं–दुष्प्रसहनामधेयाचार्यपर्यन्तं यतो–यस्माच्चरणं–चारित्रं सिद्धान्ते श्रूयत इति शेषः ।

अयमभिप्रायः—यदि मार्गानुसारिक्रियाकरणसारं यतमानाश्चारित्रिणो नाभ्युपगम्यन्ते, ततस्तदन्येषामनुपलम्भाद्व्यवच्छिन्नं चारित्रम्, तद्व्यवच्छेदात्तीर्थं चेत्यायातम्। एतच्च प्रत्यक्षीभूतभूतभवद्भाविभावस्वभावजिननाथप्रणीतसिद्धान्तेन सह विरुद्धमिति न प्रेक्षापूर्वकारिणः प्रतिपद्यन्ते ।

तथा च व्यवहारभाष्यम्—

"केसिंचिय आएसो, दंसणनाणेहिं वट्टए तित्थं । वोच्छिन्नं च चरित्तं, वयमाणे भारियाचउरो ॥१॥
जो भणइ नत्थि धम्मो, नय सामइयं न चेव य वयाइं । सो समणसंघबज्झो, कायव्वो समणसंघेण" ॥२॥

इत्याद्यागमप्रामाण्यान्मार्गानुसारिक्रियाकारिणो भावयतय इति स्थितम् ।

उक्तं सकलमार्गानुसारिणी क्रियेति भावसाधोः प्रथमं लिङ्गम्, संप्रति श्रद्धा प्रवरा धर्मे इति द्वितीयमाह—

**सद्धा तिव्वभिलासो, धम्मे पवरत्तणं इमं तीसे, । विहिसेवं[1] अतित्ती[2] सुद्धदेसणा[3] खलियपरिसुद्धी ॥९०॥**

श्रद्धा प्रवरा धर्मे इति द्वितीयं लिङ्गमुक्तम् । तत्र श्रद्धा तीव्रः-पटुरभिलाषः कर्मक्षयोपशमस(ज)ज्ञानप्रभवो न पुनर्विषयप्रतिभासमात्रं बालस्य रत्नग्रहणाभिलाषवत् धर्मे-श्रुतचारित्ररूपे, प्रवरत्वं-प्रधानत्वं विशेषणीकृतमिदं वक्ष्यमाणं तस्याः श्रद्धायाः फलभूतम् । तद्यथा-विधिसेवा १, अतृप्तिः २, शुद्धदेशना ३, स्खलितपरिशुद्धिः ४, इति लिङ्गानि श्रद्धायाः प्रवरत्वस्येति । सूत्रे च 'विहिसेव अतित्ती' इत्यत्र ह्रस्वत्वं प्राकृतत्वात् ।

१ विधिसेवा

संप्रत्येतान्येव प्रत्येकं विभावयिषुः प्रथमं तावद्विधिसेवामधिकृत्याह—

**विहिसारं चिय सेवइ, सद्धालू सत्तिमं अणुट्ठाणं । दव्वाइदोसनिहओवि, पक्खवायं वहइ तंमि ॥९१॥**

विधिसारं-विधिप्रधानमेव सेवतेऽनुतिष्ठति श्रद्धालुः-श्रद्धागुणवान् शक्तिमान्-सामर्थ्योपेतः सन्ननुष्ठानं-प्रत्युपेक्षणैषणादिकम्, श्रद्धालुत्वस्यान्यथानुपपत्तेः । यदि पुनः शक्तिमान्नस्यात्ततः का वार्तेत्याह-द्रव्याण्याहारादीनि, आदिशब्दात् क्षेत्रकालभावाः परिगृह्यन्ते तेषां दोषः प्रतिकूलता, तेन निहतोऽपि-गाढपीडितोपि पक्षपातं भावप्रतिबन्धं वहति-धारयति तस्मिन्नेव-विध्यनुष्ठान एव सावधारणत्वाद्वाक्यस्येति ।

कथं पुनरनुष्ठानाभावे पक्षपातसंभव इत्याह—

**निरुओ भुज्जरसन्नू , किंचि अवत्थं गओ असुहमन्नं । भुंजंतंमि न रज्जइ, सुहभोयणलालसो धणियं ॥९२॥**



नीरुजो-ज्वरादिरुजारहितो भोज्यानि-खण्डखाद्यादीनि तेषां रसमास्वादविशेषं जानातीति भोज्यरसज्ञः, कामप्यवस्थां-दुष्काल-

दारिद्र्यादिदशां गतः–प्राप्तः सन्नशुभमनिष्टमन्नं भोजनं भुञ्जानो न तस्मिन्नशुभान्ने रज्यति–गृद्धिमुपैति ।

तथाहि संभवत्येतत् कदाचित्—

"सुहभत्तलालिओवि हु, दुक्कालदारिद्दभिदुओ पुरिसो । भक्कडयभरुट्टाई, भुंजइ तह कंडुयं कंटिं ॥१॥

कडुयरसं च गुयारं, अरणिदलाइं कुडिञ्झराईयं । भुञ्जइ जणो छुहत्तो, तरुछल्ली हिल्लिझिल्लाइ" ॥ त्ति ।

नचासौ तेषु गृद्धिमाधत्ते शुभभोजनलालसो–विशिष्टाहारलम्पटो 'लङ्घयाम्येतां कुदशां ततः सुभिक्षं प्राप्य पुनरपि शोभनमाहारं भोक्ष्ये इति मनोरथवान् 'धणियं'ति बाढमिति ।

एवं दृष्टान्तमभिधाय दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

**इय सुद्धचरणरसिओ, सेवंतो दव्वओ विरुद्धंपि । सद्धागुणेण एसो, न भावचरणं अइक्कमइ ॥९३॥**

इत्येवं कुभक्तभोगदृष्टान्तेन शुद्धचरणरसिको–निष्कलङ्कसंयमपालनोत्साहवान् सेवमानो द्रव्यतो–बाह्यवृत्त्या विरुद्धमागमनिषिद्धं नित्यवासादिकम्, अपिशब्दादेकाकित्वमपि श्रद्धागुणेन–संयमाराधनलालसत्वपरिणामेन न–नैव भावचरणं–पारमार्थिकचारित्रमतिक्रामति–अतिचरति श्रीसंगमसूरिवत् ।

तथा चोक्तम्—

"दव्वाइया न पायं, सोहणभावस्स हुंति विग्घकरा । बज्झकिरियाउ वि तहा, हवंति लोएवि सिद्धमिणं ॥१॥

दइयाकन्नुप्पलताडनं व सुहडस्स निव्वुइं कुणइ । पहुणो आणाए पत्थियस्स कंडंपि लग्गंतं ॥२॥

जह चेव सदेसंमि, तह परदेसेवि चलइ नहु सत्तं । मणवंछियंमि कज्जे, आरद्धे धीरपुरिसाणं ॥३॥
कालोवि हु दुब्भिक्खाइलक्खणो न खलु दाणसूराणं । भिंदइ आसारयणं, अवि अहिययरं विसोहेइ ॥४॥
एवं चिय भव्वस्सवि, चरित्तिणो नहि महाणुभावस्स । सुहसामायारिगओ, भावो परियत्तइ कयावि" ॥५॥

किंच—

जो होज्जउ असमत्थो, रोगेण व पिल्लिओ झुरियदेहो । सव्वमवि जहा भणियं, कयाइ न तरिज्ज काउं जे ॥६॥
सोवि य नियपरक्कमववसायधिईबलं अगूहंतो । मुत्तूण कूडचरियं, जइ जयए तो अवस्सजई ॥७॥ इति।

श्रीसंगमसूरिकथा पुनरेवम्

इह सिरिसंगमसूरी, दूरीकयसयलगुरुपमायभरो । अन्नाणदारुदारुणदवहुयवहसरिससमयधरो ॥१॥
पइसमयमुत्तरुत्तरविसुद्धपरिणामहणियपावोहो । नगनगरगाममाइसु, नवकप्पपकप्पियविहारो ॥२॥
अइतिव्वपवरसद्धावसपरिणयसुद्धभावचारित्तो । जंघाबलपरिहीणो, कुल्लागपुरंमि विहियठिई ॥३॥
वट्टंते दुब्भिक्खे, कयजणदुक्खे कयावि सो भयवं । पवयणमायापरिपालणुज्जयं उज्जयविहारं ॥४॥
आहिंडिय बहुदेसं, अवधारिय सयलदेसबहुभासं । सीहं नामणगारं गणाहिवत्ते निरूवेइ ॥५॥
भणइ य जइवि महायस ! सयमवि तं मुणसि सयलकरणिज्जं । आयारु त्ति विचिंतिय इय वुच्चसि तहवि अम्हेहिं ॥६॥
उल्लसिरपवरसद्धो चरणभरं दुद्धरं धरिज्ज सया । सीयंतं सीसगणं मिउमहुरगिराइ सारिज्जा ॥७॥

१ विधिसेवा

तत्र संगम-
सूरिकथा ।

जओ—

जीहाएवि लिहंतो, न भद्दओ जत्थ सारणा नत्थि । दंडेणवि ताडन्तो, स भद्दओ सारणा जत्थ ॥८॥

जह सीसाइं निकिंतइ, कोई सरणागयाण जंतूणं । एवं सारणियाणं, आयरिओ असारओ गच्छे ॥९॥

तथा—

दव्वाइअपडिबद्धो अममो विहरिज्ज विविहदेसेसु । अनिययविहारया जं जईण सुत्ते विणिद्दिट्ठा ॥१०॥

तथाहि—

अनिएयवासो समुदाणचारिया, अन्नायउंछं पइरिक्कया य । अप्पोवही कलहविवज्जणा य, विहारचरिया इसिणं पसत्था।११।

इच्चाइ कहिय वुत्तो, सो एवं वच्छ! विहर अन्नत्थ । मा ओमे इत्थ ठिओ, सीसगणो एस सीइज्जा ॥१२॥

एगागीवि अहं पुण, पहीणजंघाबलो अबलदेहो । अनलो विहरिउमन्नत्थ तो इहं चेव ठाइस्सं ॥१३॥

इय भणिय मुणी वुत्ता, वच्छा! सच्छासया सयाकालं । कुलवहुनाएण इमं, मा मुंचिज्जह कयावि तुमे ॥१४॥

तिण्णुच्चिय भवजलही, एयपसाया सुहेण तुब्भेहिं । संपइ इमिणा सद्धिं, कुणह विहारं महाभागा! ॥१५॥

इह सुणिय सुमुणिवइणो, ते मुणिणो सूरिचरणठवियसिरा । मुंचंता गुरुविरहुत्थसोयउप्पन्नअंसुभरं ॥१६॥

पडिपुन्नमन्नुभररुद्धकंठउट्ठिंतगग्गरगिरिल्ला । गुरुवयणं पडिकूलिउमचयंता दुक्खसंतत्ता ॥१७॥

कहमवि नमिउं गुरुणो, अवराहपए खमाविउं नियए । ओमाइदोसरहिए देसे पत्ता विहारेण ॥१८॥

संगमगुरूवि खित्तं, नवभागीकाउ कायनिरविक्खो । वीसुं वसहीगोयरवियारभूमाइसु जएइ ॥१९॥
सुद्धिकए गुरुपासे, कयावि सीहेण पेसिओ दत्तो । सो पुव्ववसहिसंठियसूरिं दट्टुं विचिंतेइ ॥२०॥
कारणवसा न कीरइ, खित्ते अवरावरे जइ विहारो । नवनववसहिविहारो, कीस एएहिं परिचत्तो ? ॥२१॥
ता एस सिढिलचरणो, खणंपि न खमो इमेण संवासो । एवं चिंतिय वीसुं, समीववसहीइ सो ठाइ ॥२२॥
भिक्खासमए गुरुणा, सह हिंडन्तो विसिट्ठमाहारं । दुब्भिक्खवसा अलहंतओ य, जाओ तत्थ कसिणवयणो ॥२३॥
तं तह निएवि सूरी, कम्मिवि ईसरगिहे गओ तत्थ । रेवइदोसेणेगो, सया रुयंतो सिसू अत्थि ॥२४॥
सो दाउं चप्पुडियं, गुरुणा भणिओ य बाल ! मा रुयसु । गुरुतेयं असहन्ती, झडत्ति सा रेवई नट्ठा ॥२५॥
जाओ बालो सुत्थो, तज्जणगो गहिय मोयगे पत्तो । गुरुणा करुणानिहिणा, दवाविया ते उ दत्तस्स ॥२६॥
अह मुणिपहुणा भणियं, तं गच्छसु दत्त ! संपयं वसहिं । अहयंपि आगमिस्सं, पडिपुन्नं काउ समुयाणं ॥२७॥
सड्ढगिहमेगमिमिणा, चिराउ मह दंसियं सयं अहुणा । सेसेसु गमी दत्तो, इय चिंतंतो गओ वसहिं ॥२८॥
गुरुणोवि अंतपंतं, गहिउं सुचिरेण आगया वसहिं । पन्नगबिलनाएणं, भुंजंति तयं समयविहिणा ॥२९॥
आवस्सयवेलाए, आलोइय सूरिणो समुवविट्ठा । सो निसियंतो गुरुणा, आलोइसु संममिय वुत्तो ॥३०॥
स भणइ तुब्भेहिं चिय, सह परिभमिओ म्हि किमिह वियडेमि । आह गुरू सिसुविसयं, सुहुमं नणु धाइपिंडं ति ॥३१॥
दत्तो तओ दुरप्पा, अणप्पसंकप्पकप्पणाभिहओ । लिंबुक्कडकडुयगिराइ, मुणिवरं पइ इमं भणइ ॥३२॥

राईसरिसवमित्ताणि, परच्छिद्दाणि पिच्छसि । अप्पणो बिल्लमित्ताणि, पासंतोवि न पाससि ? ॥३३॥
इय भणिय गओ एसो, नियवसहिं तयणु तस्स सिक्खत्थं । पुरदेवयाइ सिग्घं, विउव्वियं दुद्दिणं गरुयं ॥३४॥
फुडफुट्टमाणबंभंडभंडरवविरसजलहरारावं । सो निसुणंतो भयभरखलंतवयणो भणइ सूरिं ॥३५॥
भयवं ! बीहेमि अहं, आह गुरु एहि मम सयासंमि । स भणइ तिमिरभरेणं, दिसिविदिसिं नेव पिच्छामि ॥३६॥
दीवसिहं व जलंतिं, नियंगुलिं खेललद्धिणा काउं । दंसेऊण य गुरुणा, सो वुत्तो वच्छ ! एहि इओ ॥३७॥
तं दट्ठु स दुट्ठप्पा, जंपइ दीवोवि अत्थि किमिमस्स ? । तो पच्चक्खीहोउं, एवं वुत्तो स देवीए ॥३८॥
हा ! दुट्ठसेह ! निन्नेह ! देहगेहाइमुक्कपडिबन्धे । मुणिनाहंमि इमंमिवि, एवं चिंतेसि निल्लज्ज ! ॥३९॥
वसहिविहारकमेणं, पुणोवि इत्थ ट्ठियं सुगुरुमेयं । पाविट्ठ ! दुट्ठऽधम्मिट्ठ ! मन्नसि सिढिलचारित्तं ॥४०॥
अंतपंतभोयणपरंपि कप्पेसि मुद्ध ! रसगिद्धं । धिद्धी लद्धिसमिद्धंपि दीवजुत्तं पयंपेसि ॥४१॥
दव्वाइदोसवसओ, बीयपयठिएवि सुद्धसद्धाए । भावचरित्तपवित्ते, किह अवमन्नसि इमे गुरुणो ? ॥४२॥
इय अणुसिट्ठो, सो देवयाइ संजायगरुयअणुतावो । गुरुपयलग्गो खामइ, पुणो पुणो निययमवराहं ॥४३॥
आलोइयाइयारो, दत्तो गुरुदत्तविहियपच्छित्तो । विणउज्जुओ सुनिम्मलचारित्ताराहगो जाओ ॥४४॥
संगमसूरीवि चिरं, विहिसेवावल्लिपल्लवणमेहो । निरुवमसमाहिजुत्तो, सुगइं पत्तो गयकिलेसो ॥४५॥

इत्थं विशुद्धविधिसेवनतत्परस्य, श्रीसंगमस्य सुगुरोश्चरितं निशम्य ।

दुष्पमादिदोषनिहता अपि साधुलोकाः, श्रद्धां विधत्त चरणे प्रवरां पवित्रे ॥४६॥

॥ इति संगमसूरिकथा ॥

इत्युक्तं विधिसेवास्वरूपं प्रथमं श्रद्धालक्षणम्, संप्रत्यतृप्तिस्वरूपं द्वितीयमभिधित्सुराह—

**तत्तिं नचेव विंदइ, सद्धाजोगेण नाणचरणेसु । वेयावच्चतवाइसु, जहविरियं भावओ जयइ ॥९४॥**

'तृप्तिं' संतोषं कृतकृत्योऽहमेतावतैवेत्येवंरूपं 'न चैव' इति च शब्दस्य पूरणत्वान्नैव 'विन्दति' प्राप्नोति श्रद्धाया योगेन—संबन्धेन ज्ञानचरणयोर्विषये, ज्ञाने पठितं यावता संयमानुष्ठानं निर्वहतीति संचिन्त्य न तद्विषये प्रमाद्यति, किंतर्हि ? नवनवश्रुतसंपदुपार्जने विशेषतः सोत्साहो भवति ।

तथा चोक्तम् ।

"जह जह सुयमवगाहइ, अइसयरसपसरसंजुयमउव्वं । तह तह पल्हाइ मुणी, नवनवसंवेगसद्धाए" ॥

तथा—

अत्थो जस्स जिणुत्तमेहि भणिओ जायंमि मोहक्खए, बद्धं गोयममाइएहि सुमहाबुद्धीहि जं सुत्तओ ।
संवेगाइगुणाण वुड्ढिजणगं तित्थेसनामावहं, कायव्वं विहिणा सया नवनवन्नाणस्स तस्सज्जणं ।



तथा चारित्रविषये विशुद्धविशुद्धतरसंयमस्थानावाप्तये सद्भावनासारं सर्वमनुष्ठानमुपयुक्तमेवानुतिष्ठति, यस्मादप्रमादकृताः सर्वेपि

साधुव्यापारा उत्तरोत्तरसंयमकण्डकारोहणेन केवलज्ञानलाभाय भवन्ति।

तथा चागमः—

"जोगे जोगे जिणसासणंमि दुक्खक्खया पउंजन्ते, इक्किक्कम्मि अणंता, वट्टंता केवली जाया" ॥

तथा वैयावृत्त्यतपसी प्रतीते, आदिशब्दात् प्रत्युपेक्षणाप्रमार्जनादिपरिग्रहस्तेषु यथावीर्य—सामर्थ्यानुरूपं भाक्तः सद्भावसारं यतते प्रयत्नवान् भवति, अचलमुनीश्वरवत्।

तच्चरितं चैवम्—

भयरहिए निभयपुरम्मि, पुन्नजणविहियगरुयहरिसोवि। राया सि रामचन्दो, सलक्खणो रामचन्दु व्व ॥१॥

तस्स गुरुगउरवपयं, अयलो नामेण अत्थि सामन्तो। नयसच्चसोयसोंडीरयाइगुणरयणरयणनिही ॥२॥

कइयावि सो नरिन्दो, सभागओ भूरिसारपरिवारो। दुक्खभरखइगाए, गिराइ पउरेहि इय भणिओ ॥३॥

देव! न दीसइ चोरो, नय खत्तं नविय चरणसंचारो। केणवि तहवि मुसिज्जइ, अदिट्ठरूवेण पुरमेयं ॥४॥

तं सोउं कुविएणं, भणियं रन्ना अहो! सुहडसंघा। किं कोवि तक्करं तं, निग्गहिउं भे समत्थु त्ति ? ॥५॥

जा किंपि न बिंति भडा, ता अयलो आह देव! मह देसु। आएसं नणु कित्तियमित्तं एसो वराओ त्ति ॥६॥

रन्ना सहत्थतम्बोलदाणपुव्वं पयंपिओ स इमं। तह कुणसु भद्द! सिग्घं, जह लब्भइ तक्करो एसो ॥७॥

जइ पक्खंतो चोरं, न लहेमि अहं विसामि तो जलणं। इय काउ पइन्नं सो, विणिग्गओ रायभवणाओ ॥८॥

परिभमिओ पुरमज्झे, सिंघाडगतिगचउक्कमाईसु । लद्धो न कोवि चोरो, नीहरिओ तयणु नयराओ ॥९॥
करकलियखग्गदंडो, निविडीकयपरियरो दढपइन्नो । सो रयणिपढमपहरे, पत्तो कुंडाभिहमसाणे ॥१०॥
तत्थ अइकडुयकक्खडरडंतघूयडकुडुम्बदुप्पिच्छे । भल्लुंकचक्कपरिमुक्कपिक्कपिक्काररवरुद्दे ॥११॥
एगत्थ कालवेयालजालसंजणियकिलकिलारावे । अन्नत्थ मुक्कफुट्टट्टहासपरिभमिरभूयउले ॥१२॥
जा अक्खुहिओ अयलो, अयलो इव जाइ किंपि भूभागं । ता साहगहणणपरं, पिसायमेगं स पिच्छेइ ॥१३॥
तं पइ भणइ महायस! साहगपुरिसं हणेसि किं एयं? । आह पिसाओ इमिणा, पसाहिओ हं दिणे सत्त ॥१४॥
संपइ अइछुहिएणं, मए इमो मग्गिओ महामंसं । न तरइ दाउं खुद्दो, ता एयं लहु हणिस्सामि ॥१५॥
परउवयारपहाणो, अयलो पच्चाह मुञ्च नरमेयं । तुह देमि महामंसं, अहमिय मन्नइ पिसाओ वि ॥१६॥
तो छुरियाए छित्तुं, नियगमंसं स तस्स वियरेइ । असइ पिसाओ वि अहो! अभुत्तपुव्वं ति जम्पन्तो ॥१७॥
उक्कत्तिऊण जह जह, अयलो से देइ मंसखंडाइं । तह तह दिव्वोसहिविहियव्व वुड्ढिं छुहा जाइ ॥१८॥
नीसेसमंसवियलं, निएवि सयलं कलेवरं अयलो । अह जीवियनिरविक्खो, सीसंपि हु छित्तुमारद्धो ॥१९॥
धरिऊण पिसाएणं, दाहिणहत्थेण सत्ततुट्ठेण । भणिओ सो अलमेएण, साहसेणं वरेसु वरं ॥२०॥
अयलो भणेइ साहगइट्ठं पकरेसु जइसि तुट्ठो मे । एयं कयं चिय मए, मग्गसु अन्नंपि आह सुरो ॥२१॥
अयलो जम्पइ तुज्झवि, किं सीसइ अमर! मुणियकज्जस्स । नाउं ओहिबलेणं, तं कज्जं आह इय अमरो ॥२२॥

तं अयल ! गच्छ सगिहे, वीसत्थो होसु मुञ्चसु विसायं । एसो चोरपबन्धो, गोसे सयलो फुडो होही ॥२३॥
इय भणिय गओ अमरो, अयलोवि विसिट्ठदेहलायन्नो । निययावासे पत्तो, निच्चिन्तो लहइ निद्दं च ॥२४॥
ववगयनिद्दो अयलो, एएण पिसाएग पभणिओ भद्द ! । तं तक्करवुत्तंतं निसुणसु, सो आह कहसु फुडं ॥२५॥
एयस्स पुरस्स बहिं, पुव्वदिसाआसमे वसइ जोगी । पव्वइओ से सिद्धो, कविलक्खो चेडओ अत्थि ॥२६॥
तेणं हरेइ नयरे, सो सारं रमइ निसि जहिच्छाए । काऊग जोगिरूवं, दिवसे पुण कहइ धम्मकहं ॥२७॥
तस्सासमभूमिहरे, चिट्ठइ अवहरियदव्वसव्वस्सं । मा काहिसि इह संसयमिय भणिय तिरोहिओ देवो ॥२८॥
अह काउ गोसकिच्चं, अयलो कइवयजणाणुगो पत्तो । सुरकहियआसमे तत्थ, तेण दिट्ठो कवडजोगी ॥२९॥
ठाउणं तत्थ खणं, अयलो पत्तो नरिंदपयमूले । निवपुट्ठो एगंते, कहेइ तं चोरवुत्तंतं ॥३०॥
को इत्थ पच्चओ इय, नरवरपुट्ठो पयंपए अयलो । तस्सासमभूमिगिहंमि मोसजायं सयलमत्थि ॥३१॥
तो सिरवियणामिसवसविसज्जियासेसपरियणो राया । सुत्तो तयणु जणेणं, पारद्धा विविहउवयारा ॥३२॥
जाओ नय कोवि गुणो, आहूया मन्तवाइपमुहजणा । तेवि अकयपडियारा, गया विलक्खा सठाणेसु ॥३३॥
तो सुविसन्नमणेण व, सो जोगी वाहराविओ रन्ना । संभासिउमारद्धो, सायरदिन्नासणो य सयं ॥३४॥
पुरिसे य पेसिऊगं, खणाविओ तस्स आसमो झत्ति । निग्गयमसेसमोसं, आणीयं रायभवणंमि ॥३५॥
आहूओ तव्वेलं, महायणो दंसियं तयं मोसं । उवलक्खिऊण जं जस्स, आसि तं तस्स उवणीयं ॥३६॥

अह वुत्तो सो जोगी, रे रे पासंडियाहम! अणज्ज!। को एसो वुत्तन्तो, सो भीओ जंपइ न किंपि ॥३७॥
चेडो दूरीहूओ, सिद्धे कज्जंमि दुज्जणु व्व लहुं। सुबहुं विडंबिउं सो, जोगी माराविओ रन्ना ॥३८॥
इय दट्ठु तस्स मरणं, अयलो चिन्तेइ फुरियवेरग्गो। हा कह! जीवा धणलवविमोहिया जंति इह निहणं ॥३९॥
धणलोभेणं जीवो, हणेइ जीवे सया मुसं वयइ। पियपुत्तमित्तसुकलत्तपमुहलोयंपि वंचेइ ॥४०॥
इहलोइयतुच्छपओयणत्थमित्थं अकिंचलक्खंपि। काउं कंखइ जीवो, नय पिच्छइ तक्कयं दुक्खं ॥४१॥
अइगरुयलोहमुग्गरपहारभरगाढविहुरियसरीरा। हा किहणु दुग्गदुग्गइअवडे निवडंतिमे जीवा ॥४२॥
ता सयललोहसंखोहनिविडसरधोरणीखलणदक्खं। कवयं पिव पव्वज्जं, संपइ गिण्हामि दढसत्तो ॥४३॥
इय जा अचलो अचलियसंवेगभरो विचिंतए चित्ते। ता तत्थ समोसरिओ, सूरी गुणसुन्दरो नाम ॥४४॥
अयलोवि सुणियमुणिनाहआगमो आगओ गुरुसगासे। पणमियतप्पयपउमं, आसीणो उचियदेसंमि ॥४५॥
तयणु भवपरमनिव्वेयकारिणी लोहमोहनिम्महणी। विसयाणुरागपायवकरिणी संवेयसंजणणी ॥४६॥
संसारसमुत्थसमत्थवत्थुविगुणत्तपयडणपहाणा। सुइसुहकरेहि वयणेहिं, देसणा सूरिणा विहिया ॥४७॥
तं सोउं पडिबुद्धो, अयलो पुच्छेवि कहवि नरनाहं। गुरुणो तस्स समीवे, संविग्गो गिण्हए दिक्खं ॥४८॥
पडिवन्नदुविहसिक्खो, गुरुणा सह विहरए महीवलए। अरहन्ते अरिहन्ते, आराहइ सम्ममरुहन्ते ॥४९॥
पवयणवच्छल्लपरो, झायइ सिद्धे सया सुहसमिद्धे। सिवफलतरुणो गुरुणो, सेवइ दंसणविणयजुत्तो ॥५०॥



तत्र अचल-
मुनीश्वर-
कथा।

सुयवयपज्जायधरे, थेरे सुबहुस्सुए तवस्सी य । जह उचियं आराहइ, अभिक्खनाणोवओगपरो ॥५१॥
सीलव्वएसु आवस्सएसु परिहरइ दूरमइयारे । अपुव्वनाणग्गहणं, सुयभत्तिपरायणो कुणइ ॥५२॥
तवसा निकाइयाणं, कम्माण खउत्ति कुणइ गरुयतवं । खणलवझाणुवउत्तो, मुणीण भत्ताइ वियरेइ ॥५३॥
पडिभग्गस्स मयस्स व, नासइ चरणं सुयं अगुणणाए । नहु वेयावच्चचियं, सुहोदयं नासए कम्मं ॥५४॥
इय चिंतंतो वेयावच्चं पकुणइ अतिप्पमाणमणो । पवयणपभावणपरो, कुणइ समाहिं च संघस्स ॥५५॥
एवमणुत्तरदंसणनाणचरित्ते अतिप्पमाणस्स । उग्गतवकारिणो सुज्झमाणसुपसत्थलेसस्स ॥५६॥
अज्जियतित्थंकरनामकम्मणो तस्स अचलसाहुस्स । सव्वोसहिपमुहाओ, जायाओ विविहलद्धीओ ॥५७॥
इत्तो निभयपुरे रामचंदरन्नो विसिट्ठविज्जेहि । पयडिज्जंतेसु वि बहुभेसज्जोसहपओगेसु ॥५८॥
बहुमंततंतवाईहिं, कीरमाणासु अवि सुकिरियासु । रोगेण मरंति करी, तो आदन्नो निवो जाओ ॥५९॥
अह गुरुणाऽणुन्नाओ, अचलमुणी तत्थ आगओ तइया । पत्तो निवो मुणिं तं, नमिय निसन्नो उचियदेसे ॥६०॥
मुणिणावि निवइजुग्गो, सद्दंसणथूलमूलपरिकलिओ । पंचाणुव्वयखंधो, तिगुणव्वयगरुयसाहालो ॥६१॥
सिक्खावयपडिसाहो, निम्मलबहुनियमकुसुमसंकिन्नो । सुरमणुयसमिद्धिफलो, कहिओ गिहिधम्मकप्पतरू ॥६२॥
इय सोउ निवो जंपइ, पहु ! धम्ममिमं समीहिमो काउं । किंतु अकाले सिंधुरसंदोहं दट्ठु मरमाणं ॥६३॥
न गिहे न बहिं न जणे, न काणणे नय दिणे न रयणीए । मह संपइ संपज्जइ, रई मणागंपि मुणिपवर ! ॥६४॥

तो कहसु किंपि जेणं, सुत्थमणो हं करेमि धम्ममिमं । इय रन्ना पुणरुत्तं, वुत्तोवि हु सुमुणिसद्दूलो ॥६५॥
सावज्जकज्जवज्जी, सन्नाणो वि हु न किंपि जा भणइ । ता मुणिसमीवठियखेयरेण एवं निवो वुत्तो ॥६६॥
बहुलद्धिसमिद्धिसमन्नियस्स एयस्स समणसीहस्स । पयरेणूहिं संफुसिय कुणसु सज्जं करिसमूहं ॥६७॥
तं सुणिय निवो तुट्ठो, मुणिपयसंफुसियरेणुनियरेण । करिनियरं सव्वंपि हु, आमरिसावेइ तिक्खुत्तो ॥६८॥
विसमिव पीऊसहयं, तमं व दिणयरकिरणपडिरुद्धं । वेगेण रोगजायं, तं नट्ठं कुंजरकुलाओ ॥६९॥ [ग्रन्थाग्रं ८०००]
त पिच्छिवि अच्छरियं, अणत्थहरिसो इमं भणइ राया । भयवं! वारणवाही, केण निमित्तेण संजाओ? ॥७०॥
मुणिणा भणियं नरवर! जो जोई घाइओ तया तुमए । मरिउं अकामनिज्जरवसेण सो रक्खसो जाओ ॥७१॥
सरिऊण पुव्ववइरं, स तुह सरीरंमि अप्पभवमाणो । एयंपि होउ दुक्खं ति, कासी दंतीण रोगभरं ॥७२॥
मह चरणरेणुपुट्ठा, संपइ ते वाहिणो समुवसंता । सो रक्खसो पणट्ठो, सज्जं जायं करिकुडुंबं ॥७३॥
मुणिमाहप्पमणप्पं, दट्ठूणं गहियसुद्धगिहिधंमो । तुट्ठो राया पवयणपभावगो सावओ जाओ ॥७४॥

तत्र अचल
मुनीश्वर-
कथा ।

अयलोवि अतिप्पंतो, चरणाइसु काउ अणसणं सुमणो । सोहम्मे उववन्नो, तत्तो य चुओ विदेहंमि ॥७५॥
कच्छाविजए सिरिजयपुरीइ रन्नो पुरंदरजसस्स । देवी सुदंसणाए, चउदसवरसुमिणकयसूओ ॥७६॥
गब्भे पाउब्भूओ, समुचियसमए य जम्ममणुपत्तो । अहिसित्तो ससुरासुरवग्गेण सुमेरुसिहरंमि ॥७७॥
कयजयमित्तभिहाणो, उचिए समयंमि पव्वइउकामो । लोगंतियतियसेहिं, सविसेसपवुड्ढिउच्छाहो ॥७८॥



॥२५९॥

लोगाणं संवच्छरमच्छिन्नविदिन्नविहवसंभारो । चउसट्ठिसुरेसरविहियगरुयनिक्खमणवरमहिमो ॥७९॥
तिजयं एगजयंपिव, एगत्थागयसुरासुरनरेहिं । कुणमाणो पडिवन्नो निस्सामन्नं स सामन्नं ॥८०॥
तो सुक्कज्झाणानलसमूलनिद्दड्ढघाइकम्मदुमो । उप्पन्नकेवलालोयलोइयासेसतइलुक्को ॥८१॥
सीहासणोवविट्ठो, सिरउवरिं धरियसेयछत्ततिगो । नियदेहदुवालसगुणमहल्लकंकिल्लिकयसोहो ॥८२॥
चालियसियवरचमरो, पुरओ पक्खित्तकुसुमवरपयरो । निज्जियदिणयरमंडलभामंडलखंडियतमोहो ॥८३॥
सुरपहयदुन्दुहिस्सरपयडियदुज्जेयभावरिउविजओ । सव्वसभासाणुगदिव्ववाणिहयतिजयसन्देहो ॥८४॥
पायडियसुगइमग्गो, पडिबोहियभूरिभावभवियजणो । विहरित्ता चिरकालं, अणंतसुहसंपयं पत्तो ॥८५॥

**श्रीजैनशासनयनीनवनीरदस्य, श्रुत्वेति वृत्तमचलस्य मुनीश्वरस्य ।**
**सज्ज्ञानदर्शनतपश्चरणादिकेषु, श्रद्धामतृप्तमनसो मुनयो विधत्त ॥८६॥**

## ॥ इत्यचलमुनीश्वरचरित्रम् ॥

इत्युक्तमतृप्तिस्वरूपं द्वितीयं श्रद्धालक्षणम्, सांप्रतं शुद्धदेशनास्वरूपं तृतीयमभिधित्सुस्तदधिकारिणं तावदाह—

**सुगुरुसमीवे संमं, सिद्धंतपयाण मुणियत्तत्थो । तयणुन्नाओ धन्नो, मज्झत्थो देसणं कुणइ ॥१५॥**

सुगुरोः—संविग्नगीतार्थाचार्यस्य समीपे सम्यक्—पौर्वापर्यपर्यालोचनेन सिद्धान्तपदानामागमवाक्यानां पदार्थवाक्यार्थमहावाक्या-

थैदम्पर्यार्थप्रकारेण मुणिततत्त्वार्थो विज्ञातपरमार्थः—

उक्तं च—

"पयवक्कमहावक्कयअइदम्पज्जत्थवत्थु चत्तारि । सुयभावावगमम्मी, हंदि पगारा विणिद्दिट्ठा ॥

संपुन्नेहिं जायइ, भावस्स य अवगमो इहरहा उ । होइ विवज्जासोवि हु, अणिट्ठफलओ य सो नियमा । इति

एवंविधोऽपि गुरुणाऽनुज्ञातो, न स्वातन्त्र्येण मौखर्यास्थैर्यातिरेकादत एव धन्यो धर्मधनार्हत्वान्मध्यस्थः—स्वपक्षपरपक्षयो राग-द्वेषरहितः सद्भूतवादी देशनां—धर्मकथां करोतीति ।

तथा—

**अवगयपत्तसरूवो, तयणुग्गहहेउभाववुड्ढिकरं । सुत्तभणियं परूवइ, वज्जंतो दूरमुम्मग्गं ॥१६॥**

अवगतं—सम्यगवबुद्धं पात्रस्य श्रावणीयस्य प्राणिनः स्वरूपमाशयो येन सोऽवगतपात्रस्वरूपः ।

तथाहि—

बालमध्यमबुद्धिबुद्धभेदात्त्रिविधं पात्रं श्रावणीयं भवति । तत्र—

"बालः पश्यति लिङ्गं, मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् । आगमतत्त्वं तु बुधः, परीक्षते सर्वयत्नेन" ॥१॥



तेषां च देशनाविधिरेवम्—

"बाह्यचरणप्रधाना, कर्तव्या देशनेह बालस्य । स्वयमपि च तदाचारस्तदग्रतो नियमतः सेव्यः ॥१॥

सम्यग्लोचविधानं ह्यनुपानत्कत्वमथ धरा शय्या । प्रहरद्वयं रजन्यां स्वापः शीतोष्णसहनं तु ॥२॥
षष्ठाष्टमादिरूपं, चित्रं बाह्यं तपो महाकष्टम् । अल्पोपकरणसन्धारणं च तच्छुद्धता चैव ॥३॥
गुर्वी पिण्डविशुद्धिश्चित्रा द्रव्याद्यभिग्रहाश्चैव । विकृतीनां संत्यागस्तथैकसिक्थादिपारणकम् ॥४॥
अनियतविहारकल्पः, कायोत्सर्गादिकरणमनिशं च । इत्यादि बाह्यमुच्चैः, कथनीयं भवति बालस्य ॥५॥
मध्यमबुद्धेस्त्वीर्यासमितिप्रभृतित्रिकोटिपरिशुद्धम् । आद्यन्तमध्ययोगैर्हितदं खलु साधुसद्वृत्तम् ॥६॥
अष्टौ साधुभिरनिशं मातर इव मातरः प्रवचनस्य । नियमेन न मोक्तव्याः, परमं कल्याणमिच्छद्भिः ॥७॥
एतत्सचिवस्य सदा, साधोर्नियमान्न भवभयं भवति । भवति च हितमत्यन्तं, फलदं विधिनाऽऽगमग्रहणम् ॥८॥
गुरुपारतंत्र्यमेव च, तद्बहुमानात्सदाशयानुगतम् । परमगुरुप्राप्तेरिह, बीजं तस्माच्च मोक्ष इति ॥९॥
इत्यादिसाधुवृत्तं, मध्यमबुद्धेः सदा समाख्येयम् । आगमतत्त्वं तु परं, बुधस्य भावप्रधानं तु ॥१०॥
वचनाराधनया खलु, धर्मस्तद्बाधया त्वधर्म इति । इदमत्र धर्मगुह्यं, सर्वस्वं चैतदेवास्य" ॥११॥ इत्यादि ।

अथवा पारिणामिकापारिणामिकातिपारिणामिकभेदात्त्रिविधं पात्रमित्यादि पात्रस्वरूपमवगम्य श्रद्धावांस्तस्य पात्रस्यानुग्रहहेतुरुपकारी यो भावः–शुभपरिणामस्तस्य वृद्धिकरं तदपि सूत्रभणितमागमोक्तं प्ररूपयति–व्याचष्टे वर्जयन्–उत्सृजन् दूरं यथा भवत्येवमुन्मार्गं–मोक्षप्रतीपां वर्त्तिनीम् ।

अयमिहाभिप्रायः–सम्यक् पात्रस्वरूपमवगम्य तद्भाववृद्धिकारिकामनुवृत्त्यादिदोषरहितां सिद्धान्तमार्गानुत्तीर्णां देशनां विदधाति,

श्रेणिकं प्रति निर्ग्रन्थसाधुवत् ।



तथा हि—

मगहाजणवयअवयंसरायगिहनगरनायगो हुत्था । दुत्थियजणपरिपालणपउणमणो सेणिओ राया ॥१॥
सो अन्नदिणे सह चलिरफारसिंगारसारसुद्धंतो । सरहसनमन्तसामन्तमंतिसंदोहसंजुत्तो ॥२॥
हयगयरहवरपाइक्कचक्कअक्कंतसयलदिसिचक्को । हत्थिगओ सियचामरकयसोहो धरियसिरछत्तो ॥३॥
पुरओ पयट्टमागहमंडलगिज्जंतकंतकित्तिभरो । पत्तो विहारजत्ताइ, चेइए मंडिकुच्छिसि ॥४॥
तत्थुवविट्ठं दिट्ठा, तरुणो तरुणं निएवि मुणिमेगं । रइरहियं पिव मयणं, सुरूवमिय चिंतइ नरिन्दो ॥५॥
अज्जस्स अहो ! वन्नो, अहो ! सुरूवं अहो ! अहो ! मुत्ती । खन्ती अहो ! पहाणा, भोगेसु अहो ! असंगत्तं ॥६॥
अह नमिय तस्स पाए, कयंजली नाइदूरगो भणइ । तरुणत्तणेवि अज्जो ! उवट्ठिओ कीस सामन्ने ? ॥७॥
तो तयणुग्गहहेउं, सहेउअं सुद्धभावबुद्धिकरं । पत्ताणुरूवमेवं गिरं महेसी इय वएसी ॥८॥
मगहेस ! अणाहो हं, नाहो मह विज्जइ नहु नरिंद ! अणुकम्पगं सुहिं वा, नहु किंचि समेमि हं इत्थ ॥९॥
तेणाहं पडिवन्नो, दिक्खं बहुदुक्खलक्खखयजणणिं । अह हासवसविसप्पन्तदन्तकन्ती भणइ राया ॥१०॥

तत्र निर्ग्रन्थ-
साधुकथा ।

वरलक्खणवंजणगुणपिसुणियबहुविहववित्थरस्सावि । तुह मुणिपहु ! कह नाहो, न आसि अणुकंपग सुही वा ? ॥११॥
तो होमि अहं नाहो, तुज्झं बहुसयणपरियणसमेओ । भुंजेसु विसयसुक्खं, सुदुल्लहं पुणवि माणुस्सं ॥१२॥

तो सिद्धंताणुगयं, निवमणअणुवित्तिविरहियं निउणं । जुत्तिसुजुत्तं एयं, फुडक्खरं जंपियं मुणिणा ॥१३॥
भो ! भो ! सेणियनरवर ! तुमं अणाहोसि अप्पणावि धुवं । तो अप्पणा अणाहो, परेसिं नाहो कहं होसि ? ॥१४॥
एवं वुत्तो संतो, संभंतो नरवरो इमं आह । चउरंगबलजुओ हं, निरुवमभोगेहि कलिओ हं ॥१५॥
आणाइस्सरियसमिद्धरज्जजुत्तो अहं तओ तुमए । वुत्तो कहं अणाहो ? वयसु मुसं मा हु तं भंते ! ॥१६॥
अह मुणिणा वज्जरियं, एयस्स न पत्थिवा ! मुणसि अत्थं । नेव य उत्थाणं ता एगग्गमणो निसामेसु ॥१७॥
कोसंबीनयरीए, उवहसियकुबेरविहववित्थारो । आसि बहुसयणवग्गो, मह जणओ भुवणपयडजसो ॥१८॥
मगहाहिव ! मज्झ तया, पढमवइच्चिय सुदुस्सहा हुत्था । अच्छिवियणा महंती, तव्वसओ देहदाहो य ॥१९॥
देहंतो भमिरमहंतनिसियकुंतु व्व असणिनिहउ व्व । अइगाढनयणपीडाभरेण विवसो अहं जाओ ॥२०॥
बहुमंततंतविज्जाविऊ जणो मम करेइ तेगिच्छं । नय मोएइ दुहाओ, अणाहया निव ! इमा मज्झ ॥२१॥
मम कारणेण जणओ, गिहसव्वस्संपि देइ विज्जाणं । नय मोएइ दुहाओ, अणाहया निव ! इमा मज्झ ॥२२॥
बाहप्पवाहधोईयवयणा जणणीवि झूरए बहुयं । नय मोएइ दुहाओ, अणाहया निव ! इमा मज्झ ॥२३॥
किंकायव्वविमूढा, जिट्ठकणिट्ठा रुयंति तह बंधू । नय मोयंति दुहाओ, अणाहया निव ! इमा मज्झ ॥२४॥
भयणीउ वामकरयलसंठियवयणा रुयंति निहुयसरं । नय मोयंति दुहाओ, अणाहया निव ! इमा मज्झ ॥२५॥
उम्मुक्कपाणभोयणविलेवणाभरणपमुहवावारा । नयणेहि अंसुपुन्नेहिं, सिंचिरी मज्झ वच्छयलं ॥२६॥

पासाउ अप्फिडंती, खणंपि झूरेइ भारियावि बहुं । नय मोएइ दुहाओ, अणाहया निव ! इमा मज्झ ॥२७॥
कहमवि अणियत्तंतीइ, अच्छिवियणाइ थेवमित्तंपि । अहह ! इह नत्थि कोवि हु, नाहो इय चिंतयंतेणं ॥२८॥
विहिया मए पइन्ना, जइ मुंचिज्जा इमाइ वियणाए । तो चत्तसव्वसंगो, काहं अणगारियं पवरं ॥२९॥
एवं विहियपइन्नस्स, मज्झ रयणीइ आगया निद्दा । खयमुवगया य वियणा, जाओ म्हि पुणन्नवसरीरो ॥३०॥
जाए पभायसमए, तत्तो आपुच्छिउं सयणवग्गं । सिरिसव्वण्णुपणीयं, सुद्धं दिक्खं पवन्नो हं ॥३१॥
भो ! भो ! रायगिहेसर ! परस्स तह अप्पणो तदुभयस्स । सचराचरजियलोयस्स, तयणु नाहो अहं जाओ ॥३२॥

तथा—

इमा हु अन्नावि अणाहया निवा ! तमेगचित्तो निहुओ सुणेहि । नियंठधम्मं लहियाणवी जहा, सीयंति एगे बहुकायरा नरा ॥३३॥
जो पव्वइत्ताण महव्वयाणि, सम्मं च नो फासइ य पमाया । अणिग्गिहप्पा य रसेसु गिद्धे, न मूलओ छिंदइ बंधणं से ॥३४॥
आउत्तया जस्स न अत्थि काई, इरियाइ भासाइ तहेसणाए । आयाणनिक्खेवदुगुंछणाए, न वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥३५॥
चिरंपि से मुंडरुई भवित्ता, अथिरव्वए तवणियमेहिं भट्ठे । चिरंपि अप्पाण किलेइसत्ता, न पारए होइ हु संपराए ॥३६॥
पुल्ले व मुट्ठी जह से असारे, अयंतिए कूडकहावणे वा । राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥३७॥
कुसीललिंगं इह धारयित्ता, इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता । असंजए संजय लप्पमाणे, विणिघायमावज्जइ से चिरंपि ॥३८॥
विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं । एमेव धम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो ॥३९॥



तत्र निर्ग्रन्थ
साधुकथा ।

जे लक्खणं सुमिण पउंजमाणे, निमित्तकोऊहलसंपगाढे । कुहेडविज्जासवदारजीवी, न गच्छई सरणं तंमि काले ॥४०॥
तमंतमेणेव उ से असीले, सया दुही विप्परियासुवेइ । संधावई नरगतिरिक्खजोणिं, मोणं विराहित्तु असाहुरूवे ॥४१॥
उद्देसियं कीयगडं नियागं, न मुञ्चइ किंचि अणेसणिज्जं। अग्गीव वा सव्वभक्खी भवित्ता, इओ चुए गच्छइ कट्टु पावं ॥४२॥
न तं अरी कंठछित्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा । से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते, पच्छाणुतावेण दयाविहूणे ॥४३॥
निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स, जे उत्तिमट्ठं विवज्जासमेइ । इमेवि से नत्थि परेवि लोए, दुहओवि से झिज्झइ तत्थ लोए ॥४४॥
एमेवऽहाछंदकुसीलरूवे, मग्गं विराहित्तु जिणुत्तमाणं । कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा, निरट्ठसोया परियावमेइ ॥४५॥
सुच्चाण मेहावि ! सुभासियं इमं, अणुसासणं नाणगुणोववेयं । मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं, महानियंठाण वए पहेणं ॥४६॥
चरित्तमायारगुणण्णिए तओ, अणुत्तरं संजम पालिया णं । निरासवे संखवियाण कम्मं, उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥४७॥
एवुग्गदंतेवि महातवोहणे, महामुणी महापइण्णे महायसे । महानियंठिज्जमिणं महासुयं, से काहए महया वित्थरेणं ॥४८॥
एवं विसुद्धं समयाणुबद्धं, सुदेसणं साहुकयं निसम्म । चंचंतरोमंचपवंचगत्तो, कयंजली आह इमं नरिंदो ॥४९॥
तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं, लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी। तुब्भे सणाहा य सबंधवा य, जं भे ठिया मग्गि जिणुत्तमाणं ॥५०॥
तुमेव नाहो सि अणाहयाणं, जीवाण सव्वाण चराचराण । अणाहया सुट्ठुवदंसिया इमे, इच्छामि संमं अणुसट्ठिमेयं ॥५१॥
जो पुच्छिऊणं तुह झाणविग्घो, मए कओ कोवि महानियंठ !। निमंतिया जं पहु ! भोगकज्जे, पसीय सव्वंपि तयं खमेसु ॥५२॥
एवं थुणित्ताण स रायसीहो, महंतभत्तीइ णगारसीहं, पहिट्ठचित्तो परिवारजुत्तो, पत्तो नरिंदो निययंमि ठाणे ॥५३॥

साहूवि सुद्धाइ स देसणाए, चिरं विबोहित्तु पभूयभव्वे । खवित्तु सव्वंपि हु कंमजालं, पत्तो महाणंदपयं महप्पा ॥५४॥
एवं जगत्त्रितयविस्मयकारि हारि, निर्ग्रन्थसाधुवृषभस्य निशम्य वृत्तम् ।
सत्साधवो गुरुसमीपविबुद्धतत्त्वाः, संशुद्धदेशनविधौ कुरुत प्रयत्नम् ॥५५॥

॥ इति निर्ग्रन्थसाधुकथा ॥

आह—देशना धर्मोपदेशः, स च समभावस्य साधोरविशेषेण दातुमुचितः, किं सामायिकबाधाविधायिनाऽतिसंधानप्रायेण पात्रापात्रविचारेणेति । नैतदस्ति । तदनुग्रहाय प्रवृत्तावतिसंधानायोगात्, संनिपातातुरस्य क्षीरशर्करादिनिषेधनतः क्वाथादिप्रदानवत् । अत एव सामायिकबाधापि नास्ति, सर्वत्रानुग्रहबुद्धेस्तुल्यत्वाद् । अथवा सूत्रकार एव युक्त्यन्तरमाह ।

सव्वंपि जओ दाणं, दिन्नं पत्तंमि दायगाण हियं । इहरा अणत्थजणगं, पहाणदाणं च सुयदाणं ॥९७॥

सर्वमपि यतो दानं-वितरणं दत्तं-वित्तीर्णं पात्रे "सुपां सुपो भवन्ति" इति वचनात् पात्राय उचितग्राहकाय—
"जीवादिपदार्थज्ञो, यः समभावेन सर्वजीवानाम् । रक्षार्थमुद्यतमतिः, स यतिः पात्रं भवति दातुः" ॥
इत्यादिना श्रीमदुमास्वातिवाचकवर्णिताय-दायकानां-दातॄणां हितं-कल्याणकारि भवतीति शेषः । इतरथा कुपात्रायानिरुद्धाश्रवद्वाराय दत्तमिति प्रकृतम् अनर्थजनकं-संसारदुःखकारणं स्यादिति गम्यते । किंचातः प्रधानदानं च वर्तते श्रुतदानं देशनादिरूपमिति ।
ततः किमित्याह—

सुट्ठुयरं च न देयं, एयमपत्तंमि नायतत्तेहिं । इय देसणा विसुद्धा, इहरा मिच्छत्तगमणाई ।।९८।।

सुष्ठुतरम्–अतिशयेन चकारस्यावधारणार्थत्वान्नदेयमेव, एतत्–श्रुतोपदेशादिदानमपात्राय सप्तम्याश्चतुर्थ्यर्थत्वात् ज्ञाततत्त्वैर्विदितागमसद्भावैः—

उक्तं च—

"रत्तो दुट्ठो मूढो, पुव्विं वुग्गाहिओ य चत्तारि । उवएसस्स अणरिहा, अरिहो पुण होइ मज्झत्थो" ।।

इत्यपात्राणां परिहारेण पात्राणां चौचित्यवृत्त्या देशनापि क्रियमाणा शुद्धाऽभिधीयते, इतरथाऽन्यथा क्रियमाणायां तस्यां श्रोतृणां मिथ्यात्वगमनम्, आदिशब्दात् प्रद्वेषातिशयाद्भक्तपानशय्याव्यवच्छेदादयः प्राणहान्यादयश्च देशकस्य दोषाः संभवन्तीति। अत एव भावानुवृत्तिसारो गीतार्थः श्लाघ्यते ।

यदवादि—

"मग्गे य जोयइ तहा, केई भावाणुवत्तणनएण, बीयाहाणं पायं च तदुचियाणं कुणइ एसो" ।। गीतार्थ इति।

ननु सूत्रभणितं प्ररूपयतीत्युक्तम्, यत्पुनःसूत्रानुक्तं विवादपदं लोकानां तत्र पृच्छयमानानां गीतार्थानां किमुचितमित्याह—

जं च न सुत्ते विहियं, नय पडिसिद्धं जणंमि चिररूढं । समइविगप्पियदोसा, तंपि न दूसंति गयित्था ।।९९।।

इह चशब्दः पुनरर्थ इति यत् पुनरर्थजातमनुष्ठानं वा नैव सूत्रे–सिद्धान्ते विहितं करणीयत्वेनोक्तं चैत्यवन्दनावश्यकादिवत्, न

च प्रतिषिद्धं प्राणातिपातादिवत्, अथ च जने-लोके चिररूढमज्ञातादिभावं स्वमतिविकल्पितदोषात्-स्वाभिप्रायसंकल्पितदूषणात् तदपि, आस्तामागमोक्तं न दूषयन्ति-न युक्तमेतदिति परस्य नोपदिशन्ति संसारवृद्धिभीरवो गीतार्था-विदितागमतत्त्वाः, यतस्ते एवं श्रीभगवत्युक्तं पर्यालोचयन्ति—

तथाहि—

"जे णं मद्दुया! अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा वागरणं वा अन्नायं वा अदिट्ठं वा अस्सुयं वा अपरिन्नायं वा बहुजणमज्झे आघवेइ पन्नवेइ परूवेइ दंसेइ निदंसेइ उवदंसेइ, से णं अरहंताण आसायणाए वट्टइ, अरहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए वट्टइ, केवलीणं आसायणाए वट्टइ, केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए वट्टइ" त्ति। इदं च गीतार्थानां सदा चेतसि चकास्ति।

तथाहि—

**संविग्गा गीयतमा, विहिरसिया पुव्वसूरिणो आसि। तददूसियमायरियं, अणइसई को निवारेइ ॥१००॥**

'संविग्ना'मंक्षु मोक्षाभिलाषिणो 'गीयतम'त्ति पदैकदेशे पदप्रयोगो यथा भीमसेनो भीम इति, ततो गीता-गीतार्थाः तमपि प्रत्यये गीतार्थतमा इति भवत्यतिशयगीतार्था इति भावः, तत्काले बहुतमागमसद्भावात्। तथा विधिरसो विद्यते येषां विधिरसिका विधिबहुमानिनः संविग्नत्वादेव पूर्वसूरयश्चिरंतनमुनिनायका आसन्-अभूवन् तैरदूषितमनिषिद्धमाचरितं सर्वधार्मिकलोकव्यवहृतमनतिशयी-विशिष्टश्रुतावध्याद्यतिशयविकलः को निवारयति? पूर्वपूर्वतरोत्तमाचार्याशातनाभीरुर्न कश्चिदिति।

तथैतदपि गीतार्थाः परिभावयन्ति—

**अइसाहसमेयं जं उस्सुत्तपरूवणा कडुविवागा । जाणंतेहिवि दिज्जइ निद्देसो सुत्तबज्झत्थे ॥१०१॥**

ज्वलज्ज्वालानलप्रवेशकारिनरसाहसादप्यधिकमतिसाहसमेतद्वर्त्तते यदुत्सूत्रप्ररूपणा–सूत्रनिरपेक्षदेशना कटुविपाका–दारुणफला जानानैरवबुध्यमानैरपि दीयते वितीर्यते निर्देशो–निश्चयः सूत्रबाह्ये–जिनेन्द्रागमानुक्तेऽर्थे–वस्तुविचारे । किमुक्तं भवति ?

"दुब्भासिएण इक्केण मरीई दुक्खसागरं पत्तो । भमिओ कोडाकोडिं, सागरसरिनामधिज्जाणं ॥१॥
उस्सुत्तमायरंतो, बंधइ कम्मं सुचिक्कणं जीवो । संसारं च पवड्ढइ, मायामोसं च कुव्वइ य ॥२॥
उम्मग्गदेसओ मग्गनासओ गूढहियमाइल्लो । सढसीलो य ससल्लो, तिरियाउं बंधए जीवो ॥३॥
उम्मग्गदेसणाए, चरणं नासंति जिणवरिंदाणं । वावन्नदंसणा खलु, नहु लब्भा तारिसा दट्ठुं" ॥४॥

इत्याद्यागमवचनानि श्रुत्वापि स्वाग्रहग्रहग्रस्तचेतसो यदन्यथाऽन्यथा व्याचक्षते विदधति च तन्महासाहसमेव, अनर्वाक्पारासारसंसारपारावारोदरविवरभाविभूरिदुःखभाराङ्गीकारादिति ।

आह–किमेवमागमार्थमवबुध्यापि कोप्यन्यथावादमाद्रियते ? सत्यमाद्रियते । यत आह—

**दीसंति य ढड्ढसिणो, णेगे नियमइपउत्तजुत्तीहिं । विहिपडिसेहपवत्ता, चेइयकिच्चेसु रूढेसु ॥१०२॥**

दृश्यन्ते दुःषमारूपे वक्रजडबहुले काले 'ढड्ढसिणो' महासाहसिका रौद्रादपि भवपिशाचादबिभ्यतोऽनेके निजमतिप्रयुक्ताभिरात्मीयबुद्धिव्यापारिताभिर्युक्तिभिरुपपत्तिभिर्विधिप्रतिषेधप्रवृत्ता इति कासांचित् क्रियाणामागमानुक्तानामपि विधौ–करणे प्रवृत्ता अन्यासा-

मागमानिषिद्धतया चिरंतनजनाचरितानामप्यविधिरयुक्ता एता न कर्त्तव्या धार्मिकैरित्येवं प्रतिषेधे प्रवृत्ताः, केषु ? चैत्यकृत्येषु–स्नात्र-बिम्बकारणादिषु रूढेषु–पूर्वपुरुषपरंपरया प्रसिद्धेषु पूर्वरूढिरविधिः, इदानींतनप्रवृत्तिर्विधिरित्येवं वादिनोऽनेके दृश्यन्ते महासाहसिका इति।

ननु तेषां स्वमत्या धर्मार्थिनां सर्वयत्नेन तथा प्रवृत्तिर्गीतार्थैः श्लाघनीया नवेत्याह—

**तं पुण विसुद्धसद्धा, सुयसंवायं विणा न संसंति। अवहीरिऊण नवरं, सुयाणुरूवं परूवंति ॥१०३॥**

तां पुनस्तेषां प्रवृत्तिं विशुद्धा–ऽऽगमबहुमानसारा श्रद्धा येषां ते विशुद्धश्रद्धाः श्रुतसंवादं विना–श्रुतभणितमन्तरेण न शंसन्ति-नानुमन्यन्ते, नवरं–केवलमवधीर्य–मध्यस्थभावेनोपेक्ष्य श्रुतानुरूपं प्ररूपयन्ति–यथा सूत्रे भणितं तथैव विवदिषूणामुपदिशन्तीति।

इत्युक्तं शुद्धदेशनारूपं सप्रपञ्चं तृतीयं श्रद्धालक्षणम्, संप्रति स्खलितपरिशुद्धिरिति चतुर्थं श्रद्धालक्षणमाह।

**अइयारमलकलंकं, पमायमाईहि कहवि चरणस्स। जणियंपि वियडणाए, सोहंति मुणी विमलसद्धा॥**

अतिचरणमतिचारो–मूलोत्तरगुणमर्यादातिक्रमः स एव डिण्डीरपिण्डपाण्डुरगुणगणमालिन्यहेतुत्वान्मलं तच्चरणशशधरस्य कलङ्क इव तं प्रमादादिभिः–प्रमाददर्पकल्पैः, आकुट्टिकायाश्चारित्रिणः प्रायेणासंभवात्, कथमपि कण्टकाकुलमार्गे यत्नेनापि गच्छतः कण्टक-भङ्गवच्चरणस्य–चारित्रस्य जनितमुत्पादितम्। आकुट्टिकादिनां पुनः स्वरूपमिदम्—

"आउट्टिया उ विज्ञा, दप्पो पुण होइ वग्गणाईओ। विगहाइओ पमाओ, कप्पो पुण कारणे करणं"॥

उपलक्षणं चैतद्दशविधायाः प्रतिसेवायाः। सा चेयम्—

"दप्पंप्पमायंणाभोगाँ, आउंरे आवईसु यए। संकिएँ सहसागाँरे, भएं पओसे य वीमंसा ॥

अपिशब्दः संभावने, संभाव्यत एतच्चारित्रिणो विकटनयाऽलोचनया शोधयन्ति–अपनयन्ति मुनयो–यतयो विमलश्रद्धाः निष्कलङ्कधर्माभिलाषाः शिवभद्रमुनिवत्।

तथाहि—

इह कोसंबिपुरीए, पुव्वदिसुज्जाणभवणकयवासो। संनिहियपाडिहेरो, जक्खो निवसइ फरसुपाणी ॥१॥

अन्नदिणे तब्भवणे, सुत्तत्थविऊ सुदंसणो साहू। काउस्सग्गेण ठिओ, विसेसपडिवन्नतवकम्मो ॥२॥

तच्चित्तखोहणत्थं, जक्खो तं डसइ भुयगरूवेणं। करिरूवेणं पीडइ, भेसइ अट्टट्टहासेहिं ॥३॥

तहवि हु अक्खुहियमणं, तं समणं दट्ठु फरसुपाणिसुरो। नमिउं विन्नवइ इमं, उच्छलियातुच्छहरिसभरो ॥४॥

उवसग्गवग्गमुग्गं, जं तुह मुणिपवर! पावभरसज्जो। सज्जोगसालिणोवि हु, काहमहं खमसु तं भंते! ॥५॥

इय चरणजुयलसंठवियमउलिकमलो खमाविउं साहुं। सीसो व्व समीवगओ, जक्खो तं सेवए संमं ॥६॥

अह तत्थ निवपुरोहियपुत्ता सिवभद्दसिरियगभिहाणा। पत्ता तं अइदुक्करतवकिसियंगं नियंति मुणिं ॥७॥

तो तेहि सहासमिणं, पयंपियं जं मुणिंद! धम्मत्थं। पीडिज्जइ किर अप्पा, बाढमजुत्तं तयं एयं ॥८॥

जओ—

धम्माओ धणलाभो, तत्तो कामो तओ य संसारो। धम्मस्स अज्जणं ता मूलाउ चिय दढमजुत्तं ॥९॥

इय ते उवहासपरे दट्ठुं जक्खो फुरंतगुरुकोवो । उप्पाडिय सियफरसुं, पहाविओ तेसि हणणत्थं ॥१०॥
तयणु भयलोललोयणतरलियतारा पकंपिरसरीरा । लग्गा मुणिचलणेसुं, भणिरा तं अम्ह सरणं ति ॥११॥
ते दट्ठु साहुसरणे जक्खो जाओ पसंतमन्नुभरो । पारियउस्सग्गेणं, अह मुणिणा ते इमं वुत्ता ॥१२॥
भद्दा! सयलं किरियं, कुणंति मुणिणो सिवत्थमेव सया । तं पुण लब्भइ गयसयलरागदोसेण धंमेण ॥१३॥
धंमेण सरागेण उ, लब्भइ सग्गाइयं फलं सोवि । जायइ परंपराए, नियमेणं मुक्खहेउत्ति ॥१४॥
धम्माओ धणलाभो, त्ति जंपि वुत्तं तयंपि नहु जुत्तं । सव्वेवि हु पुरिसत्था, धम्माउ च्चिय जओ भणिया ॥१५॥

उक्तं च—

"धनदो धनार्थिनां धर्मः, कामदः सर्वकामिनाम् । धर्म एवापवर्गस्य पारंपर्येण साधकः" ॥१६॥
जंपि हु धणभोगाई, भणियं भवकारणं तमवि इत्थ । नेयं किलिट्ठसत्ताण, न उण इयराण जं भणियं ॥१७।
सा कावि कला झायन्ति नियमणे जाणिऊण परमत्थं । न्हायन्ति घडसएणवि, छिप्पंति न बिंदुणा चेव ॥१८॥
सुव्वइ य भरहसगराइणो इहं सुचिरभुत्तवरभोगा । होउं अकिलिट्ठमणा, लोयग्गठियं पयं पत्ता ॥१९॥
इय सोउं पडिबुद्धा, पुणो पुणो खामिउं तमवराहं । तस्स मुणिस्स समीवे, ते दोन्नि वयं पवज्जंति ॥२०॥
मुणियजइजुग्गकिरिया, गुरुमूले पढियबहुयसुत्तत्था । सुचिरं उग्गविहारा, खंतिपहाणा तवंति तवं ॥२१॥
अह असुहकंमवसओ, सिरिओ सिढिलेइ चरणकरणभरं । धरइ मणे जाइमयं, न कुणइ विणयं गुरूसुं पि ॥२२॥

तत्र शिव-
भद्रमुनि-
कथा ।

तो सिवभद्दो सिरियं, भणेइ भो भद्द ! चरणकरणंमि । भवसयसहस्सदुलहे, खग्गंपि किह होसि सिढिलमणो ? ॥२३॥

गुरुविणयपरो निच्चं, मणंपि मा कुणसु जाइमयमेवं । जं जाइमयाईहिं, दुहिओ परिभमइ भवगहणे ॥२४॥

उक्तं च—

"जाइ[1]कुल[2]रूव[3]बल[4]सुय[5]तव[6]लाभि[7]स्सरियं[8] अट्ठमयमत्तो । एयाइं चिय बंधइ, असुहाइं बहुं च संसारे" ॥२५॥

तो भद्द ! निययदोसं, एयं गीयत्थसुगुरुमूलंमि । तं आलोयसु संमं, नाउं आलोयणाइ विहिं ॥२६॥

तद्यथा—

पडिसेवा[1] पडिसेवग दोस[2] गुणा[3] गुरुगुणा[4]य इह नेया । सम्मविसोहीइ गुणा[5] सम्ममणालोयउं सिक्खा[6] ॥२७॥

तह पडिसेवा दप्प[1]प्पमाय[2]णाभोग[3] सहसकारे य[4] । आउर[5] आवई[6] संकिय[7] भय[8]प्पओसा य[9] वीमंसा[10] ॥२८॥

वग्गणमाई दप्पो, इह कंदप्पो उ भन्नइ पमाओ । विस्सरियमणाभोगो, सहसाकारो अकम्ह त्ति ॥२९॥

छुहतण्हवाहिघत्थो, जं सेवइ आउरा भवे एसा । दव्वाइअलंभे पुण, चउव्विहा आवई होइ ॥३०॥

संकियमाहाकम्माइ, संकिए सीहमाईणं च भयं । कोहाइओ पओसो, वीमंसा सेहमाईणं ॥३१॥ दारं ।

"आकंपइत्ता[1] अणुमाणइत्ता[2] जं दिट्ठं[3] बायरं[4] व सुहुमं[5] वा[6] । छन्नं[7] सद्दाउलयं[8], बहुजण[9] अवत्त[10] तस्सेवी ॥३२॥

इय पडिसेवगदोसा, आकंपिय तत्थ भत्तिमाईहिं । गुरुअवराहं लहुयाणुमाणओ तहय आलोए ॥३३॥

जं दिट्ठंति परेणं, आलोयइ बायरंति न य सुहुमं । अह सुहुमं आलोयइ, विस्संभत्थं न उण थूलं ॥३४॥

छन्नं अव्वत्तसरं, सद्दाउलयंति तुरियसद्देणं । तं चेव य पच्छित्तं, आलोयइ बहुजणाण पुरो ॥३५॥
अव्वत्तस्स अगीयस्स, तं च आसेवगो य तस्सेवी । इत्तो दस आलोयगगुणा इमे हुंति नायव्वा ॥३६॥
जाई[1]कुल[2]विणयउवसम[4]इंदियजय[5]नाण[6]दंसण[7]समग्गा । अणणुतावि[8] अमाई[9], चरणजुयाऽऽलोयगा भणिया ॥३७॥
जाइजुओ पाएणं, न कुणइ असुहं कयं तु आलोए । कुलसंपन्नो संमं, पच्छित्तं वहइ गुरुदिन्नं ॥३८॥
नाणी किच्चाकिच्चं, जाणइ सद्दहइ दंसणी सोहिं । चरणी तं पडिवज्जइ, सेसपया हुंति पयडत्था ॥३९॥
आयारवं[1]माहारवं[2] ववहार[3]उव्वीलए[4] पकुव्वी य[5] । अपरिस्सावी निज्जव[6] अवायदंसी[7] गुरू भणिओ ॥४०॥
नाणायाराइजुओ, आयारवं[1] सीसकहियमवराहं । धारंतो आहारवं[2], ववहारो पंचहा इणमो ॥४१॥
आगम[1] सुय[2] आणा[3] धारणा[4] य जीयं[5] च होइ ववहारो । केवलिमणोहिचउदसदसनवपुव्वी य पढमो त्थ ॥४२॥
आयारप्पकप्पाई सव्वं सेसं सुयं विणिदिट्ठं । देसंतरट्ठियाणं, गूढपयाऽऽलोयणा आणा ॥४३॥
गीयत्थाओ पुव्विं, अवधारिय धारणा तहिं दिंते । पायच्छित्तं जीयं, रूढं वा जं जहिं गच्छे ॥४४॥
लज्जाइ निगूहंतं, अवलज्जं कुणइ सो उ उव्वीलो । गरुयस्सवि पावस्स उ, सुद्धिसमत्थो पकुव्वी य ॥४५॥
अप्परिसावि गभीरो, निज्जवगो दुब्बलस्स निव्वहगो । नरगाइदुक्खदंसी, अवायदंसी ससल्लाणं ॥४६॥

अवि य—

सल्लुद्धरणनिमित्तं, खित्तंमी सत्त जोयणसयाइं । काले बारस वासा, गीयत्थगवेसणं कुज्जा ॥४७॥

जओ—

नासेइ अगीयत्थो, चउरंगं सव्वलोयसारंगं । नट्ठंमि य चउरंगे, नहु सुलहं होउ चउरंगं ॥४८॥

किंच—

अक्खंडियचारित्तो, वयगहणाओ य जो य गीयत्थो । तस्स सगासे दंसणवयगहणं सोहिगहणं च ॥४९॥

एवंविहगुरुपासे, लज्जागारवभयाइ मोत्तूण । सव्वंपि भावसल्लं, उद्धरियव्वं, जओ भणियं ॥५०॥

जह बालो जंपंतो, कज्जमकज्जं च उज्जुओ भणइ । तं तह आलोइज्जा, मायामयविप्पमुक्को य ॥५१॥ दारं ।

लहुया[1] ल्हाईजणणं[2], अप्पपरनिवित्ति[3] अज्जवं[4] सोही[5] । दुक्करकरणं[6] आणा[7], निस्सल्लत्तं च सोहिगुणा ॥५२॥

आलोयणापरिणओ, संमं संपट्ठिओ गुरुसगासे । जइ अंतरावि कालं, करिज्ज आराहगो तहवि ॥५३॥

आगंतुं गुरुमूले, जो पुण पयडेइ अत्तणो दोसे । सो जइ न जाइ मोक्खं, अवस्समभरत्तणं लहइ ॥५४॥

जो पुण इय नाऊणवि, संमं न कहेइ अत्तणो सल्ले । चोएयव्वो तो सो, निसीहभणिएहि नाएहिं ॥५५॥

जह कस्सइ नरवइणो, एगो आसो समग्गगुणकलिओ । तस्स पभावेण निवस्स वड्ढए सव्वसंपत्ती ॥५६॥

अह सेसनिवा पभणंति, नियनियठाणेसु संठिया एवं । भो! अत्थि कोइ पुरिसो, जो तं आसं अवहरिज्जा ॥५७॥

भणियं चारनरेहिं, सो नरपंजरगओ सया कालं । हरिउं तेण न तीरइ, अह वुत्तं एगपुरिसेणं ॥५८॥

जइ नवरं मारिज्जइ, रन्ना भणियं इमंपि ता होउ । तत्तो सो तत्थ गओ, न लहइ तुरयस्स अवगासं ॥५९॥

तो णेण खुद्दियाकंटएण, सरमुहठिएण वरतुरओ । कहमवि विद्धो सो तेण, सल्लिओ सुहुमसल्लेण ॥६०॥
सो निच्चं परिहायइ, भुंजंतोवि हु पभूयजवसाई । तो रन्ना सो विज्जस्स, दाइओ तेण भणियमिणं ॥६१॥
नहि कोइ धाउखोहो, अत्थि हु अव्वत्तसल्लमेयस्स । तो जमगसमगमेसो, उल्लित्तो सुहुमपंकेण ॥६२॥
सल्लपएसे आसो, उण्हत्तणओ य पढमसुव्वाओ । नाऊण तओ सल्लं, नीणिय आसो कओ सज्जो ॥६३॥
अन्नो पुण जह आसो, अणुधियसल्लो न जुज्झपरिहत्थो । तह साहूवि ससल्लो, कंमजयं काउमसमत्थो ॥६४॥
देवाणुप्पिय ! संमं, लज्जागारवभयाइं ता मुत्तुं । आलोयसु नियसल्लं, मा मरसु ससल्लमरणेण ॥६५॥

जओ—

नवि तं सत्थं व विसं व दुप्पउत्तो व कुणइ वेयालो । जं तं च दुप्पउत्तं सप्पो व पमाइओ कुद्धो ॥६६॥
जं कुणइ भावसल्लं, अणुद्धियं उत्तमट्ठकालंमि । दुल्लभबोहीयत्तं, अणंतसंसारियत्तं च ॥६७॥
इय पभणिओवि सिरिओ, तओ अणालोइओ अपडिकन्तो । चरणं विराहिऊणं, उववन्नो भवणवासीसु ॥६८॥
सिवभद्दो उण कंटगपहछलणानायओ कहवि जायं । नाउं नियमइयारं, आलोयइ झत्ति गुरुमूले ॥६९॥
आलोइयपडिकन्तो, संमं आराहिऊण सामन्नं । उववन्नो पवरसुरो, सोहम्मे हेमवन्नाभो ॥७०॥
तो चविउं इह भरहे, वेयड्ढे गयणवल्लहपुरंमि । सिरिकणयकेउरन्नो, देवइनामाइ देवीए ॥७१॥
जाओ पहाणपुत्तो, सिवचन्दो नाम पत्ततारुन्नो । परिणेइ वसंतसिरिं, निवधूयं पढियबहुविज्जो ॥७२॥



तत्र शिवभद्रमुनि-कथा ।

सिरिओवि तओवट्ठिय, जाओ तस्सेव बन्धवो लहुओ । कयसोमचन्दनामो, कमेण तरुणत्तमणुपत्तो ॥७३॥
अह सोमचन्दकुमरस्स, पढियनिरवज्जपउरविज्जस्स । जाया कयात्रि बुद्धी मायंगिं साहिउं विज्जं ॥७४॥
तीसे य इमो कप्पो, मायंगगिहट्ठिएण कइत्रि दिणे । साहणविही विहेया, परिगिियमायंगधूएण ॥७५॥
तयणु पकामं पिउणा, वारिज्जन्तोवि सोयरेण पुणो । सुबहु खलिज्जन्तोवि हु, गओ कुणालाइ नयरीए ॥७६॥
तत्थ बहुदाणपुव्वं, मायंगसुयं विवाहए एगं । सिढिलियविज्जासाहणवावारो गलियसुद्धमई ॥७७॥
अगणियसकुलकलंको, दूरं पब्भट्ठपुन्नपब्भारो । तीए च्चिय अणुरत्तो, कमेण जायाणि डिंभाणि ॥७८॥
इय तस्स मलीमसचिट्ठियस्स अच्चन्तपावनिरयस्स । पिउभायपमुहलोएण, संकहा दूरओ चत्ता ॥७९॥
अन्नदिणे सिवचन्दो, हरिकरिरहजोहजूहपरियरिओ । पूरन्तो गयणयलं, विमाणमालाहि सञ्चत्तो ॥८०॥
पवरविमाणारूढो, सिरउवरिधरिज्जमाणसियछत्तो । पासपइट्ठियखयरीजणढालिज्जंतसियचमरो ॥८१॥
अग्गट्ठियमागहगणपडुपयडियविविहसमररिउविजओ । कलकंठकंठगायणगिज्जंतमहन्तगुणनिवहो ॥८२॥
सुचिरं सुरसरिसुरगिरिवणेसु तह जम्बुदीवजगईए । पउमवरवेइगाए, पकीलिउं सगिहमणुचलिओ ॥८३॥
कहवि कुणालानयरीइ, उवरि वच्चन्तओ निएवि इमं । नेहेणं ओयरिऊण, सायरं भायरं भणइ ॥८४॥
किं भो बन्धव ! तुमए, इहेव अच्चन्तनिंदियकुलंमि । काएण व मयगकलेवरंमि बद्धा रई दूरं ॥८५॥
किं मूढ ! विस्सगंधप्पबन्धदढगाढपिहियनासउडं । दूरेण वयमाणं जणं इओ न हु पलोएसि ? ॥८६॥

एगत्थ अत्थि उक्करडभरियमन्नत्थ भसिरसाणगणं। अवरत्थ गिद्धवायसदुप्पिच्छं किं न नियसि इमं ? ॥८७॥
तं सोउ सोमचन्दो, अयंडतडिदंडताडिओ व्व दढं। विच्छाओ लज्जावसमिलन्तनयणो भणइ एवं ॥८८॥
भो भाय ! को न याणइ, दुहमसममिमं परं कहेसु इमं। पुव्वभवज्जियदुक्कम्मभारदोसेण केण अहं ॥८९॥
विमलकुलवासविमुहो, विमुक्कतुहसरिसबन्धुपडिबंधो। एरिसविजाइवावारसायरे पाडिओ म्हि हहा ? ॥९०॥
तो विहिणा सिवचन्दो, सविम्हओ सरिय रोहिणिं देविं। पुच्छइ कहेसु भयवइ ! मह बन्धवपुव्वभवचरियं ॥९१॥
उरुओहिनाणमुणियं, कहिउं सयलंपि तस्य पुव्वभवं। देवीइ रोहिणीए, फुडवयणमिमं समुल्लवियं ॥९२॥
जाइमयाई पुव्विं, न संममालोइयं जमेएण। तेणेसो तुह भाया, विडम्बणं एरिसं पत्तो ॥९३॥
जं सुहुमेवि हु खलिए, निस्सल्लालोयणा कया तुमए। तं जाओ सि इय सुही, इय भणिय तिरोहिया देवी ॥९४॥
सोउमिणं सिवचन्दो, पुव्वभवं सरिय भणइ भो भाया !। अज्जवि तोडेवि लहुं, कुकुडम्बसिणेहबन्धमिमं ॥९५॥
नियदुक्कयाइं आलोइऊण काऊण तिव्वतवचरणं। एयस्स दुक्खनिवहस्स, देसु सलिलंजलिं भाया ! ॥९६॥
अह भणइ सोमचन्दो, भाय ! इमा भारिया मह अणाहा। आसन्नपसवसमया, इमाइं डिंभाइं लहुयाइं ॥९७॥
ता कहसु मुएमि कहं, इय तं मूढं निएवि सिवचन्दो। दूरं धम्मअजुग्गु त्ति, चइय पत्तो नियं नयरं ॥९८॥
मोयाविऊण पिउणो, कहमवि चारणमुणिंदपयमूले। पडिवन्नसंजमभरो, सिद्धिं पत्तो धुयकिलेसो ॥९९॥
इयरोवि काउ विविहं, पावं कालंमि कालमासज्ज। पत्तो नरए घोरे, दुहिओ भमिही भवकडिल्ले ॥१००॥

तत्र शिव-
चन्द्रमुनि-
कथा।

श्रुत्वेति सद्विकटनाघटनानिरस्तकर्मव्रजस्य शिवचन्द्रमुनेश्चरित्रम् ।
वाचंयमा नियमिताखिलदोषजाला, यत्नं मुदा स्खलितशुद्धिविधौ विधत्त ॥१०१॥

## ॥ इति शिवचन्द्रमुनिकथा ॥

अथ श्रद्धा प्रवरे धर्मे इति द्वितीयं भावसाधोर्लिङ्गमुपसंहरन् प्रज्ञापनीयलक्षणं तृतीयं भावसाधुलिङ्गं सम्बन्धयन्नाह–

**एसा पवरा सद्धा, अणुबद्धा होइ भावसाहुस्स । एईए सब्भावे, पन्नवणिज्जो हवइ एसो ॥१०५॥**

एषा–चतुरङ्गा प्रवरा–वरेण्या श्रद्धा–धर्माभिलाषोऽनुबद्धाऽव्यवच्छिन्ना भवति–संपद्यते भावसाधोः–प्रस्तुतयतेः, एतस्याः–श्रद्धायाः सद्भावे–सत्तायां प्रज्ञापनीयोऽसद्ग्रहविकलो भवत्येव भावमुनिरिति ।

ननु किं चरित्रवतोप्यसद्ग्रहः संभवति ? सत्यम् संभवत्यपि, मतिमोहमाहात्म्यात् । मतिमोहोऽपि कुत इति चेदुच्यते—

**विहि[१] उज्जम[२] वन्नय[३] भय[४] उस्सग्ग[५] ववाय[६] तदुभयगयाइँ । सुत्ताइं बहुविहाइं, समए गंभीरभावाइं ॥**

विधिश्च उद्यमश्च वर्णकश्च भयं चोत्सर्गश्चापवादश्च तदुभयं चेति द्वन्द्वस्तस्य च स्वपदप्रधानत्वाद्गतानीति प्रत्येकमभिसंबध्यते, सूत्राणि च विशेष्याणि । ततश्चैवं योज्यते–कानिचिद्विधिगतानि सूत्राणि सन्ति, यथा–

"संपत्ते भिक्खकालंमि असंभंतो अमुच्छिओ । इमेण कमजोएण, भत्तपाणं गवेसई" ॥ इत्यादीनि ।

कानिचिदुद्यमसूत्राणि, यथा—

"दुमपत्तए पंडुए, जहा निवडइ राइगणाण अच्चए। एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए" ॥ इत्यादीनि।
वर्णकसूत्राणि–"रिद्धत्थिमियसमिद्धा" इत्यादीनि प्रायो ज्ञाताधर्मकथाद्यङ्गेषु। भयसूत्राणि–नरकेषु मांसरुधिरादिकथनरूपाणि। उक्तं च–

"नरएसु मंसरुहिराइवन्नणं, जं पसिद्धिमित्तेण। भयहेउ इहर तेसिं वेउव्वियभावओ न तयं"॥ इत्यादीनि।

उत्सर्गसूत्राणि यथा–"इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा"। इत्यादि षड्जीवनिकायरक्षाविधायकानि। अपवादसूत्राणि प्रायश्छेदग्रन्थगम्यानि। यद्वा—

"नयालभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा। इक्कोवि पावाइं विवज्जयंतो, विहरिज्ज कामेसु असज्जमाणो"॥ इत्यादीनि।

तदुभयसूत्राणि येषूत्सर्गापवादौ युगपत्कथ्येते, यथा–

"अट्टज्झाणाभावे संमं अहियासियव्वओ वाही। तब्भावंपि उ विहिणा, पडियारपवत्तणं नेयं" ॥ इत्यादीनि।

एवं सूत्राणि बहुविधानि स्वसमय–परसमय–निश्चय–व्यवहार–ज्ञान–क्रियादिनानानयमतप्रकाशकानि समये–सिद्धान्ते गम्भीर-भावानि–महामतिगम्याभिप्रायाणि सन्तीति शेषः।

ततः किमित्याह—

**तेसिं विसयविभागं, अमुणंतो नाणवरणकम्मुदया। मुज्झइ जीवो तत्तो, सपरेसिमसग्गहं जणइ ॥१०७॥**

तेषां–सूत्राणां विषयविभागम् 'अयमस्य सूत्रस्य विषयोऽयं चामुष्य' इत्येवंरूपममुणन्नलक्षयन् ज्ञानावरणकर्मण उदयाद्धेतोर्मुह्यति–मोहमुपयाति जीवः–प्राणी, ततः स्वपरयोरात्मनः परस्य च पर्युपासकस्यासद्ग्रहमसद्बोधं जनयति, जमालिवत्। तत्कथा चातिप्रतीत-

त्वाच्च वितन्यत इति ।

ततश्च—

**तं पुण संविग्गगुरू, परहियकरणुज्जयाणुकंपाए। बोहिंति सुत्तविहिणा, पन्नवणिज्जं वियाणंता ॥१०८॥**

तं—मूढं पुनः शब्दादर्थिनं विनीतं च संविग्नाः—प्रतीतार्था गुरवः—पूज्याः परहितकरणोद्यताः—परोपकाररसिका अनुकम्पया—'मा गमदेष दुर्गतिम्' इत्यनुग्रहबुद्ध्या प्रेरिता बोधयन्ति—प्रज्ञापयन्ति सूत्रविधिना—आगमोक्तयुक्तिभिः प्रज्ञापनीयं—प्रज्ञापनोचितं विजानाना—लक्षयन्तस्तदितरस्य सर्वज्ञेनापि बोधयितुमशक्यत्वादिति।

ततः—

**सोवि असग्गहचाया, सुविसुद्धं दंसणं चरित्तं च। आराहिउं समत्थो होइ सुहं उज्जुभावाओ ॥१०९॥**

सोपि—प्रज्ञापनीयमुनिः सुनन्दराजर्षिसदृशोऽसद्ग्रहत्यागाद्—निजपरिकल्पितबोधमोचनात् सुविशुद्धमतिर्निर्मलं दर्शनं—सम्यक्त्वं चारित्रं—संयमं चशब्दात् ज्ञानतपसी चाराधयितुं समर्थो भवति सुखं यथाभवत्येवमृजुभावाद्—आर्जवगुणादिति।

सुनन्दराजर्षिकथा पुनरेवम्।

अह कंपिल्लपुरेसो, अइपबलपयावणिज्जियदिणेसो। उप्पाडियरिउकन्दो, आसि नरिन्दो सुनन्दु त्ति ॥१॥

सुद्धगिहिधम्मपरिपालणुज्जुओ सत्ततत्तकुसलमई। पाणेहिंपि हु दइओ, मित्तो वज्जाउहो तस्स ॥२॥

अइरयआगमणुप्पन्नपबलउस्सासरुद्धकंठेण । कइयावि सुनन्दनिवो, इय भणिओ संधिपालेण ॥३॥
देव ! महच्छरियमिणं, जं किर केसरभरोवि केसरिणो । तोडिज्जइ हरिणेणं, रवीवि जिप्पइ तमभरेण ॥४॥
उत्तरदिसिपहुणा, भीमराइणा दुद्दमेण गुणनिग्गहो । इन्दियगामेणंपि व, देसो तुह हम्मए सयलो ॥५॥
तं सोउ निवो कुविओ, जा ताडावेइ झत्ति रणभेरिं । ता सुद्धबुद्धिजुत्तेण, मन्तिवग्गेण इय वुत्तं ॥६॥
देवेस ! अरी सुरकयसन्निज्झो संगरे गई विसमा । संदेहो पुण विजए, पहाणपुरिसक्खओ य धुवं ॥७॥
ता सामभेयदाणाइं, मुत्तु संपइ न अन्नमवि नीइं । रिउविजए रिउविजए ता देव ! इहं कुणसु जुत्तं ॥८॥

जओ—

"सामेण होइ मित्तो, परोवि भेएण भिज्जइ सुहीवि । दाणेण सेलघडिया, देवावि वसं पवज्जंति ॥९॥
जहजोग्गमिमे नणु जुंजिऊण दंडेवि जइ समुज्जमसि । मसिकुच्चं अरिवयणेसु, तयणु तं देव ! देसि धुवं ॥१०॥
इय कयजत्ता पत्ता, तुच्छावि निवा अतुच्छलच्छिभरं । गरुआवि गया निहणं, इत्तो विवरीयनीइरया ॥११॥
ता देव ! सव्वसामंतमन्तिमित्ताण जाणिउं हिययं । तदुचियसामाइ पउंजिऊण पच्चइयपुरिसेहिं ॥१२॥
कुणसु लहुं चिय जत्तं, जयलच्छि लहसु फुरियजसपसरो । भंजसु भडवायं रिउभडाण कयनीइसन्नाहो ॥१३॥
इय सोउ मन्तिवयणं, ईसिं हसिऊण जंपियं रन्ना । वणियाण माहणाण य, होइ मई एरिसा चेव ॥१४॥
कहमन्नह दुज्जयरिउकरडिघडाविघडणिक्ककेसरिणो । मज्झवि पुरओ एवं, रणकम्ममहम्मम्मुव्वइसह ? ॥१५॥

इत्तुच्चिय अविमंसिय, जहा तहा इह जणा पयंपन्ता । हुन्ति तणाउवि लहुया, वच्चन्ति पराभवट्ठाणं ॥१६॥
इय पभणिय भालत्थलकयउब्भडभिउडिभासुरो राया । उक्कंपियरिउचक्कं, लहु ताडावेइ जयढक्कं ॥१७॥
ता तीइ सद्दपसरेण, मिलियचउरंगपबलबलकलिओ । वज्जाउहमित्तविदिन्नअग्गसिन्निक्कवावारो ॥१८॥
अविलम्बियप्पयाणेहिं, सत्तुनिवमंडलं अणुपविट्ठो । नाउ तदागमणं झत्ति, आगओ संमुहो भीमो ॥१९॥
अह जोहमुक्कहक्काभयभरनस्संतकायरनरोहं । हयहरिकरिभडनिवडणदुग्गपहाउलभमंतजणं ॥२०॥
जणवयजणआसंकियअवितक्कियपलयकालमागमणं । दुण्हवि अग्गाणीयाण, ताण जायं महाजुज्झं ॥२१॥
अह खणमित्तम्मि गए, लद्धोगासेहिं परबलभडेहिं । भग्गं सुनन्दसिन्नं, सीयं पिव भाणुकिरणेहिं ॥२२॥
वज्जाउहजयकुञ्जरसतुञ्जयमाइणो महीवइणो । पडिया समरमहीए, सुनन्दराएण नायमिणं ॥२३॥
अह सचिवेहिं भणियं, अज्जवि विरमेसु देव ! समराओ । मा पूरेसु रिऊगं, मणोरहे नियसु नियसत्तिं ॥२४॥
अजहाबलमारम्भो, खयस्स मूलं वयन्ति इह विबुहा । तो सव्वपयारेहिं, अप्पच्चिय रक्खियव्वु त्ति ॥२५॥

जओ—

विक्कमबलेण पुणरवि, अज्जिज्जइ चिरगयावि रायसिरी । देव ! गयं पुण जीयं, न लब्भए तम्मि जम्मंभि ॥२६॥
आवयराहुमुहाओ, नीहरिउमखंडमंडलो सूरो । अवहरिउं रायसिरिं, परतेयभरं पुणो हरइ ॥२७॥
सुव्वइ य पुरावि इमं, अपत्तबलं मुणेवि अप्पाणं । बम्भो चक्की नट्ठो, सपरियणो जादवपहूवि ॥२८॥

इय सचिवेहिं भणिओ, नियकुग्गहविरहिओ सुनन्दनिवो। ओसरिओ समराओ, जं अवसरवेइणो विबुहा ॥२९॥
पडिभग्गं पडिवक्खं, पलायमाणं निएवि भीमनिवो। वलिओ अणुकम्पाए, तप्पुट्ठिपहारमकरित्ता ॥३०॥
वज्जाउहमरणेणं, पराहवेण य सुनन्दनरनाहो। मन्नन्तो निहयं पिव अप्पं अइदुहमणुहवेइ ॥३१॥
अह निसि चिंतावसगयनिद्दो राया सुरेण एगेण। भणिओ भो नित्र! सो हं, मित्तो वज्जाउहो तुज्झ ॥३२॥
तइया रिउराईहिं, गाढपहारीकयं मुणिवि अप्पं। नीहरिउं समरंगणमहीइ ओयरिय वारणओ ॥३३॥
उद्धरियदुविहसल्लो, गरिहियपावो समाहिसंजुत्तो। नवकारं समरन्तो, जाओ अमरो पढमकप्पे ॥३४॥
ओहिबलेण वियाणिय, तुह दुक्खं सत्तुपरिभवसमुत्थं। तं अवणेउं इहयं, पत्तो हं परमपेमेणं ॥३५॥
ता मित्त! मुयसु खेयं, पभायसमए हवेसु रणसज्जो। निम्महिय रिउं सरयब्भविब्भमं लहसु कित्तिभरं ॥३६॥
इय मित्ततियसवयणं, सोउं राया वियासिमुहसोहो। सिन्नाणुगओ सहसा, पडि पडिवक्खं पडिनियत्तो ॥३७॥
अह पउरसमरसंपत्तविजयगव्वो पुणोवि तं इन्तं। आयन्निय भीमनिवो, सज्जीहोउं ठिओऽभिमुहं ॥३८॥
आओहणं च लग्गं, नवरं मित्तामराणुभावेण। विजिओ सुनन्दरन्ना, भीमनरिन्दो पढममेव ॥३९॥
तं सेवापडिवन्नं, रज्जे तत्थेव ठाविय सुनन्दो। नियदेसं पइ चलिओ, सुरो गओ पुण सठाणंमि ॥४०॥
मग्गंमि सुनन्दोवि हु, वच्चन्तो नियइ सिरिपुरुज्जाणे। पढमजिणभवणपासे, मुणिमेगं तरुतलनिसन्नं ॥४१॥
तस्स य पुरओ एगं, पवंगमं पउरलोयमज्झगयं। मुणिदिन्नतनमुक्कारमन्तआयन्नणप्पवणं ॥४२॥

तो विम्हियभरभरिओ, राया आगम्म नमिय मुणिपवरं । जा तत्थ निसीयइ ताव वानरो मरणमणुपत्तो ॥४३॥
अह भणइ निवो मुणिपहु ! चुज्जमिणं जं अईवचवलमणा । इत्थ पवंगमा वि हु, जिणधम्मे निच्चला हुंति ॥४४॥
ता कहसु पुरा को आसि एस साहूवि साहइ नरिंद ! । महुराइ आसि एसो, वणिओ इत्तो भवे तइए ॥४५॥
संविग्गो पडिवन्नो, कयावि दिक्खं सुभद्दगुरुमूले । ईसि अपमत्तमणिज्जो, जडभावा सुतवनिरओवि ॥४६॥
अन्ते काउ अणसणं, जाओ अमरो सुहम्मकप्पंमि । छम्मासमेसमाउं, वियाणिउं अप्पणो सो उ ॥४७॥
पुच्छेइ केवलिं वन्दिऊण इत्तो चुयस्स मे भंते ! । कत्थुप्पत्ती होही, कहं व पहु ! बोहिलाभो य ? ॥४८॥
तो केवलिणा भणियं, पज्जंते भद्द ! अट्टज्झाणेणं । मरिऊण वानरो तं, होहिसि सिरिपुरवरुज्जाणे ॥४९॥
जिणबिम्बदंसणाओ, तत्थ लहिस्ससि तुमं कहवि बोहिं । इय सोउं सो तियसो, लहु उज्जाणं इमं पत्तो ॥५०॥
तो तुंगसिंगसोहापहसियहिमसिहरिसिहरमइरम्मं । पवणपकम्पिरधयवडरणंतमणिकिंकिणीजालं ॥५१॥
डज्झंतपवरघणसारअगुरुमघमघितगन्धड्ढं । थम्भसहस्ससमेयं मणिमयभासंतभित्तिल्लं ॥५२॥
सो सिरिजुगाइजिणवरभवणमिणं तुट्ठमाणसो कासी । बद्धाउयत्तणेणं, चविय इमो वानरो जाओ ॥५३॥
कहकहवि पेण भमिरेण, इत्थ इत्तो अईय तइयदिणे । दिट्ठमिणं जिणभवणं, पत्तं लहु जाइसरणं च ॥५४॥
तो वेरग्गगओ सो, मह पासं पप्प अणसणं काउं । पञ्चपरमिट्ठिमन्तं, सुमरंतो मरणमणुपत्तो ॥५५॥
इय जा वानरचरियं, कहइ मुणी ता पवंगजीवो सो । सोहंमदेवलोए, हेमप्पहवरविमाणंमि ॥५६॥

ससिकरसियदेवंसुयसंवुयसुरसयणसुन्दरुच्छङ्गे। सुत्तिपुडंतो मुत्ताहलव्व जाओ सुरो पवरो ॥५७॥
उप्पत्तिअणंतरदूरविहियदेवंसुओ उवविसित्ता । अइसयविम्हियहियओ, पिच्छंतो सयलदिसिवलयं ॥५८॥
जय जय नंदा! जय जय, भद्दा! इच्चाइमहुरवयणाइं । अमरच्छरनियराणं, हरिसियहिययाण निसुणंतो ॥५९॥
किं दिन्नं किं तवियं, किं जट्ठं वा मए पुराजंमे? । इय चिंतावसओ ओहिनाणविन्नायपव्वगभवो ॥६०॥
सव्वाइं देवकिच्चाइं, मुत्तु बहुदेवदेविपरियरिओ । तत्थेव लहुं पत्तो, पणओ विणएण मुणिचरणे ॥६१॥
सिरिनाभेयजिणिंदं, अंचिय रोमंचअंचियसरीरो । साहुं पुणो पुणो पणमिऊण पत्तो सुरो सग्गं ॥६२॥
इय दट्ठुं सुनंदनिवो, संविग्गो तस्स साहुणो मूले । सहसाउहसुयवियरियरज्जो दिक्खं पवज्जेइ ॥६३॥
अह सहसाउहराया, पणमेऊणं सुनंदरायरिसिं । कंपिल्लपुरे पत्तो, तिवग्गसारं कुणइ रज्जं ॥६४॥
सुचिरं सुनंदसाहू, विहरइ गुरुणा समं महियलंमि । दसविहसामायारीपालणपउणो पसन्नमणो ॥६५॥
पडिकूलकम्मपब्भारपिल्लिओ सो कयावि रायरिसी । गलियसुहज्झवसाओ चिंतिउमेवं समाढत्तो ॥६६॥
पडिलेहणापमज्जणपमुहविहाणं विणावि किर सुगई । लब्भइ जीवेहिं नियइभावओ निच्छियं एवं ॥६७॥
कहमन्नहा महाहववावारनिउत्तचित्तविरिओवि । देवत्तं संपत्तो, मित्तो वज्जाउहो मज्झ ? ॥६८॥
अइसुद्धचरणकिरियाविगलोवि तया स वानरस्स जिओ । उत्तत्तजच्चकंचणवन्नो तियसो समुप्पन्नो ॥६९॥
सुव्वंति य समएवि हु, तहभव्वत्तुब्भवंतसामत्था । अकयकिरियावि मरुदेविमाइणो सिवपयं पत्ता ॥७०॥

ता तहभवत्तं चिय, कल्लाणकलावकारणं परमं । तदभावे पुण विहलो, सयलो कायव्ववावारो ॥७१॥
संजमतवाइएहिं, पागं सो एइ एयमवि तुच्छं । मरुदेवीपमुहाणं, तव्विरहे किंकओ पागो ? ॥७२॥
एवं चरणावारगकम्मविरुज्झंतसुद्धपरिणामो । सो साहू तवकिरियासु, इसि मंदायरो जाओ ॥७३॥
अह सुयबलेण नाउं, सुगुरू साहुस्स तस्साभिप्पायं । पन्नवणिज्जत्तं तह, महुरगिराए इमं भणइ ॥७४॥
भो भद्द ! भद्दपयगमणपउणपडिलेहणाइ किरियाए । सुगइपहदीविगाए, खणंपि मा काहिसि पमायं ॥७५॥
न य एगंतेणं नियइभावओ होइ कज्जसंसिद्धी । जं पुरिसकारकालाइगोवि हेऊ इहं भणिया ॥७६॥

तथा चोक्तम्—

"कालो सहाव नियई पुव्वकयं पुरिसकारणेगंता । मिच्छत्तं ते चेव उ, समासओ हुंति संमत्तं" ॥७७॥
जंपि हु मरुदेवी पुव्वमकयतवनियमसंजमविसेसा । तज्जम्मि चिय सुहभावजोगओ सिद्धिमणुपत्ता ॥७८॥
जयअच्छेरयभूयं, तदुदाहरणं तहावि विबुहेहिं । ववहारविलोवाओ, कयावि नालंबणीयं ति ॥७९॥

तथा चागमः—

"जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहारनिच्छए मुयह । ववहारनउच्छेए, तित्थुच्छेओ जओ भणिओ ॥८०॥
ववहारो विहु वलवं, जं वंदइ केवलीवि छउमत्थं । आहाकम्मं भुंजइ, सुयववहारं पमाणंतो" ॥८१॥

किंच—

"निहिं संपत्तमहन्नो, पत्थिंतो जह जणो निरुत्तप्पो । इह नासइ तह पत्तेयबुद्धलच्छिं पडिच्छंतो" ॥८२॥
तहभव्वत्ताउ च्चिय, सिवलाभो दुक्कराइ किरियाए । करणं अणुचियमेयं पि सुंदरं नो जओ भणियं ॥८३॥
तित्थयरो चउनाणी, सुरमहिओ सिज्झियव्वयधुवंमि । अणिगूहियबलविरिओ, सव्वत्थामेण उज्जमइ ॥८४॥
इय जइ तेवि हु नित्थिन्नपायसंसारसायरावि जिणा । अब्भुज्जमंति तो, सेसयाण को इत्थ वामोहो ॥८५॥
इय हियउब्भवकुग्गहनिग्गहमंतोवमं गिरं गुरुणो । सोउं सुनंदसाहू, पन्नवणिज्जो महाभागो ॥८६॥
मुत्तुं निययमसग्गहमालोइय तह गुरूण पयमूले । सविसेसनिच्चलमणो अकलंकं कुणइ चारित्तं ॥८७॥
सुचिरं चरित्तु चरणं, दहिउं झाणानलेण कम्मवणं । अन्नाणतिमिरतरणी, सिद्धिं पत्तो सुनंदमुणी ॥८८॥

सुनन्दराजर्षिचरित्रमेवं, श्रुत्वा मनःस्थैर्यकरं सुधर्मे ।
मुमुक्षवोऽसद्ग्रहनिग्रहाय प्रज्ञापनीयत्वमिदं श्रयन्तु ॥८९॥

## ॥ इति सुनन्दराजर्षिकथा ॥

इत्युक्तं प्रज्ञापनीयत्वमिति भावसाधोस्तृतीयं लिङ्गम्, संप्रति क्रियास्वप्रमाद इति चतुर्थं लिङ्गं व्याख्यानयन्नाह—

**सुगइनिमित्तं चरणं, तं पुण छक्कायसंजमो एव । सो पालिउं न तीरइ, विगहाइपमायजुत्तेहिं ॥११०॥** 

शोभना गतिः सुगतिः सिद्धिरेव, अस्या निमित्तं कारणं चरणं—यतिधर्मः । तदुक्तम्—

"नो अन्नहावि सिद्धी, पाविज्जइ जं तओ इमीएवि । एसो चेव उवाओ, आरम्भा वट्टमाणा उ" ॥

तथा

"विरहिततरकाण्डाः बाहुदण्डैः प्रचण्डं, कथमपि जलराशिं धीधना लङ्घयन्ति ।
ननु कथमपि सिद्धिः साध्यते शीलहीनैर्द्रढयत यतिधर्मे चित्तमेवं विदित्वा" ॥ इति ।

तत् पुनश्चरणं षट्कायसंयम एव–पृथ्वीजलज्वलनपवनवनस्पतित्रसकायजीवरक्षैव, किमुक्तं भवति ? एतेषु षट्जीवनिकायेष्वेकमपि जीवनिकायं विराधयन् जगद्भर्तुराज्ञाविलोपकारित्वादचारित्री संसारपरिवर्द्धकश्च ।

तथा चाहुः प्रतिहतसकलव्यामोहतमिस्राः श्रीधर्मदासगणिमिश्राः—

"सव्वाओगे जह कोइ, अमच्चो नरवइस्स घित्तूण । आणाहरणे पावइ, वहबन्धणदव्वहरणं च ॥१॥
तह छक्कायमहव्वयसव्वनिवित्तीउ गिण्हिऊण जई । एगमवि विराहन्तो, अमच्चरन्नो हणइ बोहिं ॥२॥
तो हयबोही पच्छा, कयावराहाणुसरिसमियममियं । पुणवि भवोयहिपडिओ, भमइ जरामरणदुग्गंमि" ॥३॥

किंच—

छज्जीवनिकायमहव्वयाण परिपालणाइ जइधम्मो । जइ पुण ताइं न रक्खइ, भणाहि को नाम सो धम्मो ? ॥४॥
छज्जीवनिकायदयाविवज्जिओ नेव दिक्खिओ न गिही । जइधम्माओ चुक्को, चुक्कइ गिहिदाणधम्माओ" ॥ इत्यादि ।

स पुनः संयमः पालयितुं–वर्द्धयितुं न 'तीरइ' त्ति न शक्यते विकथा–विरुद्धाः कथा राजकथाद्या रोहिणीकथायां सप्रपञ्चं प्ररू-

पिताः, आदिशब्दाद्विषयकषायादिपरिग्रहस्तल्लक्षणः प्रमादो विकथादिप्रमादस्तद्युक्तैः संयमः प्रतिपालयितुं न शक्यतेऽतः सुसाधुभिरसौ न विधेय इति ।



प्रमादस्यैव विशेषतोऽपायहेतुतामाह—

पव्वज्जं विज्जं पिव, साहंतो होइ जो पमाइल्लो ।
तस्स न सिज्झइ एसा, कारइ गरुयं च अवयारं ॥१११॥

प्रव्रज्यां-जिनदीक्षां विद्यामिव-स्त्रीदेवताधिष्ठितामिव साधयन् भवति यः 'पमाइल्लु' त्ति प्रमादवान् ''आल्विल्लोल्लालवन्तमन्तेत्तेरमणा मतोः'' इति वचनात्, तस्य प्रमादवतो न सिध्यति-न फलदानाय संपद्यते एषा पारमेश्वरी दीक्षा विद्येव चकारस्य भिन्नक्रमत्वात् करोति च गुरुं-महान्तमपकारमनर्थमिति । भावार्थः पुनरयम्-यथाऽत्र प्रमादवतः साधकस्य विद्या फलदा न भवति, ग्रहसंक्रमादिकमनर्थं च सम्पादयति, तथा शीतलविहारिणो जिनदीक्षापि न केवलं सुगतिसम्पत्तये न भवति, किंतु देवदुर्गतिं दीर्घभवभ्रमणापायं च विदधाति । आर्यमङ्गोरिव ।

तत्र आर्यमङ्गुकथा ।

उक्तं च—

''सीयलविहारओ खलु, भगवन्तासायणा निओएण । तत्तो भवो सुदीहो, किलेसबहुलो जओ भणियं ॥
तित्थयरपवयणसुयं, आयरियं गणहरं महिड्ढीयं । आसायन्तो बहुसो, अणंतसंसारिओ भणिओ'' ॥ त्ति ।

तस्मादप्रमादिना साधुना भवितव्यमिति ।

## आर्यमङ्गुकथा चैवम्—

इह अज्जमंगुसूरी, ससमयपरसमयकणयकसवट्टो । बहुभत्तिजुत्तसुस्सूससिस्ससुत्तत्थदाणपरो ॥१॥
सद्धम्मदेसणाए, पडिबोहियभवियलोयसन्दोहो । कइयावि विहारेणं, पत्तो महुराइ नयरीए ॥२॥
सो गाढपमायपिसायगहियहियओ विमुक्कतवचरणो । गारवतिगपडिबद्धो, सड्ढेसु ममत्तसंजुत्तो ॥३॥
अणवरयभत्तजणदिज्जमाणरुइरन्नवत्थलोभेण । वुत्थो तहिं चिय चिरं, दूरुज्झियउज्जुयविहारो ॥४॥
दढसिढिलियसामन्नो, निस्सामन्नं पमायमचइत्ता । कालेण मरिय जाओ, जक्खो तत्थेव निद्धमणे ॥५॥
मुणिउं नियनाणेणं, पुव्वभवं तो विचिंतए एवं । हा हा ! पावेण मए, पमायमयमत्तचित्तेण ॥६॥
पडिपुन्नपुन्नलब्भं, दोगच्चहरं महानिहाणं व । लद्धंपि जिणमयमिणं, कहं नु विहलत्तमुवणीयं ? ॥७॥
माणुस्सखित्तजाईपमुहं लद्धंपि धम्मसामग्गिं । हा हा ! पमायभट्ठं, इत्तो कत्तो लहिस्सामि ? ॥८॥
हा ! जीव ! पाव ! तइया इड्ढीरसगारवाण विरसत्तं । सत्थत्थजाणगेणवि हयास ! नहु लक्खियं तइया ॥९॥
चउदसपुव्वधरा वि हु, पमायओ जंति णंतकाएसु । एयंपि हहा ! हा ! पावजीव ! न तए तया सरियं ? ॥१०॥
धिद्धी मइसुहमत्तं, धिद्धी मह बहुयसत्थकुसलत्तं । धिद्धी परोवएसप्पहाणपंडिच्चमच्चन्तं ॥११॥
एवं पमायदुव्विलसियं नियं जायपरमनिव्वेओ । निंदन्तो दिवसाइं गमेइ सो गुत्तिखित्तु व्व ॥१२॥

अह तेण पएसेणं, वियारभूमीइ गच्छमाणे ते । दट्ठूण नियविणेए, तेसिं पडिबोहणनिमित्तं ॥१३॥
जक्खपडिमामुहाओ, दीहं निस्सारिउं ठिओ जीहं । तं च पलोइय मुणिणो, आसन्ना होउ इय बिंति ॥१४॥
जो कोइ इत्थ देवो, जक्खो रक्खो व किंनरो वा वि । सो पयडं चिय पभणउ, न किंपि एवं वयं मुणिमो ॥१५॥
तो सन्निसायं जक्खो, जंपइ भो ! भो ! तवस्सिणो ! सो हं । तुम्ह गुरू किरियाए, सुपमत्तो अज्जमंगु त्ति ॥१६॥
साहूहिवि पडिभणियं, विसन्नहियएहिं हा सुयनिहाण ! । किह देवदुग्गइमिमं, पत्तो सि अहो ! महच्छरियं ॥१७॥
जक्खोवि आह न इमं, चुज्जं इह साहुणो महाभागा ! । एसच्चिय होइ गई, पमायवसिसिढिलचरणाणं ॥१८॥
ओसन्नविहारीणं, इड्ढीरससायगारवगुरूणं । उम्मुक्कसाहुकिरियाभराण अम्हारिसाण फुडं ॥१९॥
इय मज्झ कुदेवत्तं, भो भो मुणिणो ! वियाणिउं सम्मं । जइ सुगईए कज्जं, जइ भीया कुगइगमणाओ ॥२०॥
ता गयसयलपमाया, विहारकरणुज्जुया चरणजुत्ता । गारवरहिया अममा, होह सया तिव्वतवकलिया ॥२१॥
भो ! भो ! देवाणुप्पिय ! सम्मं पडिबोहिया तए अम्हे । इय जंपिय ते मुणिणो, पडिवन्ना संजमुज्जोयं ॥२२॥

इति सूरिरार्यमङ्गुरगुलफलमलभत प्रमादवशात् ।
तत् सद्यः शुभमतयः, सदोद्यता भवत चरणभरे ॥२३॥

॥ इत्यार्यमङ्गुकथा ॥

प्रमादस्यैव युक्त्यन्तरेण निषेधमाह—

**पडिलेहणाइचिट्ठा, छक्कायविघाइणी पमत्तस्स। भणिया सुयंमि तम्हा, अपमाई सुविहिओ हुज्जा ॥१२॥**

प्रत्युपेक्षणा प्रतिलेखना, आदिशब्दाद् गमनादिपरिग्रहः, चेष्टा क्रिया व्यापार इत्येकोर्थः, षट्कायविघातिनी प्रमत्तस्य साधो-र्भणितोक्ता श्रुते–सिद्धान्ते—

तद्यथा—

"पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवयकहं वा। देइ व पच्चक्खाणं, वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥१॥

पुढवीआउक्काए, तेऊवाऊवणस्सइतसाणं। पडिलेहणापमत्तो, छण्हंपि विराहओ होई ॥२॥

घडगाइपलोट्टणया, मट्टी अगणी य बीयकुंथाई। उदगगया व तसेयर ओमुय संघट्ट झामणया ॥३॥

इय दव्वओ उ छण्हं विराहओ भावओ इहरहावि। उवउत्तो पुण साहू, संपत्तीए अवहओ य ॥४॥ इत्यादि।

तस्मात्सर्वव्यापारेष्वप्रमादी सुविहितः–शोभनं विहितमनुष्ठानं यस्य स सुविहितो भवेज्जायेतेति।

अथ कीदृगप्रमादी स्यादित्याह—

**रक्खइ वएसु खलियं, उवउत्तो होइ समिइगुत्तीसु। वज्जइ अवज्जहेउं, पमायचरियं सुथिरचित्तो ॥११३॥**

रक्षति–अकरणबुद्धया परिहरति व्रतेषु विषयभूतेषु स्खलितमतिचारम्। तत्र प्राणातिपातविरतौ त्रसस्थावरजन्तूनां संघट्टनपरि-तापनापद्रावणानि न करोति, मृषावादविरतौ सूक्ष्ममनाभोगादिना बादरं वञ्चनाभिसंधिनाऽलीकं न भाषते। अदत्तादानविरतौ सूक्ष्मं

स्थानाद्यननुज्ञाप्य न करोति, बादरं स्वामिजीवतीर्थकरगुरुभिरननुज्ञातं नादत्ते नापि परिभुङ्क्ते । चतुर्थव्रते—

"वसहिकहनिसिज्जिंदियकुड्डंतरपुव्वकीलियपणीए । अइमायाहारविभूसणाइं नव बंभगुत्तीओ" ॥

इति नवगुप्तिसनाथं ब्रह्मचर्यं पालयति । पञ्चमव्रते सूक्ष्मं बालादिममत्वं न करोति, बादरमनेषणीयाहारादि न गृह्णाति, परिग्गहो णेसणग्गहणे"—इत्याप्तवचनात् । उपकरणं वा न मूर्छया समधिकं धारयति, "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो" इति वचनात् । रात्रिभक्तविरतौ सूक्ष्मं शुष्कसंनिधिमपि न रक्षति, बादरं तु—"दिवागहियं दिवाभुत्तं, दिवागहियं राओभुत्तं, राओगहियं दिवाभुत्तं, राओगहियं राओभुत्तं" इति चतुर्विधामपि रात्रिभुक्तिं न करोति, एवं सर्वव्रतेषु स्खलितं रक्षति । तथोपयुक्तो—दत्तावधानो भवति समितिषु प्रवीचाररूपासु ।

उक्तं च—

"समिओ नियमा गुत्तो, गुत्तो समियत्तणंमि भइयव्वो । कुसलवइमुदीरंतो जं वइगुत्तोवि समिओ वि" ॥

गुप्तिष्वप्रवीचारप्रवीचाररूपासु, उपयुक्तता चासु प्रवचनमात्रध्ययनोक्तविधिना विज्ञेया । किं बहुना, वर्जयत्यवद्यहेतुं—परिहरति पापकारणंप्रमादचरितं सुस्थिरचित्त इति स्पष्टार्थमेवेति ।

तथा—

**कालंमि अणूणहियं, किरियंतरविरहिओ जहासुत्तं । आयरइ सव्वकिरियं अपमाई जो इह चरित्ती ॥११४॥**

काले—अवसरे यो यस्याः प्रत्युपेक्षणादिक्रियायाः प्रस्तावस्तस्मिन्नित्यर्थः, कालमन्तरेण कृष्यादयोऽपि नेष्टसिद्धये स्युरित्यतः

काले सर्वां क्रियां करोतीति योगः। कथंभूताम्? अन्यूनाधिकां—न प्रमादातिशयादूनां नापि शून्यचित्ततया समधिकां करोति, अवसन्नताप्रसंगात्।

यदाहुः श्रीभद्रबाहुस्वामिपादाः—

"आवस्सयाइयाइं न करे, अहवा विहीगमहियाइं। गुरुवयगबलाइ तहा, भणिओ एसो उ ओसन्नो" ॥

तथा 'क्रियान्तरविरहित' इति। एकस्याः क्रियाया द्वितीया क्रिया क्रियान्तरम्, तेन विरहितः, प्रत्युपेक्षणादि कुर्वन्न स्वाध्यायं करोति, स्वाध्यायं कुर्वन्न वस्त्रपात्रादिपरिकर्म गमनादि वेति। अत एवोक्तमार्षे—

इंदियत्थे विसज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा। तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते रियं रिए ॥

'यथासूत्रम्' इति सूत्रस्यानतिक्रमेण यथासूत्रम्। तत् पुनः—

"सुत्तं गणहररइयं, तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च। सुयकेवलिणा रइयं, अभिन्नदसपुव्विणा रइयं" ॥

इत्येषां च निश्चयतः सम्यग्दृष्टित्वेन सद्भूतार्थवादित्वाद्, अन्यग्रथितमपि तदनुयायि प्रमाणमेव, न पुनः शेषमिति, आचरति सर्वक्रियामप्रमादी य इह चारित्रीति सुगममेवेति।

इत्युक्तं 'क्रियास्वप्रमाद'इति भावसाधोश्चतुर्थं लिङ्गम्, सांप्रतं शक्यानुष्ठानारम्भ इति पंचमं लिङ्गं व्याख्यानयन्नाह—

**संघयणादणुरूवं, आरंभइ सव्वमेवणुट्ठाणं। बहुलाभमप्पछेयं, सुयसारविसारओ सुजई ॥११५॥**

संहननं—वज्रर्षभनाराचादि, आदिशब्दाद् द्रव्यक्षेत्रकालभावा गृह्यन्ते, तदनुरूपं—तदुचितमेवारभते सर्वमनुष्ठानं—तपःप्रतिमामास-

कल्पादि, यद् यस्मिन् संहननादौ निर्वोढुं शक्यते तदेवारभते, अधिकस्य निष्ठानयनाभावे प्रतिज्ञाभङ्गसंभवात्। कीदृशं पुनरारभते ? बहुलाभं-विशिष्टफलप्रापकम्, अल्पच्छेदं-स्तोकव्ययम्, अल्पशब्दस्याभाववचनत्वात्, संयमाबाधकमिति भावः, श्रुतसारविशारदः-सिद्धान्ततत्त्वाभिज्ञः सुयतिर्भावसाधुरिति।



कथं पुनरेवंविधं स्यादित्याह—

**जह तं बहु पसाहइ, निवडइ अस्संजमे दढं न जओ। जाणिउज्जमं बहूणं, विसेसकिरियं तहाढवइ ॥११६॥**

यथा-येन प्रकारेण तदधिकृतमनुष्ठानं बहु प्रसाधयति पुनः पुनरासेवनेन, निपतति असंयमे-सावद्यक्रियायां दृढमत्यर्थं नैव यतोऽनुष्ठानात्, किमुक्तं भवति ? अनुचितानुष्ठानपीडितो न पुनस्तत्करणायोत्सहेत, कदाचिदामयसंभवे च चिकित्सायामसंयमः, तदकरणे चाविधिमृतस्य संयमान्तरायः, अत एवोक्तम्।

"सो हु तवो कायव्वो, जेण मणो मंगुलं न चिंतेई, जेण न इंदियहाणी, जेण य जोगा न हायंति" ॥ इति।

तथा जनितोद्यमं-संपादितकरणमनोरथं बहूनामन्येषां समानधार्मिकाणां शिष्याणाम्, शक्यानुष्ठाने हि बहूनां चिकीर्षा संभवति नेतरस्मिन्निति, विशेषक्रियामधिकतरानुष्ठानं-प्रतिमाभ्यासादिकम्, तथाशब्दः समुच्चये, सचैवं योज्यते-शक्तौ सत्यां विशेषक्रियां चारभते, न तां निष्फलां विदधातीति।

तत्र आर्य-
मङ्गुकथा।



कथंभूतां पुनर्विशेषक्रियां करोतीत्याह—

**गुरुगच्छुन्नइहेउं, कयतित्थपभावणं निरासंसो। अज्जमहागिरिचरियं, सुमरंतो कुणइ सक्किरियं ॥११७॥**

गुरोर्गच्छस्य चोन्नतिरुत्सर्पणा–'धन्योऽयं गुरुर्गच्छो वा यत्सान्निध्यादेवंविधा दुष्करकारिणो दृश्यन्ते' इत्येवं जनश्लाघारूपा, तद्धेतुस्तत्कारणम्, तथा कृततीर्थप्रभावनां–समुत्पादितजिनशासनसाधुवादां 'साधुः–सुन्दरोऽयं जिनधर्मः सर्वधर्मेषु, वयमप्येनमेव कुर्म्मः' इत्येवमादेयत्वसाधिकामिति भावः, निराशंसः–ऐहिकामुष्मिकाशंसाविप्रमुक्तः,

तदुक्तम्—

"नो इहलोगट्टयाए आयारमहिट्ठिज्जा, नो परलोगट्टयाए आयारमहिट्ठिज्जा, नो कित्तिवन्नसद्दसिलोगट्टयाए आयारमहिट्ठिज्जा, नन्नत्थ आरहंतिएहिं हेऊहिं आयारमहिट्ठिज्जत्ति"। आर्यमहागिरेर्भगवतश्चरितं–वृत्तान्तं स्मरन् करोति सत्क्रियां भावसाधुरिति गाथाक्षरार्थः। भावार्थस्तु कथानकादवसेयः।

तच्चेदम्—

आसी वीरविणेओ, णेओयहिपारगो सुहम्मपहू। समणजणसउणिजंबू, जंबूसूरी तओ जाओ ॥१॥
तस्स य सीसो गुणमणिपभवो पभवो मुणीसरो जाओ। तस्स विणेओ सिज्जंभवो भवोयहितरीतुल्लो ॥२॥
तयणु मुणिंदो जाओ, जसभद्दो गरुयविमलजसभद्दो। भावारिअपरिभूओ, सूरी संभूयविजओ य ॥३॥
सिरिभद्दबाहुसामी, उवसामियकुमयकुग्गहपयासो। हरहासुज्जलकित्ती, कयमित्ती मुणिवरो जाओ ॥४॥
तइलोयलोयचमढणविढत्तजयमयणमल्लबलदमणो। सिरिथूलभद्दसामी, जाओ सूरी जुगपहाणो ॥५॥

तस्सासि दुन्नि सीसा, सीसामेलव्व समणसंघस्स । अज्जमहागिरिसूरी, अज्जसुहत्थी सिवसुहत्थी ॥६॥
ते य परुप्परपडिवंधबंधुरा धरियचरणकरणभरा । भवियजणकुमुयबोहणअखंडससिमंडलसमाणा ॥७॥
सरहसनमंतनरनाहनिवहमणिमउडघिट्ठपयजुयला । जुगपवरगुणगरिट्ठा, सुचिरं विहरिंसु वसुहाए ॥८॥
अह सिस्सपसिस्साणवि विहिपुव्वुवइट्ठसयलसुत्तत्थो । नियगणमप्पिऊणं महागिरी सिरिसुहत्थिस्स ॥९॥
मणं[1] परमोहि[2] पुलाए[3] आहारगं[4] खवगे[5] उवसमे[6] कप्पे[7] । संजमतियं[8] केवलं[9] सिज्झणा[10] य जंबुम्मि वुछिन्ना ॥१०॥
इय नाउं जिणकप्पं, वुच्छिन्नं तहवि तस्स परिकम्मं । कुणमाणो सो विहरइ, अममो गच्छस्स निस्साए ॥११॥
विहरंतो स महप्पा, पत्तो पाडलिपुरंमि कइयावि । तइया सुहत्थिगुरुणा, विबोहिओ तत्थ वसुभूई ॥१२॥
नियसयणपरियणे, सोवि बोहए विविहहेउजुत्तीहिं । नय तेसि कोवि बुज्झइ, तो सिट्ठी चिंतए एवं ॥१३॥
सुगुणड्ढियस्स वयणं, घयमहुसित्तु व्व पावओ भाइ । गुणहीणस्स न रेहइ, नेहविहूणो जह पईवो ॥१४॥
इय चिंतिऊण तेणं, विन्नत्ता सूरिणो जहा भयवं! । पसिय मह एह गेहं, करेह सयणाण पडिबोहं ॥१५॥
अह नाउ नाणनिहिणो, गुरुणो गुरुयं च तेसि उवयारं । कइवयपरिवारजुया, पत्ता वसुभूइगेहंमि ॥१६॥
पारद्धा धम्मकहा, विचित्तजुत्तीहि तप्पिबोहकए । इत्थंतरंमि पत्तो, महागिरी तत्थ भिक्खट्ठा ॥१७॥
अब्भुट्ठिओ य सहसा, सुहत्थिणा सो तओ पडिनियत्तो । अह विम्हियचित्तेणं, पयंपियं सिट्ठिणा एयं ॥१८॥
किं पहु! तुम्हवि अन्ने, मुणीसरा इह समत्थि गरुययरा । जं अब्भुट्ठियमेवं, इमस्स तो जंपइ सुहत्थी ॥१९॥

तत्र आर्य-
महागिरि-
कथा ।

॥२७९॥

एयस्स महामुणिणो, न हवेमो चरणरेणुतुल्ला वि । जं अइए जिणकप्पे, तप्परिकम्मं कुणइ एसो ॥२०॥

तथाहि—

उवसग्गपरीसहसहणपच्चलो निच्चलो सुहज्झाणे । बहुलमलपंकधारी, उज्झियपाणन्नभोई य ॥२१॥
ससरीरेवि हु मुच्छाविवज्जिओ नियगणेवि अममत्तो । सुन्नहरसुसाणाइसु, विचित्तठाणोवठाई य ॥२२॥
इच्चेवमाइजिणकप्पविसयपरिकम्मकारिणो तस्स । गुणसंथवं करेउं, विबोहिउं सिट्ठिसयणे य ॥२३॥
नीहरिओ तग्गेहा, तो सिट्ठी परियणं नियं भणइ । जइ भिक्खाइ इहिज्जा, कहमवि एवंविहो साहू ॥२४॥
काउं विविहासणपाणगाइ उज्झितगाणि ता तुब्भे । दुक्करकारिस्स मुणिस्स, तस्स दिज्जह पयत्तेणं ॥२५॥
सुबहुप्फलमिह दिन्नं, हविज्ज एवं परूविए संते । तत्थ महागिरिसूरी, कयावि भिक्खट्ठमणुपत्तो ॥२६॥
वसुभूइदिन्नसिक्खाणुरूवओ परियणं च दट्ठूण । दाणट्ठमुवट्ठियमुज्झियन्नपाणप्पयारेण ॥२७॥
दव्वाइसु उवउत्तो, महागिरी सायरुव्व बहुसत्तो । तं नाउ अणेसणियं, अगहियभिक्खो नियत्तेइ ॥२८॥
कहइ य सुहत्थिणोऽणेसणा कया सो भणेइ पहु ! केण ? । तुमए मइ इंतंमि, अब्भुट्ठाणं कुणंतेणं ॥२९॥
सुज्झइ न एसणा इह, इय पत्ता दोवि वइदिसिपुरीए । जियपडिमं वंदित्ता, तत्थज्जमहागिरी भयवं ॥३०॥
नयरंमि एलगच्छे, पत्तो तत्थ य गयग्गपयसेले । काउं समाहिणा अणसणं गओ अमरलोगंमि ॥३१॥

इति स्फुरच्छारदवारिदप्रभं, चरित्रमाकर्ण्य महागिरेर्गुरोः ।

विधत्त संसारसमुद्रमज्जिनीं, शुभक्रियां साधुजना अनारतम् ॥३२॥

## ॥ इति आर्यमहागिरिकथा ॥

अनुमेवार्थं स्फुटतरं भावयन्नाह—

**सक्कंमि नो पमायइ, असक्ककज्जे पवित्तिमकुणंतो । सक्कारंभो चरणं, विसुद्धमणुपालए एवं ॥११८॥**

'शक्ये' सामर्थ्योचिते समितिगुप्तिप्रत्युपेक्षणास्वाध्यायाध्ययनादौ 'न प्रमाद्यति'नालस्यवान् स्यात्, अशक्ये—जिनकल्पमासक्षपणादौ प्रवृत्तिमङ्गीकारमकुर्वन् शक्यारम्भो भवतीति गम्यते । स च चरणं—संयमं विशुद्धमकलङ्कम्, अनुरूपं कालसंहननादीनां पालयति वर्द्धयति एवम्—उक्तन्यायेन, सम्यगारम्भस्येष्टसिद्धिहेतुत्वादिति ।

ननु धर्ममपि कुर्वन् कश्चिदसदारम्भः स्याद्? उच्यते, स्यादेव, मतिमोहमानातिरेकवशात् । कथमिव क इवेति पराकूतमाशङ्क्याह—

**जो गुरुमवमन्नंतो, आरंभइ किर असक्कमवि किंचि । सिवभूइ व्व न एसो, सम्मारम्भो महामोहो ॥११९॥**

यः कश्चिन्मन्दमतिर्गुरुं—धर्माचार्यमवमन्यमानो 'हीनाचारोऽयम्' इत्यवज्ञया पश्यन्नारभते—प्रकर्तुं प्रतिजानीतेऽशक्यमपि—कालसंहननानुरूपं जिनकल्पादिकमपि गुरुभिरक्रियमाणमेव, नतु शेषमनुष्ठानमिति प्रक्रतम्, शिवभूतिरिव आद्यदिगम्बरवत् नैवैष—प्रक्रान्त पुरुषः सम्यगारम्भः—सत्प्रवृत्तिर्महामोहाद्धेतो, अयमाशयः—नाकृतज्ञताऽज्ञानातिरेकौ विना कश्चिद् गुरोः परमोपकारिणश्छायाभ्रंशायोत्सहते इति गाथाक्षरार्थः । भावार्थः कथानकगम्यः ।

तच्चेदम्—

रहवीरपुरे नयरे, सीहरहो नाम पत्थिवो हुत्था । साहसबलमाणधरो, सिवभूई तस्स पाइक्को ॥१॥
सूरोत्ति समाइट्ठो, सो महुरासामिणो गहणकज्जे । सामंतमंतिसहिओ दिन्नंमि पयाणए पढमे ॥२॥
संदेहो संजाओ, सामंताईण तत्थ सव्वेसिं । उत्तरदाहिणमहुराण काणु घित्तुं समाएसो ? ॥३॥
पुण पुच्छियंमि नियमा, रूसइ राय त्ति किमिह कायव्वं । इय चिंताउलहियया, भणिया सिवभूइणा ते उ ॥४॥
भो ! भो ! किं चिंताए, सयराहं दोवि गिण्हिमो महुरे । बलियत्ते डिंभाणं, नहि दोसो होइ कइयावि ॥५॥
नवरमहं एगागी, तुब्भे सव्वेवि होह एगत्थ । दुग्गेज्झमहं घित्थं, इयरं तुब्भे य सव्वेवि ॥६॥
अह संमएण तेसिं, गहिओ सिवभूइणा पयंडेण । गंतूण दाहिणाए, महुराए सामिओ सहसा ॥७॥
इयरेवि उत्तराए, महुराए सामियं गहेऊण । रहवीरपुरं पत्ता, जुगवं वद्धाविओ राया ॥८॥
सिवभूइसाहसेणं, तुट्ठो तं पइ निवो पयंपेइ । मग्गसु वरं महाबल ! सुहड ! फुडं नियमणोभिमयं ॥९॥
सिवभूइणा पवुत्तं, जइ तुट्ठो सुट्ठु देहि तो देव ! । मह इच्छियं पयारं, नयरे रत्तिं व दिवसं वा ॥१०॥
एवं ति पत्थिवेणं, पडिवन्ने निब्भओ भमइ एसो । न गणइ कालमकालं, अक्खलिओ नयररक्खेहिं ॥११॥
कइयावि मज्झरत्ते, अहिए ऊणे व एइ कइयावि । भज्जा य जग्गमाणी, चिट्ठइ जा तस्स आगमणं ॥१२॥
निविन्ना सासूए, साहइ सा तुज्झ नंदणो एसो । एइ चिराओ गेहं, अहंपि दुक्खेण जग्गामि ॥१३॥

सा चिंतइ जइ राया, तुट्ठो न तहावि एरिसं जुत्तं । उस्सिंखलत्तमेयस्स, सिक्खविस्सामि तो एयं ॥१४॥
तो भणइ सुवसु सुण्हे ! तुममहयं चेव अज्ज जग्गेमि । इय भणिय पिहियदारा, जग्गिया सा सुया तत्तो ॥१५॥
सो मज्झरत्तसमए, उग्घाडावेइ जाव घरदारं । भो ! भणियं जणणीए रुट्ठाए एरिसं वयणं ॥१६॥
एत्तियमित्तनिसाए, उग्घाडं जत्थ पिच्छसे दारं । तत्थेव गच्छ पुत्तय ! न इह गिहे जग्गए कोवि ॥१७॥
जणणीवयणं सोउं, गहिओ माणेण माणसे एसो । साहूवसयदारं, निच्चुग्घाडं नियइ कहवि ॥१८॥
तत्थ नियच्छइ सूरिं, भयसंगविवज्जियं जियकसायं । नामेण अज्जकण्हं, सज्झायंतं महुरघोसं ॥१९॥
धन्नो एस कयत्थो, रहिओ माणावमाणदुक्खेहिं । इय चिंततो वंदइ, सूरिं भूलुठियभालयलो ॥२०॥
भणइ य भयवं ! भीओ, भवभमणाओ तुहागओ सरणं । नियदिक्खादाणेणं, करेहि ता पहु ! पसायं मे ॥२१॥
भणइ गुरू को सि तुमं, किं वा पव्वयसि सोवि पडिभणइ । नयरेसरस्स भिच्चो, सिवभूई भवविरत्तो हं ॥२२॥
कह रायाणमपुच्छिय, पव्वावेमि त्ति जंपिए गुरुणा । सो भणइ तुम्ह पुरओ, दिक्खं तो हं सयं गिण्हे ॥२३॥
इय भणिय जाव लोयं, एसो सयमेव काउमारद्धो । ता दिक्खिओ गुरूहिं, अणवत्थादोसभीएहिं ॥२४॥
बलिमड्डाए राया, उप्पव्वाविस्सइ त्ति संकाए । सव्वेवि समुच्चलिया, पत्ता देसंतरं अन्नं ॥२५॥
कालेण पुणो रन्ना, भत्तिब्भरनिब्भरेण आहूओ । सिवभूई तंमि पुरे कण्हायरिएहिं सह पत्तो ॥२६॥
दंसणहेउं तो सो, आहूओ नियमंदिरं रन्ना । संमाणिओ य सुंदरकंबलरयणप्पयाणेण ॥२७॥



तत्र शिवभू-
तिकथा ।

आलोइयंमि गुरुणा, भणिओ किं पुण इमं महामुल्लं । गहियं ति सो पयंपइ, दक्खिन्नाओ नरिंदस्स ॥२८॥
दिन्नं गुरूहिं तं से, मुच्छाए न परिभुंजए एसो । तं नाउमिमस्स तओ, मुच्छावुच्छेयणनिमित्तं ॥२९॥
बहिभूमिगयस्स कया, निसिज्जाउ तस्स मुणिवइणा । अप्पत्तिएण गहिओ, सिवभूई तो मणे मणयं ॥३०॥
अह अन्नया कयाई, उवहिवियारो गुरूहिं पारद्धो । जिणकप्पथेरकप्पे, पडुच्च एवं सुयपसिद्धो ॥३१॥
जिणा बारसरूवाइं, थेरा चउदसरूविणो । अज्जाणं पन्नवीसं तु, अओ उड्ढं उवग्गहो ॥३२॥
दुगतिगचउक्कपणगं, नवदसइक्कारसे व बारसगं । एए अट्ठविगप्पा, उवहिंमि उ हुंति जिणकप्पे ॥३३॥
पुत्तीरयहरणेहिं, दुविहो तिविहो य इक्ककप्पजुओ । चउहा कप्पदुगेणं, कप्पतिगेणं तु पंचविहो ॥३४॥
दुविहो तिविहो चउहा, पंचविहो वि हु सपायनिज्जोओ । जायइ नवहा दसहा, इक्कारसहा व बारसहा ॥३५॥
केवल उस्सग्गमउ त्ति दुक्करो एस मंदसत्ताणं । सुकरो य उत्तमो तह उत्तमसत्ताण सत्ताणं ॥३६॥
तं सोउं सिवभूई, जंपइ जइ एस उत्तमो कप्पो । काउं जुज्झइ परलोयसाहणे बद्धकच्छाणं ॥३७॥
ता एस किं न कीरइ, साहूहिं मुक्खसुक्खकंखीहिं । मोत्तूण वत्थपत्ताइसंगहं जिणवराविहियं ? ॥३८॥
जं किर गुरुस्स लिंगं, तं चिय सीसस्स जुज्जए काउं । लोएवि लिंगिणो जं, नियनियदेवाणुरूवंति ॥३९॥

**गुरुणा पडिभणियं—**

तित्थंकराणुचिन्नं, किरियं अम्हारिसा कह कुणंति ? । किं करिवरपल्लाणं, तरंति नणु रासभा वोढुं ? ॥४०॥

पढमे च्चिय संघयणे, सो कीरइ गरुयसत्तसारेहिं । केवलमुववूह च्चिय, कायव्वो तस्स अम्हेहिं ॥४१॥
तित्थंकराणुकारं, काउं नहु तरइ पागओ पुरिसो । गत्ताकोलो हरिकुंजरस्स किं लहइ तुल्लत्तं ? ॥४२॥
आणावत्तित्तं चिय, पहुणो आराहणं इह पहाणं । नय कायरिओ सेवइ, रायाणं रायचिण्हेहिं ॥४३॥
पंचविहो उवइट्ठो, कप्पो वीरेण तं च जहजुग्गं । जहसत्तीइ कुणंतो, आणं आराहए तस्स ॥४४॥
पढमो य थविरकप्पो, परिहारविसुद्धिकप्पजिणकप्पा । पडिमाकप्पो भणिओ, तहा अहालंदकप्पो य ॥४५॥
तत्थ य इच्छा[1] मिच्छा[2], तहक्कारो[3] वस्सिया[4] य निस्सीही[5] । आपुच्छणा[6] पडिपुच्छा[7] छंदणा[8] य निमंतणा[9] चेव ॥४६॥
[10]उवसंपय त्ति दहविहसामायारीइ पालणं निच्चं । मासकप्पविहारो, सयावि वासो गुरुकुलंमि ॥४७॥
एमाइसुद्धकिरियाकरणं खलु होइ थेरकप्पो त्ति । परिहारसुद्धिकप्पो, इय भणिओ जिणवरिंदेहिं ॥४८॥
गिम्हसिसिरवासासुं, चउत्थयाई उ बारसंतो य । परिहारियाण उ तवो, जहन्नमज्झुक्कसो कमसो ॥४९॥
पारणगे आयामं पंचसु गह दोसु भिग्गहो भिक्खे । अणुपरिहारियकप्पट्ठियाण निच्चंपि आयामं ॥५०॥
एवं छम्मासतवं, चरिउं परिहारिया अणुचरंति । अणुचरगे परिहारियपयट्ठिए जाव छम्मासा ॥५१॥
कप्पट्ठिओवि एवं, छम्मासतवं करेइ सेसा उ । अणुपरिहारियभावं, वयंति कप्पट्ठियत्तं च ॥५२॥
इय अट्ठारसमासो, परिहारतवो य तं तु पडिवज्जे । जंमेण तीसवरिसो, परियाएणं च गुणवीसो ॥५३॥
कप्पसमत्तीइ तयं, जिणकप्पं वा उविंति गच्छं वा । पडिवज्जमाणगा पुण जिणस्सगासे पवज्जंति ॥५४॥



तत्र शिवभूतिकथा ।

जिणपासपवन्नस्स व, पासे तं पुरिमपच्छिमाणं वा । होइ जिणाणं तित्थे, परिहारविसुद्धिचरणं तु ॥५५॥
जिणकप्पिया उ दुविहा, पाणीपाया पडिग्गहधरा य । पाउरणमपाउरणा, इक्किक्का ते भवे दुविहा ॥५६॥
तवेण[1] सुत्तेण[2] सत्तेण[3], एगत्तेण[4] बलेण[5] य । तुलणा पंचहा वुत्ता, जिणकप्पं पडिवज्जओ ॥५७॥
छम्मासिएण तवसा[1], सुत्तेणुक्कोसओ उ किंचूणे । दसपुव्वे उ जहन्ने, अडपुव्वे नवमवत्थुतियं[2] ॥५८॥
सीहाइभयविमुक्को[3], अणविक्खंतो य बिइयसाहिज्जे[4] । आइमसंघयणतिए, पवड्ढमाणो[5] भवे जुग्गो ॥५९॥
जिणकप्पिया य साहू, उक्कोसेणं तु एगवसहीए । सत्त य हवंति कहमवि, अहिया कइयावि नो होंति ॥६०॥
मासाई सत्तंता[7] पढमा[8] बियं[9] तइयं[10] सत्तराइदिणा । अहरायं[11] एगराई[12], भिक्खुपडिमाण बारसगं ॥६१॥
पडिवज्जइ एयाओ, संघयणधिईजुओ महासत्तो । पडिमा उ भावियप्पा, संमं गुरुणा अणुन्नाओ ॥६२॥
गच्छे च्चिय निम्माओ, जा पुव्वा दस भवे असंपुन्ना । नवमस्स तइयवत्थुं होइ जहन्नो सुयाभिगमो ॥६३॥
वोसट्ठचत्तदेहो, उवसग्गसहो जहेव जिणकप्पी । एसण अभिग्गहीया, भत्तं च अलेवडं तस्स ॥६४॥
गच्छा विणिक्खमित्ता, पडिवज्जइ मासियं महापडिमं । दत्तेगा भोयणस्स, पाणस्स य तत्थ एग भवे ॥६५॥
जत्थत्थमेइ सूरो, न तओ ठाणा पयंपि संचलइ । नाएगराइवासी, एगं च दुगं च अन्नाए ॥६६॥
दुट्ठाण हत्थिमाईण, नो भएणं पयंपि ओसरइ । एमाइनियमसेवी, विहरेइ अखंडिओ मासो ॥६७॥
पच्छा गच्छमुवेई, एव दुमासी तिमासी जा सत्त । नवरं दत्ती वड्ढइ, जा सत्त उ सत्तमासीए ॥६८॥

तत्तो य अट्ठमीया, अहवा इह पढम सत्तराइंदी । तीइ चउत्थचउत्थेणऽपाणएणं अह विसेसो ॥६९॥
उत्ताणगपासल्ली, नेसज्जी वा वि ठाणठाइत्ता । घोरुवसग्गे सहए, दिव्वाईए अकंपमणो ॥७०॥
दोच्चा वि एरिस च्चिय, लहिया गामाइयाण नवरं तु । उक्कुडलगंडसाई, दंडाययउव्व ठाइत्ता ॥७१॥
तच्चावि एरिस च्चिय, नवरं ठाणं तु तस्स गोदोही । वीरासणमहवावि ठाइज्जा अंबखुज्जो वा ॥७२॥
एमेव अहोराई, छट्ठं भत्तं अपाणगं नवरं । गामनगराण बहिया वग्घारियपाणिए ठाणं ॥७३॥
एमेव एगराई, अट्ठमभत्तेण ठाणबाहिरओ । ईसीपब्भारगए, अणमिसनयणेगदिट्ठीए ॥७४॥
लंदित्ति होइ कालो, सो पुण उक्कोसमज्झिमजहन्नो । उदइल्लकरो जा इह, सुकइ सो होइ हु जहन्नो ॥७५॥
उक्कोस पुव्वकोडी मज्झं पुण हुंतणेगठाणाइं । उक्कोसमहालंदं, पणरत्तं इत्थ निद्दिट्ठं ॥७६॥
जम्हा उ पंचरत्तं, चरंति तम्हा उ हुंतहालंदी । पंचेव होइ गच्छो, तेसिं उक्कोसपरिमाणं ॥७७॥
जा चेव य जिणकप्पे, मेरा सा चेव लंदियाणंपि । नाणत्तं पुण सुत्ते, भिक्खाए मासकप्पे य ॥७८॥
अहलंदियाण गच्छे, अप्पडिबद्धाण जह जिणाणं तु । नवरं कालविसेसो उउवासे पणग चउमासो ॥७९॥
गच्छे पडिबद्धाणं, अहलंदीणं पुणो विसेसोऽयं । जो तेसि उग्गहो किर, सो आयरियाण आभवइ ॥८०॥
एगवसहीइ पणगं, छव्वीहीओ कुणंति गामंमि । दिवसे दिवसे अन्नं, अडंति वीहिं तु नियमेणं ॥८१॥
पडिबद्धा इयरे विय, इक्किका ते जिणा य थेरा य । अत्थस्स उ देसंमि, असमत्ते तेसि पडिबंधो ॥८२॥



तत्र शिवभू-
तिकथा ।

लग्गाइसु तूरंते, तो पडिवज्जित्तु खित्तबाहिठिया । गिण्हंति जं न गहियं, तत्थ य गंतूण आयरिओ ॥८३॥
तेसिं पयं पयच्छइ, खित्तं इंताण तेसिमे दोसा । वंदंतमवंदंते, लोगंमि य होइ परिवाओ ॥८४॥
न तरिज्ज जइ य गंतुं, आयरिओ ताहे एइ सो चेव । अंतरपल्लिं पडिवसभ गामबहिं अन्नवसहिं वा ॥८५॥
तीए य अपरिभोगो, ते वंदंते न वंदए सोउ । तं घित्तुमपडिबद्धा, तओ जहिच्छाइ विहरंति ॥८६॥
जिणकप्पिया वि तहियं, किंपि तिगिच्छं न चेव कारिंति । निप्पडिकम्मसरीरा, अच्छिमलंपि हु न अवणिंति ॥८७॥
थेराणं नाणत्तं, अतरंतं अप्पिणंति गच्छस्स । ते तस्स फासुएणं, करिंति सव्वंपि परिकम्मं ॥८८॥
इक्किक्कपडिग्गहगा, सप्पाउरणा हवंति थेरा उ । जे पुण सिं जिणकप्पे, भयए सिं वत्थपायाई ॥८९॥
गणमाणओ जहन्ना तिन्नि गण सयग्गसो उ उक्कोसा । पुरिसपमाणे पनरस, सहस्सओ चेव उक्कोसा ॥९०॥
पडिवज्जमाणगा वा, इक्काइ हविज्ज ऊणपक्खेवि ।। होंति जहन्ना एए, सयग्गसो चेव उक्कोसा ॥९१॥
पुव्वपडिवन्नगाणवि, उक्कोसजहन्नओ परीमाणं । कोडिपुहुत्तं भणियं, मुणीण हालंदियाणं तु ॥९२॥
पंचवि इमे पहाणा, अन्नुन्नानिंदयाण साहूणं । अन्नुक्करिसविमुक्कइयत्रिवज्जयाणं जओ भणियं ॥९३॥
जोवि दुवत्थतिवत्थो, एगेण अचेलओ व संथरइ । नय ते दूसिंति परं, सव्वेवि य ते जिणाणाए ॥९४॥
इत्थ किर थेरकप्पो, निच्चो जम्हा इमंमि निप्पन्ना । सेसाण हुंति जोग्गा, तित्थं च इमेण निव्वहइ ॥९५॥
दुब्बलसंघयणाणं, एसच्चिय वद्धमाणपुरिसाणं । उचिओ कप्पो तम्हा, एयंमि हविज्ज उज्जुत्तो ॥९६॥

इय विविहजुत्तिसारं, पन्नविओ सूरिणा तहवि एसो । गाढाभिमाणवसओ, पडिभणिउं एवमाढत्तो ॥९७॥
जइ ताव मंदसत्ता, तुब्भे सुहलंपडा न उज्जमह । सइ सामत्थे किमहं, पमायसीलो हविस्सामि ? ॥९८॥
इय जंपंतो बहुहा, वारिज्जंतोवि वुड्ढवसहेहिं । पडिवन्ननग्गभावो, सिवभूई निग्गओ सहसा ॥९९॥
नेहेण य पव्वइया, लहुभइणी तस्स उत्तरा नाम । तं वच्चंतं दट्ठुं चिंतइ मह भाउणा नूणं ॥१००॥
एएण पगारेणं, दिट्ठो परलोयसाहणोवाओ । इय चिंतिय संचलिया, तहेव सा मग्गओ तस्स ॥१०१॥
लज्जाकरि त्ति काउं, वेसाए साडिया नियत्था से । तमणिच्छंतिं दट्ठूण, भाउणा सा इमं भणिया ॥१०२॥
देवयदिन्नं एयं, मा मुंचसु सुयणु साडियं एगं । इय एगसाडियत्तं, संजायं तस्स अज्जाणं ॥१०३।
एवं सो मोहंधो, आरंभेऊण कट्ठणुट्ठाणं । जाओ मिच्छादिट्ठी, दुग्गइदोहग्गभागी य ॥१०४॥

तथा चागमः—

ऊहाए पन्नत्तं, बोडियसिवभूइउत्तराहि इमं । मिच्छादंसणमिणमो, रहवीरपुरे समुप्पन्नं ॥१०५॥

अशक्यानुष्ठाने सुबहु शिवभूतिर्हतमतिः, प्रवृत्तिं कुर्वाणः समजनि भवे दुःखभवनम् ।
इति ज्ञात्वा सम्यक् सपदि परिहृत्याग्रहमिमं, सदा शक्यारम्भं कुरुत यतयो निर्मलधियः ॥१०६॥

तत्र शिवभूतिकथा ।

॥ इति शिवभूतिकथा ॥

महामोहता चास्य गुरावनवज्ञाबुद्ध्याऽऽत्मानमुन्नमयितुं प्रवृत्तत्वात् द्रष्टव्या। गुर्वाज्ञया शासनोन्नतिकारिणो लब्धिख्यातिनिरपेक्षस्य साधोरधिकृतपःकर्मातापनादिकरणं च वीर्याचाराराधनरूपत्वाद् गुणकरमेवेति।

इत्युक्तं शक्यानुष्ठानारम्भरूपं पञ्चमं भावसाधोर्लिङ्गम्, इदानीं षष्ठं गुणानुरागमाह—

**जायइ गुणेसु रागो, सुद्धचरित्तस्स नियमओ पवरो। परिहरइ तओ दोसे, गुणगणमालिन्नसंजणए॥१२०॥**

'जायते' संपद्यते गुणेषु—

"वय[५] समणधम्म[१०] संजम[१७] वेयावच्चं[१०] च बम्भगुत्तीओ[९]। नाणाइतियं[३] तव[१२] कोहनिग्गहा[४] इय चरणमेयं॥१॥

पिंडविसोही[४] समिई[५] भावण[१२] पडिमाउ[१२] इन्दिय[५]निरोहो। पडिलेहण[२५] गुत्तीओ[३], अभिग्गहा[४] चेव करणं तु"॥२॥

इत्यागमप्ररूपितेषु मूलगुणोत्तरगुणसंज्ञितेषु रागः—प्रतिबन्धः शुद्धचारित्रस्य—निष्कलङ्कसंयमस्य नियमतोऽवश्यंभावेन प्रवरः—प्रधानो न मिथ्या इति भावः, परिहरति—वर्जयति ततस्तस्माद्—गुणानुरागाद्दोषान्—दुष्टव्यापारान्, किंविशिष्टान्? गुणगणमालिन्यसंजनकान्—ज्ञानादीनामशुद्धिहेतून् भावसाधुरिति।

गुणानुरागस्यैव लिङ्गमाह—

**गुणलेसंपि पसंसइ, गुरुगुणबुद्धीइ परगयं एसो। दोसलवेणवि नियय, गुणनिवहं निग्गुणं गणइ॥१२१॥**

गुणलेशमपि, आस्तां महीयांसं गुणमित्यपेरर्थः, प्रशंसति—श्लाघते परगतमन्यसत्कमेष—भावसाधुः, उत्तमप्रकृतित्वान्महतोपि दी-

षानुत्सृज्य स्वल्पमपि परगतं गुणं पश्यति, कुथितकृष्णसारमेयशरीरे सितदन्तपङ्क्तिं पुरुषोत्तमवत् । तथा दोषलवेनापि-अल्पप्रमादस्खलितेनापि निजकम्-आत्मीयं गुणनिवहं-गुणकलापं निर्गुणम्-असारं गणयति-कल्पयति 'धिङ् मां प्रमादशीलम्' इति भावनया प्रकृतो भावयति, कर्णस्थापितविस्मृतशुण्ठीखण्डापश्चिमदशपूर्वधरश्रीवज्रस्वामिवदिति ।

पुरुषोत्तमचरितं पुनरेवम्—

अत्थि सुरट्ठाविसए, बारवई नाम पुरवरी रम्मा । कञ्चणमणिमयमन्दिरपायारा धणयनिम्मविया ॥१॥
तत्थ य हरिकुलनहयलहरिणंको अरिसमूहमयमहणो । महुमहणो नाम निवो दाहिणभरहद्धरज्जधरो ॥२॥
तत्थ कयावि हु विहुणियअइघणघणघाइकम्मपब्भारो । दुरियदुमदलणनेमी अरिट्ठनेमी समोसरिओ ॥३॥
सिरिरेवयगिरिसंठियउज्जाणे नन्दणंमि रमणीए । सुररइयसमोसरणे, उवविट्ठो देसणं काउं ॥४॥
तत्तो निउत्तपुरिसा, जिणआगमणं सुणेवि हिट्ठमणो । चलिओ भरहद्धवई, वन्दणहेउं जिणिंदस्स ॥५॥
चलिया तेण समाणं, दसवि दसारा समुद्दविजयाई । तह चेव महावीरा, पञ्चवि बलदेवपामुक्खा ॥६॥
सोलस रायसहस्सा, संचलिया उग्गसेणनिवपमुहा । इगवीससहस्सा, वीरसेणपमुहाण वीराणं ॥७॥
दुद्दन्तकुमाराणं, सट्ठिसहस्साण संबपमुहाणं । पज्जुन्नप्पमुहाओ, अद्धुट्ठकुमारकोडीओ ॥८॥
छप्पन्नं च सहस्सा, महसेणप्पमुहबलवगाणंपि । अन्नोवि सिट्ठिमाई नागरलोगो अणेगविहो ॥९॥
इत्तो सोहम्मवई, विण्हुमणं ओहिणा मुणेऊण । गाढं हरिसियहियओ, सहागओ भणइ नियअमरे ॥१०॥



तत्र पुरुषोत्तमचरितम्

हंहो ! पिच्छह पिच्छह, एए किर केसवा महाभागा । गुरुगुणबुद्धीइ नियन्ति, परगयं गुणलवंपि सया ॥११॥
सिसुणो इव खलु पहुणो, जहतह जम्पन्ति इय विचिन्तेउं । सिग्घं परिक्खणत्थं, एगो अमरो इहं पत्तो ॥१२॥
ओसरणगमणमग्गे, गयजीयं परमदुरहिगन्धड्ढं । वियसियमुहसियदन्तं, एगं साणं विउव्वेइ ॥१३॥
तग्गन्धेणभिभूयं, सिन्नं सयलंपि अन्नओ हुत्तं । दढपिहियवयणनासाउडं फुडं गन्तुमारद्धं ॥१४॥
कण्हो पुण वच्चन्तो, तेणेव पहेण दट्ठु तं साणं । परगुणलेसग्गहणंमि लालसो जम्पए एवं ॥१५॥
एयस्स कसिणसाणस्स, आणणे सेयदन्तघणपंती । एसा मरगयथाले, मुत्तामालेव कह सहइ ? ॥१६॥
इय नाउं हरिचरियं, कहवि न दोसं वयन्ति सप्पुरिसा । सो जायपच्चओ सुरवईमि, पयडेइ नियरूवं ॥१७॥
परगुणगहणपहाणं, बहुसो थुणिउं हरिं सबहुमाणं । असिवोपसमणभेरिं च, दाउ अमरो गओ सग्गं ॥१८॥
तत्तो कण्हो पत्तो, ओसरणे जिणवरं नमिय विहिणा । उचियट्ठाणे निसियइ, इय सामी कहइ धम्मकहं ॥१९॥
भो भविया ! भवगहणे, दुलहं कहकहवि लहिय संमत्तं । तस्स विसुद्धिनिमित्तं, संतगुणपसंसणं कुणह ॥२०॥
जह सयलतत्तविसया, अरुई सम्मत्तनासिगा भणिया । तह संतगुणाणुववूहणा वि अइयारसंजणणी ॥२१॥
जइ संतावि न हु गुणा, पसंसणं पाउणंति सत्ताणं । तो बहुकिलेससज्झाण, ताण को आदरं कुज्जा ? ॥२२॥
ता नाणाईविसए, गुणलेसं जत्थ जत्तियं पासे । संमत्तंगं अवगम्म, तत्थ संसिज्ज तावइयं ॥२३॥
जो पुण मच्छरवसओ, पमायओ वा गुणे न संसिज्जा । संतेवि सो दुहाइं, पावइ भवदेवसूरि व्व ॥२४॥

पुच्छेइ हरी भयवं ! भवदेवो नाम एस को सूरि ?। भणइ पहू इह भरहे, आसि पुरा एस मुणिनाहो ॥२५॥
बुद्धीइ सुरगुरुसमो, नवरं चरणंमि ईसिसिढिलमणो ।तस्स य एगो सीसो, नामेणं बन्धुदत्तु त्ति ॥२६॥
सो पुण निम्मलचरणो, सुहुममई वायलद्धिसंपन्नो । तक्कागमेसु कुसलो, अमच्छरिल्लो विणीओ य ॥२७॥
तो तस्स पायमूले, जिणसमयवियक्खणा समणसंघा । सत्थवियड्ढा सड्ढावि, विणयपवणा कयंजलिणो ॥२८॥
निसुणंति जिणिंदागममुवउत्तमणा तहत्ति जम्पन्ता । पकुणंति य बहुमाणं, पवित्तचारित्तजुत्तु त्ति ॥२९॥
तो भवदेवो सूरी, मच्छरभरिओ विचिंतए हियए । मं मुत्तु इमे मुद्धा, किं एयं पज्जुवासंति ? ॥३०॥
अहवा मुद्धा मुणिणो, गिहिणो व इमे कुणंतु जं किंपि । एस उण कीस सीसो, तहा मए दिक्खिओ वि फुडं ? ॥३१॥
तह बहुसुओ मइ च्चिय, कओवि तह गुरुगुणेसु ठविओत्ति । मं अवगणिउं एवं, वट्टइ परिसाइ भेयंमि ॥३२॥
नरनाहंमि जियन्ते, न छत्तभङ्गो हवेइ एसोवि । एएण अणज्जेणं, मन्ने ण सुओ जणपवाओ ॥३३॥
जइ संपइ वारिज्जइ, इमो मए धम्मकहणभाईयं । तो मच्छरि त्ति लोगो, मुद्धो मं मन्नए एस ॥३४॥
ता काउ उवेह च्चिय, इमंमि मूढंमि इण्हि मह उचिया । इय जा मच्छरपुन्नो, सो सूरी गमइ कइवि दिणे ॥३५॥
ता पाडलिपुरनयरा संघाएसेण तस्स पासंमि । पत्तो मुणिसंघाडो, मुणीहि अब्भुट्ठिओ सोवि ॥३६॥
अथ तस्य यतिपतेर्यतिजनस्य कृत्वा यथोचितं सर्वम् । मुनिश्रृंगाटक एवं, संघादेशं न्यवीविदत ॥३७॥
प्रज्ञावज्ञातगुरुर्विदुराख्यो व्यक्तलिङ्गिकस्तत्र । स्वैरं विजहार चिरं, षड्दर्शनविप्लुतिं कुर्वन् ॥३८॥

तथाहि—

काणादानमदान् प्रनष्टधिषणाधिक्यान् बहून् गौतमान् , शाक्यान् तर्कवचोविचारविमुखान् सांख्यानसंख्यानपि ।
कौलान् भ्रष्टबलान् निरस्तयशसो मीमांसकान् व्यंसकान्, कुर्वन् वारणवद्विशङ्कमचरत् सर्वत्र गर्वोद्धुरः ॥३९॥
संप्रति जैनमुनीन्द्रैः, सार्द्धं स्पर्द्धां चिकीर्षते दुष्टः । तद्दर्शनकृत्यमिदं कर्तुं तत्रैत लघु यूयं ॥४०॥
इय सोउं सो सूरी, जा चलिओ पाडलीपुराभिमुहं । पवयणपभावणत्थं, ता जाया अभिमुहा छीया ॥४१॥
वामा खेमा लाभंमि, दाहिणा पच्छिमा नियत्तेइ । छीया नूणमभिमुहा कयंपि कज्जं विणासेइ ॥४२॥
इय चिंतिऊण सूरी, विहारकरणाउ उवरओ सहसा । तो भणियं आगंतुयमुणिसंघाडेण वयणमिणं ॥४३॥
जइ तुम्हाण विहारो, सउणअभावाउ तत्थ न हु जाओ । ता बंधुदत्तसाहुं, लहु पेसह वायलद्धिल्लं ॥४४॥
तो सूरिणा बहुविहं, विचिंतिउं सो विसज्जिओ तत्थ । पत्तो थोवदिणेहिं, सुसउणपरिवुड्ढिउच्छाहो ॥४५॥
दिट्ठो तत्थ नरिंदो, कया पइन्ना इमा दुवेहिंपि । जो जेण नूण जिप्पइ, स तस्स सीसो हवेउ त्ति ॥४६॥
तो बंधुदत्तमुणिणा, सियवायविसुद्धबुद्धिविहवेण । बहुवयणवित्थरेणं, वायंमि पराजिओ विदुरो ॥४७॥
लद्धं च विजयपत्तं, विदुरो पव्वाविओ तया चेव । वियसियमुहकमलेणं, पसंसिओ सयलसंघेण ॥४८॥
विदुरविणेयसमेओ, पए पए बहुजणेण थुव्वंतो । तो बंधुदत्तसाहू, पत्तो नियसूरिपासंमि ॥४९॥
तेण पुण मच्छरवसा, न मणागंपि हु पसंसिओ एस । नय दिट्ठो ससिणेहं, आलविओ सहरिसं नेव ॥५०॥

हा ! जइ गुरुणोवि मए, न रंजिया मंदबुद्धिकलिएण । ता सेसाण गुणाणं समज्जणेणं हवउ मज्झ ॥५१॥
इय चिंताउलचित्तो, हिययंमि वहंतओ महाखेयं । तप्पभिइ बंधुदत्तो, जाओ गुणअज्जणे विमुहो ॥५२॥
अकयनियदोससुद्धी, भवदेवमुणीसरोवि मरिऊण । पयडबहुकिब्बिसेसुं, किब्बिसिएसुं सुरो जाओ ॥५३॥
तयणु दरिद्दियदियनंदणो य सो मूयओ समुप्पन्नो । कहकहवि लहिय बोहिं, काउ तवं सग्गमणुपत्तो ॥५४॥
इय सोउ कण्हपमुहा, लोया भवदेवसूरिणो चरियं । जाया पमुइयहियया, परगुणगहणिक्कतल्लिच्छा ॥५५॥
भुज्जो भुज्जो नेमिं, पणमिय पत्ता सएसु ठाणेसु । समणगणसंपरिवुडो, विहरइ अन्नत्थ सामीवि ॥५६॥

इति स्फुरद्दोषलतालवित्रं, निशम्य विष्णो रुचिरं चरित्रम् ।
दुष्कर्मनीरौघभिदानिदाघं सुभाधवो धत्त गुणानुरागम् ॥५७॥

॥ इति पुरुषोत्तमचरित्रम् ॥

श्रीवज्रस्वामिचरितं पुनः प्रायः सुप्रतीतत्वात् दिनकृत्यटीकायां सुप्रपञ्चितत्वाच्च नेह वितन्यत इति ।

गुणानुरागस्यैव लिङ्गान्तरमाह—

**पालइ संपत्तगुणं, गुणड्ढसंगे पमोयमुव्वहइ । उज्जमइ भावसारं, गुरुतरगुणरयणलाभत्थी ॥१२२॥**

पालयति–रक्षति वर्द्धयति च जननीव प्रियपुत्रम्, संप्राप्तं–सम्यक् कर्मक्षयोपशमोपलब्धं गुणं–ज्ञानदर्शनचारित्रादिरूपम्, तथा

गुणराढ्यानां सङ्गे–मीलके चिरप्रोषितस्निग्धबन्धुसंप्रयोग इव प्रमोदमानन्दमुत्प्राबल्येन वहति–प्राप्नोति।

तद्यथा—

असतां सङ्गपङ्केन, यन्मनो मलिनीकृतम्। तन्मेऽद्य निर्मलीभूतं, साधुसम्बन्धवारिणा ॥१॥
पूर्वपुण्यतरोरद्य, फलं प्राप्तं मयाऽनघम्। सङ्गेनासङ्गचित्तानां, साधूनां गुणधारिणाम् ॥२॥

तथा गुणानुरागादेवोद्यच्छति–प्रयतते भावसारं–सद्भावसुन्दरं यथा भवति ध्यानाध्ययनतपःप्रभृतिकृत्येष्विति गम्यते। किमित्यत आह–गुरुतराणि क्षायिकभावभावित्वाद् यानि गुणरत्नानि क्षायिकज्ञानदर्शनचारित्राणि तेषां यो लाभस्तदर्थी–तदभिलाषवान्। तथाहि–भवत्येवोद्यमवतामपूर्वकरणक्षपकश्रेणिक्रमेण केवलज्ञानादिसंप्राप्तिः सुप्रतीतमेतदिति।

गुणानुरागस्यैव प्रकारान्तरेण लक्षणमाह—

**सयणुत्ति व सीस त्ति व उवगारि त्ति व गणिव्वओ व त्ति। पडिबन्धस्स न हेऊ, नियमाएयस्स गुण हीणो ॥**

स्वकीयो जनः स्वजनः, इतिशब्दस्तद्भेदसूचकः, वाशब्दः समुच्चये, ह्रस्वत्वं प्राकृतशैल्या, शिष्यो विनेय इतिवाशब्दौ पूर्ववत्, उपकारी–भक्तपानदानादिना पूर्वमुपकृतवान्। इतिवाशब्दौ प्राग्वत्। 'गणिव्वओ व त्ति' एकगच्छवासी। इतिवाशब्दौ पूर्ववदेव। एतेषामेकैकोपि प्रायः प्रतिबन्धकारणं संभवति, एतस्य पुनर्गुणानुरागिणो नियमान्निश्चयेन न–नैव हेतुर्निमित्तमेकोऽपि भवत्येतेषाम्। किंविशिष्टः सन्नित्याह–गुणहीनो–निर्गुणः।

"सीसो सज्झिलओ वा, गणिव्वओ वा न सोग्गइं नेइ। जे तत्थ नाणदंसणचरणा ते सोग्गईमग्गो ॥" इति कृत्वा।

अथ चारित्रिणां तेषां स्वजनादीनां किं विधेयमित्याह—

**करुणावसेण नवरं, अणुसासइ तंपि सुद्धमग्गंमि । अच्चंताजोग्गं पुण, अरत्तदुट्ठो उवेहेइ ॥१२४॥**

करुणा–परदुःखनिवारणबुद्धिः । उक्तं च—

"परहितचिन्ता मैत्री, परदुःखनिवारिणी तथा करुणा । परसुखतुष्टिर्मुदिता, परदोषोपेक्षणमुपेक्षा" ॥

तद्वशेन–तद्रसिकतया, नवरं–केवलं रागदोषपरिहारेणानुशास्ति–शिक्षयति तमपि–स्वजनादिकम्, अपिशब्दात्तदितरमपि, क्वेत्याह–शुद्धमार्गे–यथावस्थितमोक्षाध्वविषये । तद्यथा—

"किं नारकतिर्यङ्नरविबुधगतिविचित्रयोनिभेदेषु । बत संसरन्न सततं, निर्विण्णो दुःखनिलयेषु ॥१॥

येन प्रमादमुद्धतमाश्रित्य महाधिहेतुमस्खलितम् । संत्यज्य धर्मवित्तं, रतस्त्वमार्येतराचरणे ? ॥२॥

यन्न प्रयान्ति जीवाः, स्वर्गं यच्च प्रयान्ति विनिपातम् । तत्र निमित्तमनार्यः, प्रमाद इति निश्चितमिदं मे" ॥३॥

किंच—

केवलं रिपुरनादिमानयं सर्वदैव सहचारितामितः । यः प्रमाद इति विश्रुतः परामस्य वित्त शठतामकुण्ठिताम् ॥४॥

यत् करोति विकथाः प्रथावतीर्यत्खलेषु विषयेषु दृप्यति । सुप्तमत्त इव यद्विचेष्टते, यन्न वेत्ति गुणदोषयोर्भिदाम् ॥५॥

क्रुध्यति स्वहितदेशनेऽपि यत् ,यच्च सीदति हितं विदन्नपि । लोक एष निखिलं दुरात्मनस्तत्प्रमादकुरिपोर्विजृम्भितम् ॥६॥ 

इत्यवेत्य परिपोष्य पौरुषं दुर्जयोपि रिपुरेष जीयताम् । यत् सुखाय न भवन्त्युपेक्षिता व्याधयश्च रिपवश्च जातुचित्" ॥७॥

इत्यादिविविधवाचोयुक्तिभिरुत्पादितसंवेगं तं शुद्धधर्मे प्रवर्तयति प्रज्ञापनीयश्चेदसौ स्यात्, अत्यन्तायोग्यं—बाढमप्रज्ञापनीयं पुनस्तमरक्तद्विष्टो—रागद्वेषरहित उपेक्षते—अवधीरयति "उपेक्षा निर्गुणेषु" इति वाक्यमनुसृत्येति गाथार्थः

गुणानुरागस्यैव फलमाह—

**उत्तमगुणाणुरायाा, कालाइदोसओ अपत्ताविं । गुणसंपया परत्थवि, न दुल्लहा होइ भव्वाणं ॥१२५॥**

उत्तमा—उत्कृष्टा गुणा—ज्ञानादयस्तेष्वनुरागः—प्रीतिप्रकर्षस्तस्माद्धेतोः कालो दुःषमादिरूपः, आदिशब्दात् संहननादिपरिग्रहः, त एव दोषा—दूषणानि विघ्नकारित्वात्, ततोऽप्राप्ता अपि, आस्तां तावत्प्राप्तेत्यपेरर्थः, गुणसंपत्—परिपूर्णधर्मसामग्री वर्त्तमानजन्मनीति गम्यते, परत्रेति भाविभवे, अपिः संभावने संभवति एतद्, नैव दुर्लभा—दुरापा भवति भव्यानां—मुक्तिगमनयोग्यानामिति ।

उक्तं गुणानुरागरूपं षष्ठं भावसाधोर्लिङ्गम्, संप्रति गुर्वाज्ञाराधनरूपं सप्तमं लिङ्गमाह—

**गुरुपयसेवानिरओ, गुरुआणाराहणंमि तल्लिच्छो। चरणभरधरणसत्तो, होइ जई नन्नहा नियमा ॥१२६॥**

अत्र कश्चिदाह—

पूर्वाचार्यैश्चारित्रिणो लिङ्गषट्कमेवोक्तम्, यदवाचि—

"मग्गाणुसारी[1] सड्ढो[2] पन्नवणिज्जो[3] कियावरो चेवं । गुणरागी सक्कारंभसंगओ[6] तहय चारित्ती" ॥

तत्कुत्रेदं सप्तमं गुर्वाज्ञाराधनरूपं भावसाधोर्लिङ्गं भणितम् ?

उच्यते—

चतुर्दशशतप्रकरणप्रासादसूत्रधारकल्पप्रभुश्रीहरिभद्रसूरीभिरुपदेशपदशास्त्रे भणितमेवेदमपि लिङ्गम् । तथा चैतत्सूत्रम्—

"एयं च अत्थि लक्खणमिमस्स नीसेसमेव धन्नस्स । तह गुरुआणासंपाडणं च गमगं इह लिंगं" ॥

इत्यलं विस्तरेण, प्रकृतं सूत्रं व्याख्यानयन्नाह—गुरवः षट्त्रिंशद्गुणयुक्ताः । तथाहि—

"देसकुलजाइरूवी, संघयणी धिइजुओ अणासंसी । अविकत्थणो अमाई, थिरपरिवाडी गहियवक्को ॥१॥

जियपरिसो जियनिद्दो, मज्झत्थो देसकालभावन्नू । आसन्नलद्धपइभो, नाणाविहदेसभासन्नू ॥२॥

पञ्चविहे आयारे, जुत्तो सुत्तत्थतदुभयविहिन्नू । आहरणहेउकारणनयनिउणो गाहणाकुसलो ॥३॥

ससमयपरसमयविऊ, गम्भीरो दित्तिमं सिवो सोमो । गुणसयकलिओ जुत्तो, पवयणसारं परिकहेइ" ॥४॥

तत्र आर्यदेशोद्भूतः सुखाववोधवचनो भवति ततो देशग्रहणम्[1], कुलं–पैतृकमिक्ष्वाक्वादि, तज्जातश्च यथोत्क्षिप्तभारवहने न श्राम्यति[2], जातिर्मातृकी, तत्संपन्नो हि विनयादिगुणवान् स्यात्[3] । "यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति" इति रूपग्रहणम्[4], संहननधृतियुतो न व्याख्यानादिषु खेदमेति[5][6], अनाशंसी–श्रोतृभ्यो न वस्त्राद्याकाङ्क्षति[7], अविकत्थनो–हितमितभाषी[8], आमायी–विश्वास्यः[9], स्थिरपरिपाटिः–स्थिरपरिचितग्रन्थस्य सूत्रार्थगलनाभावात्[10], ग्राह्यवाक्यः–सर्वत्रास्खलिताज्ञः[11], जितपरिषद् राजादिसदस्यपि न क्षोभमुपयाति[12], जितनिद्रो निद्राप्रमादिनः शिष्यान् सुखेनैव बोधयति[13], मध्यस्थः—शिष्येषु समचित्तः[14], देशकालभावज्ञः–सुखेनैव गुणवद्देशादौ विहरति[15], आसन्नलब्धप्रतिभो द्राक् परवाद्युत्तरदानसमर्थः[16], नानाविधदेशभाषाज्ञः–नानादेशजान् शिष्यान् सुखेनैवावबोधयति[17],

ज्ञानाद्याचारपञ्चकयुक्तः श्रद्धेयवचनः स्यात्[24], सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञः उत्सर्गापवादप्रपञ्चं यथावद् ज्ञापयति[25], आहरणं—दृष्टान्तः, हेतुरन्वयव्यतिरेकवान्, कारणं दृष्टान्तादिरहितमुपपत्तिमात्रम्, नया नैगमादयः, एषु निपुणः सुखेनैतान् प्रयुङ्क्ते[29], ग्राहणाकुशलः बह्वीभियुक्तिभिः शिष्यान् बोधयति[30], स्वसमयपरसमयज्ञः सुखेनैव तत्स्थापनाव्यूहौ विधत्ते[32], गम्भीरोऽलब्धमध्यः[33], दीप्तिमान्—पराधृष्यः[34], शिवहेतुत्वाच्छिवः, तदधिष्ठिते देशे मार्याद्युपशमनात्[35], सौम्यः सर्वजनमनोनयनरमणीयः[36], गुणशतकलितः प्रश्रयाद्यनेकगुणोपेतो युक्तोऽर्हत्प्रवचनसारं परिकथयितुं प्रवचनानुयोगयोग्यो भवतीत्यर्थः।

अथवा एवं षट्त्रिंशद् गुणाः—

अट्ठविहा गणिसंपय, चउग्गुणा नवरि हुंति बत्तीसं। विणओ य चउब्भेओ, छत्तीस गुणा इमे तस्स ॥१॥

गणो गच्छोऽस्यास्तीति गणी आचार्यस्तस्य संपत्—समृद्धिः, सा च अष्टविधा—

"आयार[1] सुय[2] सरीरे[3] वयणे[4] वायण[5] मई[6] पओगमई[7]। एएसु संपया खलु अट्ठमिया संगहपरिन्ना" ॥

आचार[1]श्रुत[2]शरीर[3]वचन[4]वाचना[5]मति[6]प्रयोगमति[7]संग्रहपरिज्ञा[8]भेदादष्टधा, नवरं चतुर्गुणाश्चतुर्भिर्गुणिता भवन्ति द्वात्रिंशत् सूरिगुणाः।

तत्राचारोऽनुष्ठानं स एव संपत्, सा चतुर्द्धा, तद्यथा—संयमध्रुवयोगयुक्तता—चरणे नित्यं समाध्युपयुक्ततेत्यर्थः, असंप्रग्रह आत्मनो जात्याद्युत्सेकरूपाग्रहवर्जनम्[2] अनियतवृत्तिरनियतविहारः[3], वृद्धशीलता—वपुर्मनसो निर्विकारता[4]।

एवं श्रुतसंपच्चतुर्द्धा—बहुश्रुतता—युगप्रधानागमतेत्यर्थः, परिचितसूत्रता—उत्क्रमक्रमवाचनादिभिः स्थिरसूत्रता[2], विचित्रसूत्रता—स्वसमयादिभेदात्[3], घोषविशुद्धिकरणता, उदात्तादिविज्ञानात्[4]।

शरीरसंपच्चतुर्द्धा—आरोहपरिणाहयुक्तता–उचितदैर्घ्यादिविस्तरतेत्यर्थः[1], अनवत्रप्यता–अलज्जनीयाङ्गता[2], परिपूर्णेन्द्रियता अनुपहतचक्षुरादिकरणता[3], स्थिरसंहननता–तपःप्रभृतिषु शक्तियुक्तता[4]।

वचनसंपच्चतुर्द्धा—आदेयवचनता[1], मधुरवचनता[2], अनिश्रितवचनता मध्यस्थवचनतेत्यर्थः[3], असंदिग्धवचनता[4]।

वाचनासम्पच्चतुर्द्धा—विदित्वोद्देशनं–परिणामकादिकं शिष्यं ज्ञात्वेत्यर्थः[1], विदित्वा समुद्देशनम्[2], परिनिर्वाप्य वाचना–पूर्वदत्तालापकान् शिष्यमधिगमय्य पुनः सूत्रदानम्[3], अर्थनिर्वापणा–अर्थस्य पूर्वापरसांगत्येन गमनिका[4]।

मतिसम्पच्चतुर्धा—अवग्रहे[1]हा[2]वाय[3]धारणा[4]भेदात्।

प्रयोगमतिसम्पच्चतुर्द्धा—इह प्रयोगो वादमुद्रा, तत्रात्मपरिज्ञानं वादादिसामर्थ्यविषये[1], पुरुषपरिज्ञानम्–किमयं वादी सांख्यो बौद्धो वेत्यादि[2], क्षेत्रपरिज्ञानं–किमिदं मायाबहुलमन्यथा वा, साधुभावितमभावितं वेति[3], वस्तुज्ञानं–किमिदं राजामात्यसभ्यादि भद्रमभद्रकं वा[4]।

संग्रहः–स्वीकरणम्, तत्र परिज्ञानमष्टमी संपत्, सा चतुर्द्धा, तथाहि–पीठफलकादिविषया[1], बालादियोग्यक्षेत्रविषया[2], यथासमयं स्वाध्यायादिविषया[3], यथोचितविनयादिविषया चेति[4]।

तथा विनयश्चतुर्भेदः—

"आयारे १ सुयविणये २, विक्खिवणे चेव होइ बोद्धवे ३। दोसस्स य निग्घाए ४ विणए चउहेस पडिवत्ती" ॥

तत्राचारविनयः–संयमतपोगणैकाकविहारविषयचतुर्विधसामाचारीस्वरूपः, तत्र पृथ्वीकायरक्षादिसप्तदशपदेषु स्वयंकरणान्यकारण-

सीदत्स्थिरीकरणयतमानोपबृंहणात्मिका संयमसामाचारी १, पाक्षिकादिषु चतुर्थादितपसि स्वपरयोर्व्यापारणरूपा तपःसामाचारी २, प्रत्युपेक्षणादिषु बालग्लानादिवैयावृत्त्यादिषु विषीदद्गणप्रवर्त्तनस्वयमुद्यमनस्वभावा गणसामाचारी ३, एकाकिविहारप्रतिमायाः स्वयमङ्गीकरणान्याङ्गीकारणलक्षणैकाकिविहारसामाचारी ४।

श्रुतविनयश्चतुर्द्धा—सूत्रग्राहणा, अर्थश्रावणा, हितं-निःशेषवाचनात्मकः। हितं योग्यतानुसारेण वाचयते, निःशेषमापरिसमाप्तेः।

विक्षेपणाविनयश्चतुर्द्धा—मिथ्यात्वविक्षेपणान्मिथ्यादृष्टेः स्वसमये स्थापनम् १, सम्यग्दृष्टेस्त्वारम्भविक्षेपणाच्चारित्राभ्यासनम् २, च्युतधर्मस्य धर्मे स्थापनम् ३, प्रतिपन्नचारित्रस्य परस्यात्मनो वाऽनेषणीयादिनिवारणेन हितार्थमभ्युत्थानमिति लक्षणः ४।

तथा दोषनिर्घातविनयोपि चतुर्भेदः—क्रुद्धस्य क्रोधापनयनम् १, दुष्टस्य विषयादिदोषवतो दोषापनयनम् २, काङ्क्षितस्य—परसमयादिकाङ्क्षावतः काङ्क्षाच्छेदः ३, स्वतश्चोक्तदोषविरहादात्मप्रणिधानमिति स्वरूपः ४।

एवमात्मानं परं च विनयतीति विनय इति दिग्मात्रमिदम्, विशेषतस्तु व्यवहारादवसेयम्। इमे मिलिताः षट्त्रिंशद् गुणास्तस्य गणिनो भवन्ति। तृतीया (षट्त्रिंशिका) त्वियम्—

"वयछक्काई अट्ठारसेव, आयारमाइ अट्ठेव। पायच्छित्तं दसहा, सूरिगुणा हुन्ति छत्तीसं" ॥१॥

व्रतषट्कं कायषट्कं च प्रतीतम्। अकल्पादिषट्कं त्वेवम्। अकल्पो द्विधा-शिक्षकस्थापनाकल्पोऽकल्पस्थापनाकल्पश्च। तत्राद्यः—

"अणहीया खलु जेणं, पिंडेसणसिज्जवत्थपाएसा। तेणाणियाणि जइणो, कप्पंति न पिंडमाईणि" ॥

तथा—

"उउबद्धम्मि न अणला, वासावासासु दोवि नो सेहा। दिक्खिज्जंती पायं, ठवणाकप्पो इमो होइ" ॥

द्वितीयोऽनेषणीयपिण्डशय्यावस्त्रपात्रगोचरोऽकल्पः १, गृहिभाजनं कांस्यकरोटिकादि २, पर्यंको मञ्चकादावुपवेशनम् ३, निषद्या भिक्षार्थं गृहे प्रविष्टस्य साधोस्तत्र निषदनम् ४। स्नानं द्विधा–अक्षिपक्ष्मप्रक्षालनमात्रमपि देशस्नानम्, सर्वाङ्गक्षालनं तु सर्वस्नानं ५, शोभा विभूषाकरणम् ६, एषां वर्जनमेवमष्टादश। एषां चाचार्यगुणत्वमेतदपराधेषु सम्यक्प्रायश्चित्तज्ञानात्।

आचारवत्त्वादयोऽष्टौ गुणाः पूर्ववत्। तथा प्रायश्चित्तं दशधा, तद्यथा—

"आलोयण १ पडिकमणे २, मीस ३ विवेगे ४ तहा विउस्सग्गे ५। तव ६ छेय ७ मूल ८ अणवठ्ठया य ९ पारञ्चिए १० चेव" ॥

निरतिचारस्यासन्नगृहानीतभिक्षादेः प्रकटनमालोचनार्हम् १, अनाभोगादिनाऽप्रमार्जितनिष्ठीवनादावसम्पन्नवधस्य मिथ्यादुष्कृतदानं प्रतिक्रमणार्हम् २, संभ्रमभयादौ सर्वव्रतातिचारे आलोचनाप्रतिक्रमणरूपमुभयार्हम् ३, उपयुक्तकृतयोगिगृहीतान्नादेः पश्चाज्ज्ञातस्याशुद्धस्य त्यागो विवेकार्हम् ४, गमनागमनविहारादिषु पञ्चविंशत्युच्छ्वासादिचिन्तनं व्युत्सर्गार्हम् ५, यस्मिन् प्रतिसेविते निर्विकृतिकादि षण्मासान्तं तपो दीयते तत्तपोऽर्हम् ६, एवं यत्र पञ्चकादिपर्यायोच्छेदनं तच्छेदार्हम् ७, यत्र पुनर्व्रतान्यारोप्यन्ते तन्मूलार्हम् ८, यत्र पुनरनाचीर्णतया व्रतेषु न स्थाप्यते तदनवस्थाप्यार्हम् ९, यत्र च तपोलिङ्गक्षेत्रकालानां पारमञ्चति तत् पाराञ्चितमिति १०। एते व्रतषट्कायादयश्च सर्वे मिलिताः षट्त्रिंशत् सूरिगुणा भवन्तीति। एवं च गुणसमन्विता गुरवस्तेषां पदानि–चरणास्तेषां सेवा सम्यगाराधनम्, न पुनरासन्नवर्त्तित्वमात्रम्, तस्यां निश्चयेन रतो निरतः, नहि निष्ठुरोक्तिभिर्निर्भर्त्सितोपि गुरुं जि [ग्रं० ९०००] हासति, केवलं गुरुषु बहुमानमेव विधत्ते, यथा–

"धन्यस्योपरि निपतत्यहितसमाचरणधर्मनिर्वापी । गुरुवदनमलयनिःसृतो, वचनरसश्चन्दनस्पर्शः" ॥

तथा—

"लज्जादयासंजमबंभचेरं, कल्लाणभागिस्स विसोहिठाणं । जे मे गुरू सययं अणुसासयंति, ते हं गुरू सययं पूययामि"॥ इत्यादि।

तथा गुर्वाज्ञाराधने–गुर्वादेशसंपादने तल्लिप्सुस्तमेवादेशं लब्धुमिच्छुर्गुरोरादेशं प्रतीक्षमाणः समीपवर्त्स्येव स्यात् । इत्थंभूतश्चरणभरधरणे–चारित्रभरोद्वहने शक्तः–समर्थो भवति यतिः–सुविहितः, नान्यथा–भणितविपरीतो नियमान्निश्चयेनेति ।

कथं पुनरेष निश्चयोऽवसीयत इत्याह—

**सव्वगुणमूलभूओ, भणिओ आयारपढमसुत्ते जं । गुरुकुलवासोऽवस्सं, वसिज्ज तो तत्थ चरणत्थी ॥१२७॥**

सर्वे गुणा अष्टादशशीलाङ्गसहस्ररूपाः, तदानयनोपायश्चैवम् ।

जोए[3] करणे[3] सन्ना[4], इंदिय[5] भोमाइं[10] समणधंम्मे य । सीलंगसहस्साण, अट्ठारगस्स निप्पत्ती ॥ स्थापना चेयम् ।

तेषां मूलभूतः–प्रथमकारणं भणित उक्तः–आचारः प्रथममङ्गम्, तस्य प्रथमसूत्रे–"सुयं मे आवसंतेणं भगवया एवमक्खायं" इति वचनरचनाप्रकारेण यद्यस्मात् गुरुकुलवासो गुरुपादपच्छायासेवनम् । अयमत्र भावार्थः–श्रीसुधर्मस्वामी जंबूस्वामिने कथयति स्म–"श्रुतं मयाऽवसता–भगवतः समीपे तिष्ठता वक्ष्यमाणमर्थपदमिति" । कः पुनरस्य कथनस्य भावार्थः–सर्वेण धर्मार्थिना गुरुसेवा विधेयेति यस्मादेवं तस्माद्वसेत्–तिष्ठेत् तत्र–गुरुकुले चरणार्थी–चारित्रकामी । तथा च गच्छे वसतो गुणः–

"गुरुपरिवारो गच्छो, तत्थ वसंताण निज्जरा विउला । विणयाउ तहा सारणमाईहिं न दोसपडिवत्ती ॥

जइवि हु निग्गयभावो, तहावि रक्खिज्जई स अन्नेहिं । वंसकडिल्ले छिन्नोवि, वेणुओ पावए न महिं" ॥ इति ।

नन्वागमे यतेराहारशुद्धिरेव मुख्यश्चारित्रशुद्धिहेतुरुद्घुष्यते, यदुक्तम्—

"पिंडं असोहयंतो, अचरित्ती इत्थ संसओ नत्थि । चारित्तंमि असंते, सव्वा दिक्खा निरत्थिया" ॥१॥

तथा—

"जिणसासणस्स मूलं, भिक्खायरिया जिणेहिं पन्नत्ता । इत्थ परितप्पमाणं, तं जाणसु मंदसुद्धीयं ॥२॥

पिंडविशुद्धिश्च बहूनां मध्ये वसतां दुष्करैव प्रतिभासते, इत्येकाकिनापि भूत्वा सैव विधेया, किं ज्ञानादिलाभेन कार्यम्? मूलभूतं चारित्रमेव पालनीयम्, मूले सत्येव लाभचिन्ता जयायसीति। मैवं वोचः। यतो हन्त गुरुपारतन्त्र्यवर्जितत्वात् द्वितीय-साध्वपेक्षाभावाल्लोभस्यातिदुर्जयतरत्वात् क्षणे क्षणे परिवर्त्तमानपरिणामेनैकाकिना पिण्डविशुद्धिरेव न पालयितुं शक्यते। तथा चोक्तम्—

"एगाणियस्स दोसा, इत्थी साणे तहेव पडिणीए, भिक्खविसोहिमहव्वय, तम्हा सबिइज्जए गमणं" ॥

तथा "पिह्लिज्जेसणमिक्को"—इत्यादि । ततस्तद्भावे कथं मूलभूतं चारित्रमेव पालनीयमित्याद्युक्तम्? अथ कश्चिद्गाढदार्ढ्याशयः शुद्धोञ्छादिनापि निर्वाहयेदात्मानं सोपि—

"सव्वजिणप्पडिकुट्ठं, अणवत्था थेरकप्पभेओ य। एगो य सुयाउत्तो, विहणइ तवसंजमं अइरा" ॥

इति वचनात् त्रिभुवनभर्तुराज्ञाविराधकत्वान्न सुन्दरतामास्कन्दति । तथा चाह सूत्रकारः—

**एयस्स परिच्चाया, सुद्धुंच्छाइवि न सुंदरं भणियं । कंमाइवि परिसुद्धं, गुरुआणावत्तिणो बिंति ॥१२८॥**

एतस्य—गुरुकुलवासस्य परित्यागात्—सर्वतो मोचनेन शुद्धोञ्छादि—शुद्धभैक्षप्रमुखम्, आदिशब्दात् शुद्धोपाश्रयवस्त्रपात्रादिपरिग्रहः, सुन्दरं—शोभनं भणितं—निगदितमागमज्ञैरित्युपस्कारः। तथाच तदुक्तिः—

"सुद्धुंच्छाइसु जत्तो, गुरुकुलचागाइणेह विन्नेओ। सबरस(स्स) सरक्खपिच्छत्थघायपायाछिवणतुल्लो" ॥

**अस्या व्याख्या—**

शुद्धोञ्छं—निर्दोषभैक्षम्, आदिशब्दात्कलहममत्वपरिहारे च यत्न—उद्यमो गुरुकुलत्यागेन, आदिशब्दात्सूत्रार्थहान्या ग्लानादित्यागेन चेह—जिनमते विज्ञेयो बोद्धव्यः। कथंभूत इत्याह—शबरराजस्य सरजस्कस्य पिच्छार्थं घाते पादास्पर्शनतुल्यश्चरणासंघट्टनादेशकल्प इति।

**संविधानकसंप्रदायः पुनरयम्—**

क्वचित्संनिवेशे शबराभिधानः सरजस्कभक्तो राजा बभूव। तस्यैकदा दर्शनार्थमुपरिधार्यमाणमयूरातपत्रच्छत्रो गुरुराजगाम। तं च कृतसन्मानोपविष्टं राजप्रियतमा तदातपत्रं चञ्चच्चाकचिक्यायमानानेकचन्द्रकराजिराजितमवलोक्य कुतूहलातिरेकतस्तत् प्रार्थयितुमारेभे। तत्र च देशे मयूराभावाद् दुर्लभानि मयूरपिच्छानीत्यसावदित्सन्नुत्थाय स्वाश्रयमगमत्। ततो राज्ञी कृताभोजननिश्चया तदानयनाय राजानं प्रोत्साहयांचकार। राज्ञापि यदा पुनः पुनः प्रार्थितोपि गुरुस्तदातपत्राणि न ददाति तदा दुर्वारप्रेमग्रहव्यामोहितेन हठादेव गृहीत्वाऽऽनयत तानीत्यादिष्टाः पदातयः प्रत्यूचुः—नासौ जीवन्नर्पयति प्रहारैश्चोपतिष्ठते। ततो राजोवाच—दूरस्था एव तं बाणैरचेष्टं कृत्वा तानि गृह्णीत, समाददानाश्च मा कथमपि गुरोः पादेन स्पर्शनं कुध्वं, यतो गुरोरवज्ञा महते पातकाय संपद्यत इति। यादृशोऽस्य शबरराजस्य गुरोर्विनाशं कारयतः पादस्पर्शं च वारयतो विवेकस्तादृशो गुरुकुलत्यागिनः शुद्धोञ्छादिलालसस्य साधोरपीति भावः। व्यति-

रेकमाह–इह कर्मशब्देनाधाकर्मोच्यते, आदिशब्दादौद्देशिकादिपरिग्रहः, एतद्दोषदुष्टमप्याहारादि परिशुद्धं–निर्दोषम्, आस्तां शुद्धोञ्छादि परिशुद्धमित्यपेरर्थः, गुर्वाज्ञावर्त्तिन आराध्यादेशविधायिनो ब्रुवते–प्रतिपादयन्त्यागमतत्त्वविदः। इयमत्र भावना–उत्सर्गपदे बहुतरकर्मबन्धनिबन्धनत्वादल्पायुष्कताकारणत्वाच्चाधाकर्म महादोषदुष्टमेव। तथा चाह प्रज्ञप्तौ भगवान् सुधर्मस्वामी–"आहाकंमं तं भुंजमाणे समणे निग्गंथे किं बंधइ किं पकरेइ किं चिणइ किं उवचिणइ? गोयमा! आहाकंमं तं भुंजमाणे समणे निग्गंथे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ करेइ, हस्सकालठिईयाओ दीवकालठिईयाओ करेइ, मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ करेइ, अप्पप्पएसग्गाओ बहुप्पएसग्गाओ करेइ, आउयं च णं कंमं सिय बंधइ, सिय नो बंधइ, असायावेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ, अणाईयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टइ। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–'आहाकम्मं णं भुंजमाणे समणे निग्गंथे जाव अणुपरियट्टइ'? गोयमा! आहाकम्मं णं भुंजमाणे समणे निग्गंथे आयाए धम्मं अइक्कमइ, 'आयाइ'त्ति आत्मना धर्मं–श्रुतधर्मं चारित्रधर्मं चेति, आयाए धंमं अइक्कममाणे पुढविकायं नावकंखइ, आउकायं नावकंखइ, तेउकायं नावकंखइ, वाउकायं नावकंखइ, वणस्सइकायं नावकंखइ, तसकायं नावकंखइ, जेसिंपि य णं जीवाणं! सरीरयाइं आहारमाहारेइ तेवि जीवे नावकंखइ, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–आहाकंमं भुंजमाणे जाव अणुपरियट्टइ"।

तथा–

"कहं णं भन्ते! जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरन्ति? गोयमा! पाणे अइवाइत्ता भवइ, मुसं वइत्ता भवइ, तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाहित्ता भवइ, एवं खलु जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरिंति" त्ति।

द्वितीयपदे पुनर्गाढग्लानादिकार्यासंस्तरणादिरूपे गच्छमध्यव्यवस्थितस्य गुर्वाज्ञावर्तिनोऽशठभावस्य साधोः पञ्चकपरिहाणिक्रमेण सर्वथाम्ना प्रयतमानस्यातुरदृष्टान्तेनाधाकर्माद्यपि निर्दोषम् ।

तथा ह्यागमः—

"संथरणंमि असुद्धं, दुण्हवि गिण्हंतदिंतयाण हियं । आउरदिट्ठंतेणं, तं चेव हियं असंथरणे" ॥

तथा—

जा जयमाणस्स भवे, विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स । सा होइ निज्जरफला, अज्झप्पविसोहिजुत्तस्स" ॥ त्ति ।

गुर्वाज्ञाकारिणो विशेषतः प्रशंसामाह—

**ता धन्नो गुरुआणं, न मुयइ नाणाइगुणमणिनिहाणं । सुपसन्नमणो सययं, कयन्नुयं मणसि भावंतो ॥१२९॥**

यस्माद् गुर्वाज्ञा गरीयसे गुणाय तस्माद्धेतोर्धन्यो गुर्वाज्ञां न मुञ्चति सुष्ठु-अतिशयेन प्रसन्नमनो-निर्मलमानसो निष्ठुरमपि शिक्षितो न कुप्यति, न कलुषयति चान्तःकरणम्, न च वहति प्रद्वेषं स्मरन् कुन्तलदेवीज्ञातम् । केवलम्—

"जं मे बुद्धा णुसासंति, सीएण फरुसेण वा । मम लाभुत्ति पेहाए, पयओ तं पडिस्सुणे" ॥

कथम् ? सततमनवरतं कृतज्ञताम्-उपकाराविस्मृतिरूपां मनसि-हृदये भावयन् व्यवस्थापयन् । तद्यथा—

"टोलु व्व दुलदुलंतो, अहयं विन्नाणनाणनिलएण । देवु व्व वंदणिज्जो, कओ म्हि गुरुसुत्तहारेण" ॥

इत्थंभूत एव धन्यो भवति, धर्मधनार्हत्वादिति ।

पूर्वसूचितं कुन्तलदेवीज्ञातं पुनरिदम्—

अवणिपुरमत्थि अवणीवरमहिलाभालफलयतिलयं व । तत्थ निवो जियसत्तू, पडुपयडपयावजियसत्तू ॥१॥
तस्सासि पिया कुंतलदेवीनामा सहावकूरमणा । अन्नाउ वि देवीओ, सुमईओ संति बहुयाओ ॥२॥
कारंति ताउ उत्तुंगचंगसिंगाइं कणयकलसाइं । जिणनाहचेइयाइं, नियएणं दविणजाएण ॥३॥
अह मच्छरभरभरिया, कुंतलदेवीवि सेसएहिंतो । सविसेसं चेइहरं, हरगिरिधवलं करावेइ ॥४॥
तत्थच्छेरयभूयं, पूयं कारेइ गीयनट्टाई । वायावइ आउज्जे, सज्जो सज्जियमहाचुज्जे ॥५॥
अन्नेसु पयट्टंति, पूयं आउज्जयाण घणघोसं । सुणिउं कुणइ पओसं, दूमिज्जइ तक्कहाए वि ॥६॥
सेससवित्तीणं पुण, अकूरहिययाण जिणमयरयाण । परमत्थचिंतिगाणं, न होइ थेवोवि हु पओसो ॥७॥
सुमहंतजलंतपओसजलणजालालिदड्ढधम्मवणा । कुंतलदेवी कइया, रोगायंकेहिं परिभूया ॥८॥
तो से निवेण घित्तुं, आभरणाईणि नियभंडारे । खित्ताइं तओ धणियं, सा पडिया अट्टझाणंमि ॥९॥
मरिऊण ऊणपुन्ना, कूरा सा कुक्कुरी तहिं जाया । नियजिणभवणदुवारे, पुव्वब्भासेण चिट्ठेइ ॥१०॥
कइयावि तत्थ पत्तो, केवलनाणी नमेवि अह पुट्ठो । अंतेउरीहिं भयवं ! कत्थ गया कुंतला मरिउं ? ॥११॥
पभणइ गुरूवि तीसे, पओसकरणाइवइयरं सव्वं । जा संजाया सुणिया, धुणियामलदुलहसम्मत्ता ॥१२॥
इय निसुणिऊण ताओ, गरुयं वेरग्गमुव्वहंतीओ । परिसाइ उट्ठियाए, गंतुं जिणभवणदारंमि ॥१३॥

तत्र कुन्तल-
देवीज्ञातम् ।

पिच्छंति तयं सरमं, परमं करुणारसं पवन्नाओ । बलिपूयलियापमुहं, खिवंति तीए पुरो ताओ ॥१४॥
पभणंति महाभागे! धम्मपराएवि जं तया तुमए । नय चत्तं कूरत्तं, तेण इमा दुग्गई पत्ता ॥१५॥
ता संपयंपि एयं, वणं व अक्कूरभावजलणेण । दहिऊण कुणसु अप्पं, समभावजलेण संसिचं ॥१६॥
हे सरमे! दुहविरमे, जिणधम्मे माणसं निवेसेसु । चयसु सयावि पओसं, वहेसु हिययंमि संतोसं ॥१७॥
इच्चाइ ताण संभममसमं पिच्छिय गिराउ तह सुणिउं । सुणिया सा संभंता, पुणो पुणो चिंतइ किमेयं ? ॥१८॥
बहुयं विचिंतयंती, जाइं सुमरित्तु फुरियवेरग्गा । भुज्जो भुज्जो निंदइ, पुव्वकडं दुक्कडं सव्वं ॥१९॥
सिद्धसमक्खमणसणं, पडिवज्जिय पूरिउं नियमाउं । जाओ वेमाणिसुरो, लहिही परमं पयं कमसो ॥२०॥
एवं कुन्तलदेव्याः, प्रद्वेषजुषो निशम्य कटुकफलम् । भव्या भवभयभीताः, प्रसन्नमनसो भवत सततम् ॥२१॥

॥ इति कुन्तलदेवीज्ञातम् ॥

आह-किं योऽपि सोऽपि गुरुर्गुणसंपत्तये सेवनीय आहोश्विद् कश्चिद्विशिष्ट एवेति प्रश्ने प्रतिवचनमाह—

गुणवं च इमो सुत्ते, जहत्थगुरुसद्दभायणं इट्ठो । गुणसंपयादरिद्दो, जहुत्तफलदायगो न मओ ॥१३०॥

चशब्दस्यावधारणार्थत्वाद् गुणवानेव-गुणगणालंकृत एवायमिति गुरुः सूत्रे-सिद्धान्ते यथार्थः-सान्वयो गुरुशब्दस्तस्य भाजनमाधार इष्टोऽभिप्रेतः, तथाहि गुरुशब्दस्य-

"धम्मन्नू धम्मकत्ता य सया धम्मपरायणो। सत्ताणं धम्मसत्थस्स, देसओ भन्नए गुरू" ॥

इत्यन्वयः। स च श्रुतधर्मोपदेशकस्य चारित्रधर्मविधायकस्य संविग्नगीतार्थगुरोरेव युज्यते।

तस्य च गुणाः प्राधान्येन—

वयछक्कं ६ कायछक्कं१२ अकप्पो१३ गिहिभायणं१४। पलियङ्क१५ निसिज्जाणं१६, सिणाणं१७ सोभवज्जणं१८ ॥

इत्यष्टादश, एभिर्विना गुरुत्वाभाव एव, तन्तुभिर्विना पटाभाववत्, तथा चोक्तं श्री शय्यंभवसूरिपादैः—

"दस अट्ठ य ठाणाइं, जाइं बालो व रज्जई। तत्थ अन्नयरे ठाणे, णिग्गंथत्ताउ भस्सई" ॥ इति।

शेषास्तु—

"पडिरूवो तेयस्सी, जुगपहाणागमो महुरवक्को। गम्भीरो धीमन्तो, उवएसपरो य आयरिओ ॥१॥

अपरिस्साविं सोमो, संगहसीलो अभिग्गहमई य। अविकत्थणो अचवलो, पसन्तहियओ गुरू होइ" ॥२॥

इत्यादयः, "देसकुलजाइरूवी" इत्यादयः, अन्येऽपि "आयारसुयसरीरे"—इत्यादयो विशेषगुणास्ते कादाचित्काः, पटस्य रक्तत्वादिवत्। तत्रेह प्रधानगुणैर्युक्तो गुणवानभिप्रेतः, कार्यसाधकत्वात्। सत्सु तेषु शेषगुणसंप्रयोगोपि वरीयानेवेति।

विपर्यये पुनः किं स्यादित्याह—गुणसंपदा—सद्गुणविभूषाकरणभूतया दरिद्रो—दुर्गतो यथोक्तं गुरुसम्प्रयोगे फलं तस्य दायकः—सम्पादयिता न मतो—नैव सम्मतो जिनप्रवचनवेदिनाम्, अतो न निर्गुणो गुरुः सेवनीय इति।



ननु साम्प्रतं कालानुभावादेव दुर्लभा सर्वगुणसम्पद्, यतः कोपि कुतोपि केनापि गुणेन हीनोप्यन्येनाधिक इति तारतम्यभेदे-

नानेकधा गुरव उपलभ्यन्ते, ततस्तेषु कं गुरुमाश्रयामहे, कं वा नेति दोलायमानमानसानामस्माकं किमुचितमिति शिष्येण सप्रणयं पृष्टो गुरुराह—

**मूलगुणसम्पउत्तो, न दोसलवजोगओ इमो हेओ । महुरोवक्कमओ पुण, पवत्तियव्वो जहुत्तंमि ॥१२१॥**

मूलगुणाः–पञ्च महाव्रतानि व्रतषट्ककायषट्कादयो वा, तैः सम्यक्–सद्बोधप्रधानं प्रकर्षेण–उद्यमातिशयेन युक्तोऽन्वितो मूलगुणसंप्रयुक्तो गुरुरिति प्रकृतत्वात्सम्बध्यते न दोषाणाम्–आशुकोपित्व–वचनापाटव–मन्दता–मनाक्प्रमादिताप्रभृतीनां लवा–लेशा दोषलवास्तद्योगात्–तत्सम्बन्धादयं गुरुर्हेयः परित्याज्यः, तथा चागमः—

"जेयावि मन्दि त्ति गुरुं विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुयत्ति नच्चा । हीलन्ति मिच्छं पडिवज्जमाणा, कुणंति आसायण ते गुरूणं ॥
पगईइ मन्दावि हवन्ति एगे, डहरावि य जे सुयबुद्धोववेया । आयारमन्ता गुणसुट्ठियप्पा, जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा ॥
जेयावि नागं डहरन्ति नच्चा, आसायए से अहियाय होइ । एवायरियंपि हु हीलयन्तो, नियच्छई जाइपहं खु मन्दे ॥
गुरुगुणरहिओ य इहं, दट्ठव्वो मूलगुणविउत्तो जो । नहु गुणमित्तविहूण त्ति, चण्डरुद्दो उदाहरणं" ॥

इत्यागमवचनान्यनुसृत्य मूलगुणशुद्धो गुरुर्न मोक्तव्यः ।

कदाचित् किंचित्प्रमादवांस्तु मधुरोपक्रमत इति तृतीयार्थे पञ्चमी, ततो मधुरोपक्रमेण–सुखदोपायेन प्रियवचनाञ्जलिप्रणामपूर्वकम् 'अनुपकृतपरहितरतैर्भवद्भिः सुष्ठु वयं मोचिता गृहवासपाशात्, तदिदानीमुत्तरोत्तरमार्गप्रवर्त्तनेन निस्तारयतास्माद् भीमभवकान्ताराद्' इत्यादिप्रोत्साहनेन पुनर्भूयोपि प्रवर्त्तयितव्यो यथोक्तमार्गानुसारिण्यनुष्ठाने इति ।

किमित्येवमुपदिश्यते इत्याह—

**पत्तो सुसीससद्दो, एव कुणंतेण पंथगेणावि । गाढप्पमाइणोवि हु, सेलगसूरिस्स सीसेण ॥१३२॥**

प्राप्तो–लब्धः सुशिष्य इति शब्दो विशेषणम्, एवं गुरोर्भूयोपि चारित्रे प्रवृत्तिं कारयता पन्थकेन–पन्थकनाम्ना सचिवपुङ्गवसाधुना, अपिशब्दादन्यैरपि तथाविधैः, यतोऽभाणि—

"सीइज्ज कयावि गुरू, तंपि सुसीसा सुनिउणमहुरेहिं । मग्गे ठवन्ति पुणरवि, जह सेलगपंथगो नायं ।

तमेव विशिनष्टि—गाढप्रमादिनोपि–अतिशयशैथिल्यवतोपि शैलकसूरेः शिष्येणेति व्यक्तमेवेति गाथाक्षरार्थः । भावार्थः कथानकादवसेयः ।

तच्चेदम्—

कविकुलकलाविकलियं, सेलगपुरमत्थि सेलसिहरं व । तत्थ प्पयावसियकित्तिमेलओ सेलओ राया ॥१॥
सद्धम्मकम्मवज्जियछउमा पउमावई पिया तस्स । सन्नीइनागवल्लीइ, मंडवो मडुगो पुत्तो ॥२॥
चउसुद्धबुद्धिसंसिद्धिपंथगा पंथगाइणो आसि । रज्जभरधरणसज्जा, सुमन्तिणो पञ्चसयसंखा ॥३॥
थावच्चासुयगणहरसमीवपडिवन्नसुद्धगिहिधम्मो । सेलगराया रज्जं, तिवग्गसारं चिरं कुणइ ॥४॥
अन्नदिणे थावच्चासुयपहुपयवत्तिसुयगुरुसमीवे । पञ्चहि मन्तिसएहिं, पंथगपमुहेहि परियरिओ ॥५॥
मडुगपुत्ते रज्जं, ठविऊणं गिण्हए वयं राया । इक्कारस अंगाइं, अहिज्जिओ वज्जियावज्जो ॥६॥

तत्र पन्थक साधुकथानकम् ।

पंथगपमुहाण तओ, पञ्चमुणिसयाण नायगो ठविओ । सुयमुणिवरेण सेलगरायरिसी जिणसमयविहिणा ॥७॥
सुयसूरी उ महप्पा, समए आहारवज्जणं काउं । सिरिविमलसिहरिसिहरे, सहस्ससहिओ सिवं पत्तो ॥८॥
अह सेलगरायरिसी, अणुचियभत्ताइभोगदोसेण । दाहजराईतविओ, समागओ सेलगपुरम्मि ॥९॥
उज्जाणंमि पसत्थे, सुभूमिभागंमि तं समोसरियं । सोऊण पहिट्ठमणो, विणिग्गओ मड्डुओ राया ॥१०॥
कयवन्दणाइकिच्चो, सरीरवत्तं वियाणिउं गुरुणो । विन्नवइ एह भन्ते ! मम गेहे जाणसालासु ॥११॥
भत्तोसहाइएहिं, अहापवत्तेहिं तत्थ तुम्हाणं । कारेमि जेण किरियं, धम्मसरीरस्स रक्खट्ठा ॥१२॥

तथा चोक्तम्—

"शरीरं धर्मसंयुक्तं, रक्षणीयं प्रयत्नतः । श्रवेच्छरीरतो धर्मः, पर्वतात्सलिलं यथा ॥१३॥
पडिवन्नमिणं गुरुणा, पारद्धा तत्थ उत्तमा किरिया । निद्धमहुराइएहिं, आहारेहिं सुविज्जेहिं ॥१४॥
विज्जाण कुसलयाए, पत्थोसहपाणगाइधुवलाभा । थेवदियहेहिं एसो, जाओ निरुओ य बलवं च ॥१५॥
नवरं सिणिद्धपेसलआहाराईसु मुच्छिओ घणियं । सुहसीलयं पवन्नो, निच्छइ गामन्तरविहारं ॥१६॥
बहुसोवि भणिज्जन्तो, विरमइ नो जाव सो पमायाओ । ताहे पन्थगवज्जा, मुणिणो मन्तन्ति एगत्थ ॥१७॥
कम्माइं नूण घणचिक्कणाइं कुडिलाइं वज्जसाराइं । नाणड्ढयंपि पुरिसं, पंथाओ उप्पहं निंति ॥१८॥
नाऊण सुयबलेणं, करयलमुत्ताहलं व भुवणयलं । अहह निवडन्ति केवि हु, ओपिच्छह कम्मबलियत्तं ॥१९॥

मुत्तूण रायरिद्धिं, मुक्खत्थी ताव एस पव्वइओ । संपइ अइप्पमाया, विम्हरियपओयणो जाओ ॥२०॥
काले न देइ सुत्तं, अत्थं न कहेइ पुच्छमाणाणं । आवस्सगाइ तत्तिं, मुत्तुं बहु मन्नए निद्दं ॥२१॥
सारणवारणपडिचोयणाइ न मणंपि देइ गच्छस्स । नय सारणाइरहिए, गच्छे वासो खणंपि खमो ॥२२॥

तथा चागमः—

जहिं नत्थि सारणा वारणा य पडिचोयणा य गच्छंमि । सो उ अगच्छो गच्छो, संजमकामीहिं मुत्तव्वो ॥२३॥
उवगारी य दढमिमो अम्हाणं धम्मचरणहेउत्ता । मुत्तुं घित्तुं च इमं, जुत्त त्ति फुडं न याणामो ॥२४॥
अहवा किं अम्हाणं, कारणरहिएण नीयवासेण । गुरुणो वेयावच्चे, पंथगसाहुं निउंजित्ता ॥२५॥
एयं चिय पुच्छित्ता, विहरामो उज्जया वयं सव्वे । कालहरणंपि कीरइ, जो वेयइ एस अप्पाणं ॥२६॥
सामत्थिऊण एवं, पंथगसाहुं ठवित्तु गुरुपासे । ते सव्वेवि हु मुणिणो, अन्नत्थ सुहं पविहरिंसु ॥२७॥
पंथगमुणीवि गुरुणो, वेयावच्चं जहोचियं कुणइ । असवत्तजोगजुत्तो, सया अणूणं च नियकिरियं ॥२८॥
कत्तियचाउम्मासे, सूरी भुत्तूण निद्धमहुराइं । परिहरियसयलकिच्चो, सुत्तो नीसट्ठसव्वंगो ॥२९॥
आवस्सगं कुणंतो, पंथगसाहूवि खामणनिमित्तं । सीसेण तस्स पाए, आघट्टइ विणयनयनिउणो ॥३०॥
तो कुविओ रायरिसी, जंपइ को एस अज्ज निल्लज्जो । पाए आघट्टंतो निद्दाविग्घे मह पयट्टो ? ॥३१॥
रुट्ठं दट्ठुं सूरिं, महुरगिरं पंथगो इय भणेइ । चाउम्मासियखामणकए मए दूमिया तुब्भे ॥३२॥

तत्र पन्थक-साधुकथानकम्

ता एगं अवराहं, खमह न काहामि एरिसं बीयं । हुंति खमासीलच्चिय उत्तमपुरिसा जओ लोए ॥३३॥
इय पंथगमुणिवयणं, आयन्नंतस्स तस्स सूरिस्स । सूरुग्गमे तमं पिव, अन्नाणं दूरमोसरियं ॥३४॥
बहुसो निंदिय अप्पं, सविसेसं जायसंजमुज्जोओ । खामेइ पंथगमुणिं, पुणो पुणो सुद्धपरिणामो ॥३५॥
बीयदिणे मडुगनिवमापुच्छिय दोवि सेलगपुराओ । निक्खंता पारद्धा, उग्गविहारेण विहरेउं ॥३६॥
अवगयतव्वुत्तंता, संपत्ता सेसमंतिमुणिणोवि । विहरिय चिरं सुविहिणा, आरूढा पुंडरीयगिरिं ॥३७॥
दोमासकयाणसणो, सेलेसिं काउ सेलगमहेसी । पंचसयसमणसहिओ, लोयग्गठियं पयं पत्तो ॥३८॥

एवं पन्थकसाधुवृत्तममलं श्रुत्वा चरित्रोज्ज्वलं, सज्ज्ञानादिगुणान्वितं गुरुकुलं सेवध्वमुच्चैस्तथा ।
भो भो साधुजना! गुरोरपि यथा सत्संयमे सीदतो, निस्ताराय कदाचन प्रभवत स्फूर्जद्गुणश्रेणयः ॥३९॥

॥ इति पन्थकसाधुकथानकम् ॥

एवं कुर्वतः साधोर्गुणमाह ।

**एवं गुरुबहुमाणो, कयन्नुया सयलगच्छगुणवुड्ढी । अणवत्थापरिहारो, हुंति गुणा एवमाईया ॥१३३॥**

एवं-मूलगुणसमन्वितं गुरुमशुश्रूवता सन्मार्गोद्यमं च कारयता यतिना गुरुबहुमानो-मानसप्रीत्यतिशयः कृतो भवति, तथा कृतज्ञता चाराधिता भवति । प्रधानश्चार्यं पुरुषस्य गुणो लोकेऽपि गीयते । तथाहि—

"स कलाकलापकुशलः, स पण्डितः सकलशास्त्रवेदी सः। निःशेषगुणगरिष्ठा, कृतज्ञता यं समाश्रयते" ॥

लोकोत्तरेप्येकविंशतिगुणमध्ये पतित एवेति। तथा सकलगच्छस्य गुणानां वृद्धिराधिक्यं कृतं भवति, तथाहि—"सम्यगाज्ञावर्तिनो गच्छस्य गुरुर्ज्ञानादिगुणान् वर्द्धयत्येव। यदि पुनस्ते शिष्याः—

"वाइया संगहीया य, भत्तपाणेहिं पोसिया। जायपक्खा जहा हंसा, पक्कमंति दिसो दिसिं" ॥

ततस्तान् खलुङ्कप्रायानवबुध्य न केवलं न शिक्षयति गुरुस्तत्परित्यागं च विधत्ते, कालिकाचार्यवदिति। तथा अनवस्था—मर्यादाहानिस्तस्याः परिहारः कृतो भवति। अयमभिप्रायः—य एकं गुरुं मूलगुणमहाप्रासादधरणस्तंभसंनिभमप्यल्पदोषदुष्टत्वेन मुञ्चति तस्मै अन्योऽपि न रोचते, कालानुभावादेव सूक्ष्मदोषाणां प्रायः परिहर्तुमशक्यत्वात्, ततश्चात्यरोचकतया—

"इक्कस्स कओ धम्मो, सच्छंदगईमईपयारस्स। किंवा करेइ इक्को, परिहरउ कहमकज्जं वा ॥१॥
कत्तो सुत्तत्थागमपडिपुच्छण चोयणा व इक्कस्स। विणओ वेयावच्चं, आराहणया व मरणंते ॥२॥
पिल्लिज्जेसणमिक्को, पइन्नपमयाजणाउ निच्चभयं। काउमणोवि अकज्जं, न तरइ काऊण बहुमज्झे ॥३॥
उच्चारपासवणवंतपित्तमुच्छाइमोहिओ इक्को। सद्दवभाणविहत्थो, निक्खिवइ व कुणइ उड्डाहं ॥४॥
एगदिवसंमि बहुया, सुहा य असुहा य जीवपरिणामा। इक्को असुहपरिणओ, चइज्ज आलंबणं लद्धुं" ॥५॥

इत्यादिना निषिद्धमप्येकाकित्वमालम्बते, तं च स्वेच्छाचारसुखितमालोक्यान्योपि तदेवाङ्गीकरोति, एवंप्रकाराऽनवस्था परिहृता भवति गुरुसेवकेनेति। भवन्ति—जायन्ते गुणा एवमादयोऽन्येपि गुरुग्लानबालवृद्धादीनां विनयवैयावृत्त्यकरणादयः सूत्रार्थागमस्मरणा-

दयोऽपि भूयांस इति ।

एतद्विपर्यये पुनः किं स्यादित्याह—

**इहरा वुत्तगुणाणं, विवज्जओ तहय अत्तउक्करिसो । अप्पच्चओ जणाणं, बोहिविघायाइणो दोसा ॥१३४॥**

इतरथा—महाव्रतमहाभारोद्धारधौरेयकगुरुत्यागेनेत्यर्थः उक्तगुणानां—गुरुबहुमानादीनां विपर्ययोऽभावोऽबहुमानाकृतज्ञतासकलगच्छगुणावृद्ध्यनवस्थादिदोषसद्भावः स्यादित्यर्थः । तथात्मोत्कर्षश्चात्मनि सौष्ठवाभिमानश्चानर्थपरंपराकारणं गुरुकुलत्यागिनः स्यात् । तथाऽप्रत्ययोऽविश्वासश्च जनानां—लोकानां साधुविषये स्याद्, यदुत परस्परविभिन्नानामन्योन्यानुष्ठानदूषकाणामेतेषां न ज्ञायते कोऽपि सत्यवाद्यलीकवादी वेति । ततश्च को दोष इति चेदुच्यते—बोधिविघातः—प्रेत्यजिनधर्मावाप्त्यभावः तेषां व्यलीकभाजां तन्निमित्तभूतस्य यतेरपि । आदिशब्दाद्भावपातश्च सम्यग्दर्शनग्रहणाभिमुखानां चारित्रग्रहणाभिमुखानां च स्यादेते दोषा—दूषणानि गुरुत्यागकारिणां भवन्तीति । किंच—यदि स्वल्पेपि प्रमादजनिते दोषलवे गुरवः परिहरणीयास्ततः सर्वेषामपि वर्जनीयत्वमायातम्, यतः प्रवचने निर्ग्रन्थाः पञ्चविधाः प्ररूपिताः, तथाहि—

गंथो मिच्छत्ताई धणाइओ अंतरो य बज्झो य । दुविहाउ तओ जे निग्गय त्ति ते हुंति निग्गंथा ॥१॥

मिच्छत्तं[1] वेयतियं[4], हासाई छक्कयं च नायव्वं । कोहाईण चउक्कं[14], चउदस अब्भिंतरा गंथा ॥२॥

धणं[1] धन्नं[2] खित्तं[3] कुवियं[4], वत्थुं[5] दुपयं[6] कणयं[7] रुप्पं[8] चउचरणं[9] । नव बाहिरया गंथा, एवं ते हुंति पुण पंच ॥३॥

होइ पुलाओ[1] बउसो[2], तहा कुसीलो[3] नियंठ[4] सिणाओ[5] । तत्थ पुलाओ दुविहो, लद्धिपुलाओ तहा सेवे ॥४॥

अन्यत्राप्युक्तम्—

"धन्नमसारं भन्नइ, पुलायसद्देण जस्स तेण समं । चरणं सो हु पुलाओ, लद्धीसेवाहिं सो य दुहा ॥५॥

तत्र—

लद्धिपुलाओ संघाइकज्जओ चक्किसिन्नमवि चूरे । सो हरिसमअहियसिरी व होइ इयरो उ पंचविहो ॥६॥
दंसणनाणपुलाओ, संकाकालाइएहि तमसारं । मूलुत्तरगुणसेवं, चरणपुलाओ पुण करेइ ॥७॥
लिंगपुलाओ निक्कारणं तु जो गिण्हए य परलिंगं । किंचि पमाया मणसा, अकप्पगहणे अहासुहुमो ॥८॥
उवगरणसरीरेसुं, बउसो दुविहो दुहावि पंचविहो । आभोग[1]मणाभोगे[2], संवुड[3]मस्संवुडे[4] सुहुमे[5] ॥९॥
आसेवणा कसाए, दुहा कुसीलो दुहावि पंचविहो । नाणे दंसणचरणे, तवे य अहसुहुमए चेव ॥१०॥
इह नाणाइकुसीलो, उवजीवं होइ नाणमाईणि । अहसुहुमो पुण तुस्सं, एस तवस्सित्ति संसाए ॥११॥
उवसामगो य खवगो, दुहा नियंठो दुहावि पंचविहो । पढमसमओ अपढमो[2] चरमा[3][4]चरमो अहासुहुमो[5] ॥१२॥
पाविज्जइ अट्ठसयं १०८ खवगाणुवसामगाण चउपन्ना ५४ । उक्कोसओ जहन्नेणिक्को व दुगं व तिगमहवा ॥१३॥
सुहझाणजलविसुद्धो, कम्ममलाविक्खया सिणाउ त्ति । दुविहो य सो सजोगी, तहा अजोगी विणिद्दिट्ठो ॥१४॥
मूलुत्तरगुणविसया, पडिसेवा सेवए कुसीलो य । उत्तरगुणेसु बउसो, सेसा पडिसेवणारहिया" ॥१५॥ इति

एषु च नियमेनाप्रमादिनो निर्ग्रन्थाः स्नातकाश्च, किंतु ते कदाचिदेव श्रेणिमस्तकारोहणे सयोग्ययोगिगुणस्थानकयुगले च संभ-

वन्तीति न तीर्थप्रवाहहेतवः। पुलाकोऽपि कदाचिदेव लब्धिसद्भावे संभवति। एते च त्रयोपि संप्रति व्यवच्छिन्नाः, ततो बकुशकुशीला एव निरन्तरतीर्थप्रवाहहेतवः। तथाचोक्तम्—

निग्गंथसिणायाणं, पुलागसहियाणं तिण्ह वुच्छेओ। समणा बउसकुसीला, जा तित्थं ताव होहिंति" ॥

तेषां चावश्यंभाविनः प्रमादजनिता दोषलवाः, यदि तैः साधुर्वर्जनीयस्ततः सर्वेषामपि परिहरणीयता समायातेत्येतदेव चेतस्याधाय सूत्रकारः प्राह—

**बकुसकुसीला तित्थं, दोसलवा तेसु नियमसंभाविणो। जइ तेहि वज्जणिज्जो अवज्जणिज्जो तओ नत्थि॥१३५॥**

बकुशकुशीला व्यावर्णितस्वरूपाः 'तित्थं' ति भामा सत्यभामेति न्यायात् सर्वतीर्थकृतां तीर्थसंतानकारिणः संभवन्ति, अत एव दोषलवाः—सूक्ष्मदोषास्तेषु—बकुशकुशीलेषु नियमसंभविनः, यतस्तेषां द्वे गुणस्थानके प्रमत्ताप्रमत्ताख्ये अन्तर्मुहूर्त्तकालावस्थायिनी, तत्र यदा प्रमत्तगुणस्थानके वर्त्तते तदा प्रमादसद्भावादवश्यंभाविनः सूक्ष्मा दोषलवाः साधोः, परं यावत् सप्तमप्रायश्चित्तापराधमापनीपद्यते तावत् स चारित्रवानेव, ततः परमचारित्रः स्यात्। तथा चोक्तम्—

"जस्स हु जा तवदाणं, ता वयमेगंपि नो अइक्कमइ। एगं अइक्कमंतो, अइक्कमे पंच मूलेणं' ॥ इति।

तदेवं बकुशकुशीलेषु नियमभाविनो दोषलवाः, यदि तैर्वर्जनीयो यतिः स्यादवर्जनीयस्ततो नास्त्येव, तदभावे तीर्थस्याप्यभावप्रसंग इति।

अस्योपदेशस्य फलमाह—

**इय भावियपरमत्था, मज्झत्था नियगुरुं न मुंचन्ति । सव्वगुणसंपओगं, अप्पाणंमि वि अप्पिच्छंता ॥१३६॥**

इति-पूर्वोक्तप्रकारेण भावितो-मनसि परिणामितः परमार्थो यथावस्थितपक्षो यैस्ते भावितपरमार्था-मध्यस्था अपक्षपातिनो निजगुरुं-धर्माचार्यं मूलगुणमुक्तामाणिक्यरत्नाकरं न मुञ्चन्ति-नैव व्युत्सृजन्ति सर्वगुणसंप्रयोगं-समग्रगुणसामग्रीमात्मन्यप्यपश्यन्तोऽनवलोकयन्त इति ।

अन्यच्च गुरुत्यागकारी निश्चितं गुरोरवज्ञां विधत्ते, ततश्चानर्थमागमस्मारणेन दर्शयन्नाह-

**एयं अवमन्नंतो, वुत्तो सुत्तंमि पावसमणु त्ति । महमोहबन्धगो विय, खिंसन्तो अप्पडितप्पन्तो ॥१३७॥**

एतं-प्रस्तुतगुरुमवमन्यमानो-हीलयन् साधुरिति गम्यते भणित उक्तः सूत्रे-सिद्धान्ते श्रीमदुत्तराध्ययन इत्यर्थः पापश्रमणः कुत्सितयतिरितिरुपप्रदर्शने ।

तच्चेदम् सूत्रं—

"आयरियउवज्झाएहि, सुयं विणयं च गाहिए । ते चेव खिंसइ बालो, पावसमणु त्ति वुच्चइ ॥१॥
आयरियउवज्झायाणं, सम्मं नो पडितप्पइ । अपडिपूयए थद्धे, पावसमणु त्ति वुच्चइ" ॥२॥ 

तथा महामोहबन्धकः-प्रकृष्टमिथ्यात्वोपार्जकश्च, अपि(च)शब्दः सूत्रान्तरं सूचयति-किं कुर्वन् ? 'खिंसंतो' त्ति गुरोर्निन्दां कुर्वन्, 'अपडितप्पन्तु'त्ति तेषां वैयावृत्त्यादावादरमकुर्वन्निति । सूत्रान्तरं चावश्यके त्रिंशत्सु मोहनीयस्थानेष्वेवं पठ्यते—

"आयरियउवज्झाए, खिंसइ मन्दबुद्धिए। तेसिमेव य नाणीणं, सम्मं नो पडितप्पइ" ॥

क्रियापदं च पर्यन्ते "महामोहं पकुव्वइ" त्ति भणितमिति।

आह—गुरोः सामर्थ्याभावे यदि शिष्योऽधिकतरं यतनातपःश्रुताध्ययनादि करोति तत्किं युक्तमाहोश्विद् गुरोर्लाघवहेतुत्वान्न-युक्तमित्यत्रोच्यते—गुर्वनुज्ञया युक्तमेव, गुरोर्गौरवहेतुत्वाद्, भवति च गुणाधिके विनेये गुरोर्गौरवम्, श्रीवज्रस्वामिनि सिंहगिरिगुरोरिव।

तथाहि—

पुरा सिंहगिरेः सूरेर्विनेयो विनयास्पदम्। अज्ञानगुरुभूमीभृद्वज्राभो वज्र इत्यभूत् ॥१॥
अबालधीः स बालोपि, संयत्युपाश्रयाश्रयी। एकादशाङ्गीमध्येष्ट, पदानुसृतिलब्धियुक् ॥२॥
अष्टाब्दो गच्छमध्यस्थो, यद्यत् पूर्वगताद्यपि। पापठ्यमानमश्रौषीत्, तत्तज्जग्राह लीलया ॥३॥
पठेति स्थविराः प्राहुर्यदि वज्रं तदा च सः। उद्गृणन्नस्फुटं किंचित्, शुश्राव पठतो परान् ॥४॥
परेद्यवि दिवामध्ये, भिक्षार्थं भिक्षवो ययुः। बहिर्भूमौ गुणग्रामगुरवो गुरवोऽप्यगुः ॥५॥
तस्थौ तु वज्र एकाकी, वसतौ सोऽथ वेष्टिकाः। विन्यस्य साधुमण्डल्यां, स्वयं मध्ये निषद्य च ॥६॥
एकादशानामङ्गानामपि पूर्वगतस्य च। वाचनां दातुमारेभे, मेघगम्भीरया गिरा ॥७॥
व्याघुट्य सूरयोऽप्यागुः, श्रुत्वा गहगहस्वरम्। दध्युरित्यात्तभिक्षाकाः, किमीयुर्मंक्षु भिक्षवः ? ॥८॥
विमर्शं च वितन्वानाः, क्षणादज्ञासिषन् यथा। अये ! वज्रमुनेरेष, वाचनां ददतो ध्वनिः ॥९॥

पुरा भवे किमेतेनाध्यायि गर्भस्थितेन वा । एवं व्यचिन्तयन्मौलिं, धुन्वाना विस्मयान्मुहुः ॥१०॥
अस्यास्मच्छ्रवणाच्छङ्का माभूदिति विचिन्त्य ते । अपसृत्य शनैरुच्चैश्चक्रुर्नैषेधिकीं ततः ॥११॥
तामाकर्ण्य सुनन्दासूर्झगित्युत्थाय विष्टरात् । कृतहस्तोऽमुचत् सर्वाः, स्वस्वस्थानेषु वेष्टिकाः ॥१२॥
समेत्य च गुरोर्दण्डमाददेंऽह्री ममार्ज च । प्रासुकेनाथ नीरेण, स्वयं प्राक्षालयत् पदौ ॥१३॥
एवं च दध्युराचार्या, विद्यावृद्धोऽर्भकोऽप्यसौ । अजानद्भ्योऽन्यसाधुभ्यो, रक्ष्योऽवज्ञास्पदीभवन् ॥१४॥
एवं विमृश्य यामिन्यां, शिष्येभ्योऽकथयन्निति । गन्ता स्मः श्वोऽमुकं ग्रामं, द्वित्राहं तत्र नः स्थितिः ॥१५॥
अथोचुर्मुनयो योगप्रपन्ना वाचनप्रदः । को नो भावीत्यथो सूरिर्वज्र इत्यादिशत् पुनः ॥१६॥
ऋजवस्ते विनीताश्च, तत्तथैव प्रपेदिरे । न सन्तो जातु लङ्घन्ते, गुर्वाज्ञां भद्रदन्तिवत् ॥१७॥
प्रातः कृत्वाऽनुयोगस्य, सामग्रीं ते गते गुरौ । वज्रर्षिगुरुवद्भक्त्या, निषद्यायां न्यषेदयन् ॥१८॥
ततो वज्रमुनिर्ज्ञानकन्दकन्दलनाम्बुदः । आनुपूर्व्या महर्षीणां, तेषामालापकान् ददौ ॥१९॥
ये मन्दमेधसस्तेष्वप्यभूद्वज्रो ह्यमोघवाक् । तद्वीक्ष्य नव्यमाश्चर्यं, गच्छः सर्वो विसिष्मिये ॥२०॥
आलापान्मुनयः पूर्वं, पठितान् निस्तुषानपि । संवादहेतवेऽपृच्छन्, सोपि व्याख्यात्तथैव तान् ॥२१॥
ये यावत् सूरितोऽनेकवाचनाभिरधीयिरे । पेठुर्वज्राच्छ्रुतं तावदेकवाचनयाऽपि ते ॥२२॥
अथोचूः साधवो हृष्टा, विलम्बेत गुरुर्यदि । वज्रान्तिके तदाऽऽश्वेष, श्रुतस्कन्धः समाप्यते ॥२३॥

धन्याः स्मः कृतकृत्याः स्मः, पुण्यान्युज्जागराणि नः । यदेष वाचनाचार्यो, वज्रोऽस्माभिरलभ्यत ॥२४॥
श्रीमन्तो गुरवोऽस्माकमेते धन्यतमा भुवि । शिष्योऽयं विजयी येषां, सर्वश्रुतनिवासभूः ॥२५॥
विनेयेनामुना दत्तहस्तालम्बा शनैः शनैः । श्रीमद्गुरोः प्रवृद्धापि, कीर्त्तिर्भ्राम्यतु विष्टपे ॥२६॥
अथेयद्भिर्दिनैर्वज्रो, भावी ज्ञातगुणः खलु । मुनीनामपि मत्वैयुर्मुदितास्तत्र सूरयः ॥२७॥
मुनयस्तानवन्दन्त, भक्तिभाजोऽथ सूरिभिः । पृष्टाः स्वाध्यायनिर्वाहं, शशंसुस्ते यथास्थितम् ॥२८॥
नत्वा भूयोपि ते शिष्या, गुरुमेवं व्यजिज्ञपन् । भगवन्! वाचनाचार्यो, वज्र एवास्तु नः पुनः ॥२९॥
गुरुर्बभाषे सर्वेषामेव भावी गुरुः क्रमात्। किन्तु मान्योऽधुनाप्युच्चैर्गुणवृद्धोऽर्भकोऽपि हि ॥३०॥
अत एव वयं ग्रामेऽगमामायं च वोऽर्पितः । सूरिर्यथाहि जानीथ, यूयमस्येदृशान् गुणान् ॥३१॥
नत्वस्य वाचनाचार्यपदवी युज्यतेऽधुना । कर्णश्रुत्याददेऽनेन, श्रुतं यन्न गुरोर्मुखात् ॥३२॥
ततश्च श्रुतसारज्ञः श्रुतमर्थसमन्वितम् । अध्यापयद् गुरुर्वज्रं, विधायोत्सारकल्पकम् ॥३३॥
साक्षीकृतगुरुर्वज्रमुनिर्गुर्वर्प्पितं श्रुतम् । मातृकापदवत्सर्वं, स जग्राह कुशाग्रधीः ॥३४॥
तथाऽभूच्छ्रुतविद्वज्रो, यथा सिंहगिरेरपि । चिरसंदेहसंदोहरजःपवनतां ययौ ॥३५॥
क्रमादासादिताचार्यवैभवो भवनाशनः । कुमतध्वान्तविध्वंसहंसः सल्लब्धिसेवधिः ॥३६॥
दशपूर्वश्रुताधारः, श्रीमान् वज्रमुनीश्वरः । भृशं प्रभावयामास, सुचिरं जिनशासनम् ॥३७॥

॥ इति श्रीवज्रस्वामिकथा ॥

तदेवं गुणाधिके विनेये स्यादेव गुरोर्गौरवम्, किन्तु तेन शिष्येण गुणाधिकेनापि हीन इति कृत्वा न गुरुरवमान्य इत्येतदेवाह—

**सविसेसंपि जयन्तो, तेसिमवन्नं विवज्जए सम्मं । तो दंसणसोहीओ, सुद्धं चरणं लहइ साहू ॥१३८॥**

सविशेषमपि—शोभनतरमपि, आस्तां समं हीनं वेत्यपेरर्थः, यतमानस्तदावरणकर्मक्षयोपशमात् सूत्रार्थाध्ययनतपश्चरणप्रभृतिसदनुष्ठाने प्रयत्नवान् तेषां—गुरूणामवज्ञामभ्युत्थानाद्यकरणरूपां वर्जयति—परिहरति सम्यक् शुद्धपरिणामो भावसाधुरिति प्रकृतम्, ततश्च दर्शनशुद्धेर्हेतोः शुद्धमकलङ्कं चरणं—चारित्रं लभते—प्राप्नोति साधुर्भावमुनिरिति ।

अयमत्राशयः—सम्यक्त्वं ज्ञानचरणयोः कारणम्, यत एवमागमः—

"नादंसणस्स नाणं, नाणेण विणा ण हुंति चरणगुणा । अगुणस्स नत्थि मुक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं" ॥ इति ।

तच्च गुरुबहुमानिन एव भवत्यतो दुष्करकारकोऽपि तस्मिन्नवज्ञां न विदध्यात्, तदाज्ञाकारी च भूयाद् । यत उक्तम्—

"छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं, मासद्धमासखमणेहिं । अकरंतो गुरुवयणं, अणंतसंसारिओ भणिओ" ॥ इत्यादि ।

अथ साधुलिङ्गनिगमनपूर्वकं तत्फलमभिधित्सुराह—

**इय सत्तलक्खणधरो, होइ चरित्ती तओ य नियमेण । कल्लाणपरंपरलाभजोगओ लहइ सिवसुक्खं ॥**

इतिरुपप्रदर्शने पूर्वोपदर्शितप्रकारेण सकला मार्गानुसारिणी क्रिया[1], श्रद्धा प्रवरा धर्मे[2], प्रज्ञापनीयत्वमृजुभावात्[3], क्रियास्वप्रमादः[4],

आरम्भः शक्यानुष्ठाने, गरीयान् गुणानुरागः, गुर्वाज्ञाराधनं परममिति सप्तसंख्यलक्षणधरो भवति चारित्री–भावसाधुः। 'तउ' त्ति सकः च शब्दोऽवधारणे, स एव नान्यः, कल्याणपरम्परा–सुदेवत्वसुमनुजत्वादिरूपा, तस्या लाभः–प्राप्तिस्तद्योगात्–तत्संबन्धाल्लभतेऽवाप्नोति शिवसौख्यं–सिद्धिशर्मेति।

उक्तं श्रावकसाधुसंबन्धभेदाद् द्विधा धर्मरत्नम्, इदानीं कः कीदृगिदं कर्त्तुं शक्नोतीत्येतदाह—

**दुविहंपि धम्मरयणं, तरइ नरो घित्तुमविगलं सो उ। जस्सेगवीसगुणरयणसंपया सुत्थिया अत्थि॥**

द्विविधमपि–द्विप्रकारमपि न पुनरेकतरमेवेत्यपिशब्दार्थः, धर्मरत्नं–पूर्वोक्तशब्दार्थं 'तरइ' त्ति शक्नोति, "शकेश्चयतरतीरपाराः" इति वचनात् 'नर' इति जातिनिर्देशान्नरो नरजातीयो जन्तुर्न पुनः पुमानेवेति, गृहीतुमुपादातुमविकलं–संपूर्णं स एव, तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात्। यः कथंभूत इत्याह–यस्य श्रीप्रभमहाराजस्येवैकविंशतिगुणरत्नसंपत् "अक्खुद्दो रूववं पगइसोमो" इत्यादि शास्त्रपद्धतिप्रतिपादितगुणमाणिक्यविभूतिः सुस्थिता–कुबोधाद्यदूषितत्वान्निरुपद्रवाऽस्ति–विद्यते इति।

ननु पूर्वमुक्तमेवैकविंशतिगुणसमृद्धो योग्यो धर्मरत्नस्येति, तत्किं पुनरिदमुच्यते? सत्यम्, पूर्वं योग्यतामात्रमुक्तम्, यथा बालत्वेपि वर्त्तमानो राजपुत्रो राज्यार्ह उच्यते, संप्रति करणशक्तिरप्यस्याभिधीयते, यथा प्रौढीभूतो राजपुत्रः कर्त्तुं शक्नोत्येतावद्वयो राज्यमिति।

**श्रीप्रभमहाराजकथा चेयम्—**

सौधोज्ज्वलप्रभाभिर्निरन्तरप्रसृतधूपधूम्याभिः। जितसुरसरिदर्कसुतासङ्गास्ति पुरी विशालेति ॥१॥

सुरलोकावधिविदलद्विचकिलकलिकामलं यशो यस्य । प्रबलबलशत्रुसंहतिकुलक्षयावधि सदा शौर्यम् ॥२॥
त्यागस्तर्कुकजनवाञ्छितावधिः सागरावधिर्वसुधा । श्रीजिनपतिपदकमलद्वयप्रणामावधिर्भक्तिः ॥३॥
शेषः पुनर्गुणगणो, निरवधिरवधीरितान्यदोषभरः । स श्रीचन्द्रनरेन्द्रस्तां नगरीं पालयामास ॥४॥
क्षितिपतिहृदयकुशेशयशया सदाचरणरागपरिकलिता । शुद्धोभयपक्षाऽजनि, हंसी हंसीव तस्य जनी ॥५॥
तनयौ तयोरभूतां, परिभूताखिलविपक्षसंदोहौ । ज्येष्ठः श्रीप्रभसंज्ञस्तथा कनिष्ठः प्रभाचन्द्रः ॥६॥
तत्र ज्येष्ठो गांभीर्यसागरो, रूपविजितरतिकान्तः[2] । सौम्याकृतिः प्रकृत्या[3], लोकप्रियगुणमणिकरण्डः[4] ॥७॥
अक्रूरचित्तपरिणतिनिर्जरजम्बालिनीहिमानीभृत्[5] । शिवसुखघातकपातकभीरुत्वसरोजदिननाथः[6] ॥८॥
शठतालतालवित्रं[7], दाक्षिण्यहिरण्यमेरुगिरिसदृशः । संततमकार्यलज्जास्फुरदलिनीकमलिनीतुल्यः[9] ॥९॥
जीवदयाकैरविणीशशभृत्[10] माध्यस्थ्यहस्तिविन्ध्याद्रिः[11] । गुणरागजनवतंसः[12], साधुकथाकथनपथपान्थः[13] ॥१०॥
जिनधर्मदक्षसत्पक्षकक्षसेवनपयोधरप्रतिमः[14] । स्फूर्जदुरुदीर्घदर्शित्वतारकातारकामागः[15] ॥११॥
जिनपरिवृढगदितागमविशेषविज्ञत्वकेलिधामसमः[16] । सद्बुद्धिवृद्धजनसेवनैकसरसीवरमरालः[17] ॥१२॥
विनयनयबद्धचेताः[18], कृतज्ञताकूलिनीधुनीनाथः[19] । परहितकरणप्रवणः[20], सुलब्धलक्ष्यश्च कृत्येषु[21] ॥१३॥
तत्रापरेद्युरागात्, केवलकलितो गुरुर्भुवनभानुः । तं नन्तुमगान्नृपतिः, सुतसामन्तादिपरिकलितः ॥१४॥
कृत्वा प्रदक्षिणात्रयमानम्य गुरुं गरिष्ठया भक्त्या । उचितस्थाने न्यषदद्यतिपतिरथ देशनां चक्रे ॥१५॥

इह भवगहनेऽनन्ते, भ्राम्यन् जीवः सहन्नसातभरम् । जातिकुलप्रभृतियुतं, कथमपि लभते मनुजजन्म ॥१६॥
तदवाप्य भव्यलोका !, जिनधर्मं कुरुत सकलदुःखहरम् । स पुनर्द्वेधा प्रोक्तो, यतिगृहिधर्मप्रभेदेन ॥१७॥
तत्राद्ये पञ्च यमाः, प्रत्येकं पञ्च भावनाः पाल्याः । हिंसा[१]लीक[२]स्तेया[३]ब्रह्म[४]परिग्रहविरति[५]रूपाः ॥१८॥
समितिभिरीर्या[१]दानै[२]रेषणा[३]भिरनिशं तथा । मनोगुप्त्या[४] दृष्ट्वान्नादिग्रहणेन[५] भावयेत् प्रथमयममलम् ॥१९॥
हास्यभयलोभकोप[४]प्रत्याख्यानैर्निरन्तरं मतिमान् । आलोच्य[५] भाषणेनापि, भावयेत् सूनृतं च यमम् ॥२०॥
[१]याचनमवग्रहस्यालोच्यावग्रहविमार्गणं च भृशम्[२] । सततं समनुज्ञापितभक्तान्नाभ्यवहृतेः करणम्[३] ॥२१॥
साधर्मिकतो याचनमवग्रहस्योच्चकै[४]स्तथाऽस्यैव । मर्यादाकरण[५]मिमा, अस्तेये भावनाः पञ्च ॥२२॥
नारीपण्डकपशुमन्निवासकुड्यान्तरासनोज्झनतः । स्त्रीरम्याङ्गनिरीक्षणनिजाङ्गसंस्कारपरिहारात्[२] ॥२३॥
स्निग्धात्यशनत्यागात्[३], सरागयोषित्कथाविवर्जनतः[४] । पूर्वरतास्मरणेन[५], ब्रह्म सदा भावयेद्धीमान् ॥२४॥
स्पर्शे[१] रसे च गन्धे[३], शब्दे[४] रूपे[५] शुभाशुभे सततम् । रागद्वेषत्यागो हि, भावनाः पञ्चमयमे स्युः ॥२५॥
एवं व्रतानि पञ्चापि, पञ्चभिः पञ्चभिः सुवास्य भृशम् । सद्भावनाभिरगमन्नसुमन्तः शिवपदमनन्ताः ॥२६॥
गृहमेधिनां तु धर्म्मं, निशम्य सम्यक् सुसाधुगुरुपार्श्वे । ज्ञात्वा तथा गृहीत्वा, व्रतानि परिपालनीयानि ॥२७॥
आयतनसेवनाद्यं, शीलं परिशीलनीयमनवरतम्[२] । सद्भिः समर्जनीयः, स्वाध्यायप्रभृतिविभवभरैः[३] ॥२८॥
व्यवहारशुद्धिरनिशं, भव्यैरव्याजभावनैः कार्या[४] । गुरवश्चरणविहङ्गमतरवः शुश्रूषणीयाश्च[५] ॥२९॥

भाव्यं प्रवचनकौशलसुपेशलैर्गलितसकलपापमलैः । स्त्रीणां वश्योऽवश्यं नात्मा कार्यः कदाचिदपि ॥३०॥
सुज्ञानशृंखलाभिर्हृषीककपयः समन्ततो रोध्या[2] । गृद्धिर्न चार्थसार्थे, क्लेशायासकरे कार्या[3] ॥३१॥
निर्वेदः संसारे, दुःखागारे सदा विधातव्यः[4] । विषयाः कुनृपाधिष्ठितविषया इव दूरतस्त्याज्याः[5] ॥३२॥
तीव्रारम्भा दम्भा इव निर्दम्भैः कदापि नहि सेव्या[6] । सकलक्लेशनिवासे, न गेहवासे रतिः कार्या[7] ॥३३॥
धार्यं निरतीचारं, सुदर्शनं स्थगितदुर्गतिद्वारम्[8] । मोहनृपविजयभेरौ, न लोकहेरौ मनो धेयम्[9] ॥३४॥
शुद्धागमविशदविधिः, समस्तकल्याणशेवधिः सेव्यः[10] । दानादिकश्चतुर्द्धा, धर्मः शिवशर्मकृत् कार्यः[11] ॥३५॥
न्याय्ये पथि प्रवृत्तैर्विमुग्धहसितेऽवधीरणाऽऽधेया[12] । हेयौ रागद्वेषौ, भवभाविषु निखिलभावेषु[13] ॥३६॥
धर्माधर्मविचारश्चिन्त्यो माध्यस्थ्यसुस्थचेतोभिः[14] । स्वजनधनादिषु निबिडः प्रतिबन्धो नो विधातव्यः[15] ॥३७॥
भोगोपभोगतृष्णाकृष्णाहिविनिग्रहे [16]प्रयतितव्यम् । सततं यतिधर्मधुरोद्धरणोद्धुरकन्धरैर्भाव्यम्[17] ॥३८॥
एवं श्रमणोपासकधर्मं विधिना विधाय विमलमनाः । सुचरित्रमाप्य लभते, भवाष्टकस्यान्तरपवर्गम् ॥३९॥
इत्याकर्ण्य श्रीचन्द्रनरपतिर्भुवनभानुगुरुमूले । श्रीप्रभसुतादिसहितो, जगृहे गृहमेधिनां धर्मम् ॥४०॥
अथ नत्वा गुरुचरणौ, निजधाम जगाम वसुमतीनाथः । विजहार हारनिर्मलगुणोच्चयः सूरिरन्यत्र ॥४१॥
अपरेद्युः श्रीचन्द्रक्षितीशितुः सविनयं तनूजाभ्याम् । संवाह्यमानचरणद्वयस्य सुकुमारकरकमलैः ॥४२॥
मौलिमणिरुचिररोचीरचितसदःसदनभूरिहरिचापैः । भक्त्या परःसहस्रैरवनिधवैः सेव्यमानस्य ॥४३॥

राज्यभरभवनधरणस्तम्भैः सद्बुद्धिभिर्विगतदम्भैः । शतशः सचिववरिष्ठैरलंकृतासन्नदेशस्य ॥४४॥

बहुसमसमरसंपल्लम्पटभटकोटिभिः परिवृतस्य । करकलितकनकदण्डो, विज्ञापयामास वेत्रीति ॥४५॥ (चतुर्भिः कलापकम्)

देव ! दिदृक्षुर्वो रङ्गमल्लनामा नटाग्रणीरुत्कः । संक्षेपनिबद्धसनत्कुमारनाट्यप्रबन्धोऽस्ति ॥४६॥

लघु मुञ्चेत्युक्ते सति, महीभुजा वेत्रिणा स आनायि । कृत्वा त्रिपातकं करमित्याशिषमथ नृपस्यादात् ॥४७॥

तद्यथा—

षट्खण्डामवनिं निधीन्नव चतुःषष्टिं सहस्राणि च, स्त्रीणां क्षोणिभुजां तदर्द्धमपरं द्विःसप्त रत्नानि च ।

यस्त्यक्त्वा तृणवद्धवार्त्तिविधुरो जैनं व्रतं शिश्रिये, राजर्षिः स सनत्कुमार इह ते भूपाल ! भूयाच्छ्रिये ॥४८॥

अथ नाटकावलोकनकौतुकरसविवशमानसं सकलम् । निजतनयप्रभृतिजनं, नृपतिर्विस्पष्टमैक्षिष्ट ॥४९॥

तस्यानुवृत्तिवशतः सविलासामुज्ज्वलां ततो दृष्टिम् । तदभिनयकृते स कृती नटनेतरि पातयांचक्रे ॥५०॥

बुद्ध्वाऽथो नृपहृदयं, हृदयङ्गमया गिराऽगृणात् सोपि । भो भो पार्षद्यजनाः ! श्रीचन्द्रनरेश्वरप्रमुखाः ! ॥५१॥

क्षणमेकमेकतानीभूय शृणुत तुर्यचक्रिणश्चरितम् । इति जल्पन्नट उच्चैस्तदभिनयं कर्त्तुमारेभे ॥५२॥

तथाहि—

श्रीहस्तिनापुरपतेः, सनत्कुमारस्य नृपतितिलकस्य । षट्खण्डभरतभर्त्तुः प्राज्यं साम्राज्यमनुभवतः ॥५३॥

अप्रतिमरूपलक्ष्मीविलोकनोत्पन्नविस्मयोत्कर्षः । मध्येसभं निलिम्पान् सुरपतिरिति निगदति स्म मुदा ॥५४॥

भो भो अमराः ! पश्यत सनत्कुमारस्य सार्वभौमस्य । पूर्वार्जितशुभनिर्माणकर्मनिर्मितलसन्मूर्तेः ॥५५॥
सा कापि रूपलेखावरेण्यलावण्यकान्तिपरिकलिता । सुरसद्मजन्मिनामपि, या प्रायो नैव संभवति ॥५६॥
अश्रद्दधताविति सुरपतेर्वचो विजयवैजयन्ताख्यौ । क्षिप्रं वसुंधरायां, द्वावमृतभुजाववातरताम् ॥५७॥
अत्रान्तरे च सर्वेपि, विस्मयस्मेरलोचना लोकाः । किमितो भवितेत्यवहितचित्ता आकर्णयामासुः ॥५८॥
तौ तदनु विप्ररूपेण, भूपरूपावलोकनसतृष्णौ । द्वारसमीपेऽस्थातां प्रासादद्वारि भूमिभुजः ॥५९॥
आसीत् सनत्कुमारो, मुक्तालंकारसारनेपथ्यः । प्रारब्धमज्जनोऽभ्यङ्गसंगमङ्गे वहन्नुच्चैः ॥६०॥
दौवारिकेण तौ विप्रपुङ्गवौ द्वारसंस्थितौ कथितौ । प्राविविशत्तदाप्येष, चक्रवर्त्ती स नयवर्त्ती ॥६१॥
अप्रतिरूपं रूपं, तौ दृष्ट्वा तस्य राजराजस्य । मौलिं विधूनयन्तौ, दध्यतुरिति विस्मितौ मनसि ॥६२॥
एतस्य भालपट्टोऽयमस्तशस्ताष्टमीरजनिजानिः । नीलोत्पलजयिपत्रे नेत्रे कर्णान्तविश्रान्ते ॥६३॥
दन्तच्छदयुगमभिभूतपक्वबिम्बीफलच्छविविकाशम् । जितशुक्तिः श्रुतयुगली कण्ठोऽयं पाञ्चजन्यजयी ॥६४॥
स्तम्बेरमराजकराकारतिरस्कारकारिणौ बाहू । वक्षःस्थलममराचलपृथुलशिलाश्रीविलुण्टाकम् ॥६५॥
कटरे करचरणतलं तर्जितकंकेल्लिपल्लवप्रचयम् । किमपरममुष्य सर्वाङ्गश्रीर्नहि गोचरो वाचाम् ॥६६॥
कोप्यस्याहो ! लावण्यसरित्पूरो निरर्गलो येन । जानीमो नाभ्यङ्गं, भविभामिव चारुचन्द्रिकया ॥६७॥
वर्णयति स्म यथेन्द्रस्तथेदमाभाति समधिकं चापि । न कदाचनापि मिथ्या वदन्ति वाचं महात्मनः ॥६८॥

किमिहागतौ भवन्ताविति पृष्टौ चक्रिणाऽथ तौ जगदुः। अप्रतिमं तव रूपं त्रिजगत्यां गीयते भूप ! ॥६९॥
दूरादपि तच्छ्रुत्वा, तरङ्गितामुद्रकौतुकसमुद्रौ। अवलोकयितुमिहावामायाव नरेन्द्रशार्दूल ! ॥७०॥
व्यावर्ण्यमानमतुलं, तव रूपं शुश्रुवे यथा लोके। नरवर ! ततोऽपि सविशेषमेतदालोक्यतेऽस्माभिः ॥७१॥
श्रुत्वेति विप्रवचनं, स्मितविच्छुरिताधरो नृपः प्रोचे। कान्तिरियं किल कियती परितोऽप्यङ्गे कृताभ्यङ्गे ॥७२॥
क्षणमात्रमितो भूत्वा, भो भो द्विजसत्तमौ ! प्रतीक्षेथाम्। मज्जनकक्षण एषोऽस्माभिर्निर्वर्त्यते यावत् ॥७३॥
रचितविचित्राकल्पं, विभूषितं भूरिभूषणगणेन। रूपं मम पश्येतं, सरत्नमिव काञ्चनं भूयः ॥७४॥
तदनुस्नातविलिप्तोऽलंकृतिनेपथ्यभूषितो भूपः। अध्यासामास सदःसदनं गगनं गगनमणिवत् ॥७५॥
समनुज्ञातौ भूयोऽपि, भूपरूपं द्विजौ प्रपश्यन्तौ। दवदग्धकीचकाविव विच्छायौ झगिति तौ जातौ ॥७६॥
अहह ! किमेतदिति सर्वेपि सभ्याः साकूतं परस्परमुदीक्षामासुः।
अनलंकृतेऽपि पूर्वं मयि दृष्टे हर्षितौ युवां विप्रौ। समलंकृतेऽपि संप्रति दृश्येथे किमिति सविषादौ ? ॥७७॥
इति चक्रभृता पृष्टौ, भूदेवौ तौ जजल्पतुर्भूप !। अधुना तावकदेहे संक्रान्ता व्याधयः सप्त ॥७८॥
तद्वशविनश्यदतुलाङ्गरूपलावण्यवर्णकान्तिगुणः। त्वं वर्तस इत्यावां, प्रतिपन्नौ शोकसंभारम् ॥७९॥
कथमेतद्विज्ञायत इत्येवं प्रश्नितौ भरतपतिना। तौ शिष्टयथास्थितसर्वपूर्वसुरराजवृत्तान्तौ ॥८०॥
प्रकटितनिजस्वरूपौ, गीर्वाणौ प्रतिगतौ यथास्थानम्। वैराग्योपगतमतिश्चक्रधरोऽचिन्तयदथैवम् ॥८१॥

भवनजनयुवतिचतुरङ्गसंग्रहो यस्य कारणात् क्रियते । तद्दारुदारुणघुणैरिव रोगैर्लुप्यते गात्रम् ॥८२॥
येन विमोहितमतयो, हितमहितं चिन्तयन्ति नहि जीवाः । तद्यौवनमिह वनमिव जरादवानलशिखा दहति ॥८३॥
अवलिप्तो येन जनः, कृत्याकृत्यं न वेत्ति तद्रूपम् । मङ्क्षु विनस्यति धातुक्षोभे हिमपात इव कमलम् ॥८४॥
अद्यश्वीनविनाशिन एतस्य शरीरकस्य तदिदानीम् । गृह्णाम्यविनश्वरफलमिति नृपतिश्चेतसि विभाव्य ॥८५॥
प्राज्यं साम्राज्यमिदं, विहाय लोका ! अहो निरीक्षध्वम् । आदत्ते जिनदीक्षां तारतरीमिव भवाम्भोधौ ॥८६॥
सागसमिव दशमद्वाररोधिनं चिकुरनिकरमसितरुचिम् । पश्यत पश्यत पुरतः, समूलमुन्मूलयत्येषः ॥८७॥
पुरतोऽवलोकयध्वं, मणिरत्नोत्कटकिरीटहारादिः । आभरणसमूहोऽयं, निर्माल्यमिवामुनाऽत्याजि ॥८८॥
निध्यातनाथमुक्तं, क्रन्दत्यन्तःपुरं स्फुरद्दुःखम् । खरतरसमीरलहरीप्रकम्पितं खगकुलमिवाग्रे ॥८९॥
हा नाथ ! नाथ ! किं वयमेकपदेऽप्यशरणास्त्वया त्यक्ताः । एवं विलपन्ति जना हृतसर्वस्वा इवेक्षध्वम् ॥९०॥
इति तेन भरतभर्त्तुर्निष्क्रमणव्यतिकरस्तथाऽदर्शि । श्रीचन्द्रनृपोऽपि यथा तत्कालं जातवैराग्यः ॥९१॥
स्मृतपूर्वभवश्रुतशुद्धसंयमः पञ्चमुष्टिकृतलोचः । सुरदत्तसाधुवेषो, विनिर्ययौ राजमन्दिरतः ॥९२॥
नटविलसितमिदमखिलं, निर्नाथान्नाथ ! मास्म नस्त्याक्षीः । एवं रुदत्यपि जने विहृतः स ऋषिर्यथाऽभिमतम् ॥९३॥
अथ पितृवियोगविह्वलचित्तमनिच्छन्तमश्रुपूर्णाक्षम् । श्रीप्रभमुच्चै राज्ये कौमारे च प्रभाचन्द्रम् ॥९४॥
विनिवेश्य विनयनम्रैः सामन्तैः सचिवपुङ्गवैश्चोक्तम् । अस्तोकशोकशङ्कूद्धरणप्रवणैरिदं वचनैः ॥९५॥



तत्र श्रीप्रभ-
महाराज-
कथा

मा देव ! कृथाः स्वपितुः, शोकमशोच्यो ह्यसौ महाभागः । खलमहिलेव विमुक्ता येन समग्राऽपि राज्यश्रीः ॥९६॥
को नाम प्रारभते, दुष्करमेवंविधं श्रमणधर्म्मम् । प्रायो वैराग्यमतिः, क्षणमेकं मतिमतामपि यत् ॥९७॥
शोच्यास्तएव ये कालधर्मतामुपगता अकृतसुकृताः । यैरुद्यतमिति धर्मे, ते भुवने पश्चिमाः पुरुषाः ॥९८॥
निशमयति को न समयं ? कः सर्वं नेक्षते क्षणविनाशि ? । प्रतिसमयभावि मरणं, शरीरिणां को न भावयति ? ॥९९॥
को वा हृदि नहि धत्ते, गुरूपदेशं सदा सुखनिवेशम् ? । कस्य न वा प्रियमक्षयमनन्तमसदृशममृतसौख्यम् ? ॥१००॥
किंतु चलचित्तभावात्, तदनुष्ठाने भृशं गतोत्साहाः । गिरिगुरुका अपि पुरुषा अवसर्पन्तो विलोक्यन्ते ॥१०१॥
देवेन पुनस्तत्किमपि, साहसं व्यवसितं महामतिना । यदसमसाहसिकानामपि चेतः खलु चमत्कुरुते ॥१०२॥
एषोऽपि देव ! परमोपकारिभावेन नाटकविधाता । सद्धर्मसूरिरिव, वो विशेषतश्चार्चितुं युक्तः ॥१०३॥
एवं निशम्य राजा, रङ्गाचार्यं प्रपूज्य विससर्ज । किंचिदुपशान्तशोको, नीतिलतासजलजलवाहः ॥१०४॥
नीहारहारधवलान्, नव्यविहारान् विधापयन् बहुशः । गुरुगौरवेण कुर्वन् , साधर्मिकलोकवात्सल्यम् ॥१०५॥
मुग्धजनं सद्धर्मे, स्थिरयन् जिनशासनोन्नतीस्तन्वन् । सामायिकपौषधमुख्यधर्मनिरतोऽजनि प्रायः ॥१०६॥
अथ सततं धर्मोद्यतमजिगीषुं श्रीप्रभं नृपं ज्ञात्वा । अरिदमनक्षितिपस्तद्देशमुपद्रोतुमारभत ॥१०७॥
ज्ञात्वेदं चरमुखतः, स भाणितः श्रीप्रभेण दूतेन । किं ननु कतिपयसीमग्रामकुटीरकविलुण्टनतः ॥१०८॥
पूर्वजविहितप्रणयप्राग्भारमसारमारचय्य भृशम् । आदृत्य दुर्जनत्वं, विप्रियमेवं मम विधत्से ? ॥१०९॥

यतः—

"ते धन्याः सत्पुरुषा येषां स्नेहो ह्यभिन्नमुखरागः। वृद्धिं गच्छन्ननुदिनमृणमिव पुत्रेषु संचरति" ॥११०॥

तस्मादितोऽपराधाद्व्याप्युपरम मयाऽऽग एतत्ते। क्षान्तं नह्यग्रेगूभर्वाम्यहं स्नेहतरुभेदे ॥१११॥

श्रुत्वेत्यरिदमननृपस्तं दूतं प्रतिहसन्निति जजल्प। भो भो! त्वया निजप्रभुरेवं वाच्यो मदीयगिरा ॥११२॥

यथा—

तव पार्थिव! धर्मार्थं सविस्तरारब्धकुशलकृत्यस्य। पृथ्व्या परिपन्थनया, कृतमनयाऽनर्थकारिण्या ॥११३॥

अथ वाञ्छस्येनामपि, तद् दूरं मुञ्च धर्मकर्मेदम्। एकत्र कथं संभवति, खलतिसीमन्तसंघटनम्? ॥११४॥

अथ लोकरञ्जनामात्रमेष आरभ्यत त्वया धर्म्मः। तद्भव निश्चिन्तमना, न हन्मि तव देशमहमधुना ॥११५॥

पूर्वप्रणयप्रकटनमवनीशानां परं जिगीषूणाम्। दूषणमेव गरिष्ठं, गाढमसामर्थ्यमथवाऽपि ॥११६॥



श्रुत्वेति दूतमुखतः, श्रीप्रभराजः प्रदीप्तकोपाग्निः। किङ्करगणेन सहसा, रणभेरीं ताडयामास ॥११७॥

तच्छब्दाकर्णनझगितिमिलितचतुरङ्गसैन्यपरिकलितः। शत्रुं प्रति प्रतस्थे स्वदेशसीमन्यगात् क्रमशः ॥११८॥

अरिदमननृपोऽप्यस्याशु संमुखं समजनिष्ट रणरसिकः। अलसा न युधे शूरा, विप्रा इव भोजनायेह ॥११९॥

अथ सैन्ययोर्द्वयोरपि, सुभटानां तत्र चित्रशस्त्रभृताम्। संफोटोऽजनि गगने, सविद्युतामिव पयोदानाम् ॥१२०॥

अत्यद्भुतभटवादैरथमालवभूभुजः सुभटसंघैः। परबलमभज्यत द्रुतमुद्यानमिव द्विपैर्मत्तैः ॥१२१॥

अथ रथमध्यारूढो, भग्नं संधीरयन्ननीकं स्वम् । उदतिष्ठतारिदमनः, समरायास्फालयंश्चापम् ॥१२२॥
युगपद्विमुक्तशितविशिखसंचयैः सोऽप्यधत्त रिपुसैन्यम् । तटपर्वतमिव जलधिः, प्रसरद्वेलासलिलपूरैः ॥१२३॥
क्षणमात्रादरिदमनः, परसैन्यमदैन्यभुजबलोऽभाङ्क्षीत् । कुटकोटिं लकुट इव, प्रभञ्जनो वृक्षलक्षमिव ॥१२४॥
निजसैनिकभङ्गेन, क्रुद्धः श्रीप्रभनृपो विपक्षबलम् । उत्तस्थे संहर्तुं, कीनाशस्यानुजन्मेव ॥१२५॥
नैव मनागपि सेहे मालवपतिरापतन् परानीकैः । भुजगैरिव विनतायाः, सूनुर्हरिणैरिव व्याघ्रः ॥१२६॥
विद्रुतसैन्यं पुरतः, स्थितमरिदमनं नृपं रणायाथ । आह्वास्त मालवेशो, बलानुजन्मेव भूरिबलः ॥१२७॥
तदनु विचित्रैः शस्त्रैरस्त्रैरपि तौ नृपावयुध्येताम् । वन्येभाविव दशनैरन्योन्यवधाभिलाषमती ॥१२८॥
युद्ध्वा चिरमरिदमनं, गुरुशक्तिर्मालवाधिपश्चक्रे । गतवीर्यं गतशस्त्रं, भुजगं निर्विषमिव नरेन्द्रः ॥१२९॥
अरिदमननृपः श्रीप्रभनृपेण कलभो महागजेनेव । परिभूतः पश्चान्मुखमवेक्षमाणः पलायिष्ट ॥१३०॥
अथ तस्य श्रियमखिलां, रथकट्याश्वीयहास्तिकप्रमुखाम् । जगृहे श्रीप्रभराजस्तस्य श्रीर्विक्रमो यस्य ॥१३१॥
आपूर्ण इवाम्बुधरो, निवृत्य रणसागरादवन्तीशः । कृतसकललोकतोषो, निजनगरीमाजगाम ततः ॥१३२॥
तत्र त्रिवर्गसारं, राज्यश्रियमनुभवन्नसौ नृपतिः । भूयांसमनेहांसं, स्वःसुरपतिवदतिचक्राम ॥१३३॥
तत्र प्रभासगुरवः समवसृता, अन्यदा सुमुनिसहिताः । बन्धुपरिवारयुक्तस्तान्नन्तुं निर्ययौ राजा ॥१३४॥
सम्यक् विनम्य मुनिपतिमिलातलाश्लिष्टमस्तको नृपतिः । निषसाद यथास्थानक्रमथ गुरुरिति देशनां विदधे ॥१३५॥

इह हि भवसमुद्रे संसरन् भूरिकालं, कथमपि मनुजत्वं प्राप्नुयात् कोऽपि जीवः ।
तदपि कथमपीह प्राप्य सद्धर्मकर्मक्षमतनुबलमायुर्दीर्घकालाल्लभेत ॥१३६॥
इदमपि समवाप्य प्रौढमिथ्यात्वलुप्तस्फुटविशदविवेकः पापतापातिरेकः ।
पुनरपि च भवेऽस्मिन्नन्तशोऽनन्तदुःखव्यतिकरविधुरोऽयं संभ्रमी बंभ्रमीति ॥१३७॥
इति भवजलराशौ मज्जनोन्मज्जनानि, प्रविदधदिह दैवादाप्य भूयोऽपि नृत्वम् ।
दृढगुणगणबद्धां जैनदीक्षां तरीवच्छ्रयत भविकलोकाः क्लेशविच्छेददक्षाम् ॥१३८॥

किंच—

अत्युत्कटभटकोटीरथहरिकरिनिकरबलभरसमृद्धाः । यैर्जीयन्ते रिपवः, परःशता जगति ते पुरुषाः ॥१३९॥
येन पुनः स्वात्माऽसावनल्पकुविकल्पकल्पनाकलितः । जीयेत तेन विजितं, त्रिजगदिदं परमशूरोऽसौ ॥१४०॥

तथाचार्षम्—

"जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे । एगं जिणिज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥१४१॥
एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस । दसहाउ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणिज्ज तो ॥१४२॥
इत्याकर्ण्य श्रीप्रभ, आनम्य गुरूनुवाच वः पार्श्वे । प्रव्रज्यामादास्ये, राज्यं न्यस्य प्रभाचन्द्रे ॥१४३॥
देवानुप्रिय ! मा स्म व्यधाः प्रमादमिति सूरिणा गदिते । राजा सपरिवारो निजधाम जगाम मुदितमनाः ॥१४४॥

अथ सकलराजलोकप्रत्यक्षं भ्रातरं प्रभाचन्द्रम् । संस्थाप्य राज्यभारे, प्रददाविति नरपतिः शिक्षाम् ॥१४५॥
वत्सान्तरङ्गशत्रून्, सदा जयेरविजये यतस्तेषाम् । विजिता अप्यजिताः, खलु बलवन्तः शत्रवो बाह्याः ॥१४६॥
परिपालयेः प्रजास्त्वं, मालिक इव सुमनसः प्रयत्नेन । सर्वत्राप्यौचित्यं, हृदये दध्या जिनेन्द्रमिव ॥१४७॥
इतरेतराविघातेन, वत्स ! धर्मार्थकामपुरुषार्थान् । प्रतिलेखनादिचेष्टाः, सुसाधुरिव साधयेः सततम् ॥१४८॥
सिचयमिवानलदूषितमुज्झेर्निजमपि नयेन परिहीणम् । दुर्दममिन्द्रियवर्गं, दमयेस्तुरगादिनिवहमिव ॥१४९॥
परिवर्जयेः कुसङ्गं द्विदलान्ने घोलभोजनमिवोच्चैः । सेवेथा आर्यजनं, घनं यथा चातकसमूहः ॥१५०॥
बन्धो ! बन्धुरभक्त्या, बन्धुमिव श्राद्धलोकमश्चेथाः । रक्षेर्नयेन वसुधां, सुधां यथा भोगिनां भर्त्ता ॥१५१॥
आधारस्त्वमसि भुवो, नाधारस्तव समस्ति कश्चिदपि । आत्मानमात्मनैव हि, तत्सततं धारयेर्वत्स ! ॥१५२॥
इत्युक्त्वा तूष्णीकीभूते श्रीप्रभनृपे प्रभाचन्द्रः । एवमिति प्रतिपेदे, सर्वं भक्त्या नमद्ग्रीवः ॥१५३॥
अथ सुस्नातविलिप्तो, रत्नालङ्कारभूषितशरीरः । सदशांशुकसिचयधरो, ददर्थिभ्यो महादानम् ॥१५४॥
कृतसकलसंघपूजो, भ्रातृविधापितसहस्रनरवाह्याम् । शिबिकामध्यासामास पुष्पकं यक्षराज इव ॥१५५॥
चतुरङ्गचमूयुक्तेन, बन्धुभूपेन विनयनम्रेण । अनुगम्यमान उच्चैर्मागधकृतजयजयारावः ॥१५६॥
पुर्या मध्यंमध्येन, निर्ययौ नरपतिर्महाभूत्या । गुरुपदपावितमुद्यानमाप्य शिबिकात उदतारीत् ॥१५७॥
अथ भूषणसंभारं, विश्वं विश्वम्भरापतिर्झगिति । उदतारयदङ्गाद् भुजदण्डादिव वसुमतीभारम् ॥१५८॥

सिद्धान्तगदितविधिना, गुरुणाऽथ श्रीप्रभः परिव्राज्य । परमां मुदं दधत्या, भारत्या समनुदिष्ट इति ॥१५९॥
कमठेन्दुदर्शनमिव, प्राप्य दुरापां जिनाधिपतिदीक्षाम् । शयनासनादिचेष्टा, सकलापि हि यतनया कार्या ॥१६०॥

यतः—

यतना सुधर्मजननी, यतना धर्मस्य पालिनी नित्यम् । तद्वृद्धिकरी यतना, सर्वत्र सुखावहा यतना ॥१६१॥
एकामेव हि यतनां, संसेव्य विलीनकर्ममलपटलाः । प्रापुरनन्ताः सत्त्वाः, शिवमक्षयमव्ययं स्थानम् ॥१६२॥
एवं शिक्षां दत्त्वा, प्रभासगुरवो विजह्रुरन्यत्र । शारदिकवारिदा इव, तिष्ठन्त्येकत्र नहि मुनयः ॥१६३॥
श्रीप्रभराजर्षिरपि, प्रतिसमयविशुद्ध्यदमलपरिणामः । यूथपतिनेव कलभः, सततं विजहार सह गुरुणा ॥१६४॥
जिनपरिवृढगदितागमसूत्रार्थसुधां पिबन्नमर्त्य इव । पञ्चमहाव्रतभारं, दधदवनीभारमिव शेषः ॥१६५॥
पञ्च निशाताः समितीर्हस्तशरानिव धनुर्धरो बिभ्रत् । तिस्रो गुप्तीः शक्तीर्नरपतिरिव धारयन् शुद्धाः ॥१६६॥
मार्गानुसारिणीमिह, कुर्वन् सकलां क्रियां सुपान्थ इव । श्रद्धां प्रवरां धर्मे, तन्वन् मकरन्द इव भृङ्गः ॥१६७॥
प्रज्ञापनीयभावेन, संयुतो भद्रवारण इवोच्चैः । साधक इव विद्यासु, प्रमादमुक्तः क्रियासु सदा ॥१६८॥
आद्रियमाणः शक्यानुष्ठाने योग्यमन्द इव वैद्यः । हृष्यन् गुणाढ्यसङ्गे सरउत्सङ्गे मराल इव ॥१६९॥
आराधयन् गुरुजनं, परमात्मानं यथा परमयोगी । सुचिरं निरतिचारं, चरणं परिपालयामास ॥१७०॥
अथ वर्गत्रयपालनपरायणस्य प्रभेन्दुराजस्य । तनयावुभावभूतां, हरिषेणः पद्मसंज्ञश्च ॥१७१॥

तौ सकलकलापूर्णौ, पूर्णेन्दू इव समस्तजनसुखदौ । अपराविव भुजदण्डौ, रेजाते तस्य भूपस्य ॥१७२॥
अपरेद्युरवनिजानेरजनिष्टारोचिकत्वमन्नादौ । मरुनिपतितहंस इव, प्रतिदिनमक्षीयत ततोऽसौ ॥१७३॥
आहूता वरवैद्याः, क्रिया विचित्राश्च तैः समारब्धाः । न च जज्ञे कोऽपि गुणो, व्यचिन्तयत्तत इति नरेन्द्रः ॥१७४॥
द्रव्यौषधैः किमेभिर्ज्येष्ठं पुत्रं निवेश्य राज्यभरे । कौमारे च कनिष्ठं श्रयामि धर्मौषधमिदानीम् ॥१७५॥
अत्रान्तरे च सहसा, संजातप्रबलशूलरोगेण । अपि वैद्यैः क्रियामाणोपचार आपन्मृतिं पद्मः ॥१७६॥
अथ तनयमरणमाकर्ण्य, नृपतिरस्तोकशोकसंतप्तः । दम्भोलिनिहतगिरिरिव, मूर्च्छाविवशः पपात भुवि ॥१७७॥
पवनाद्युपचारवशादवाप्य चैतन्यमिति नृपो व्यलपत् । हा पुत्र ! क्वासि गतः, प्रतिवचनं किं न मम दत्से ? ॥१७८॥
उदियाय पूर्णचन्द्रो, हाऽग्रस्यत मंक्षु सैंहिकेयेन । अहह ! फलेग्रहिरभवत्, तरुरुदमूल्यत महाकरिणा ॥१७९॥
पोतः प्राप पयोनिधिपारं तटशिखरिणा हहाऽभञ्जि ! । दृष्टो निधिर्विशालो हा ! हा ! हाऽह्रियत हतविधिना ! ॥१८०॥
उदनमदम्भोवाहो, नभस्वताऽक्षिप्यत क्षणेनाहो ! । राज्योचितोऽजनि हहा ! तनयः समहारि दैवेन ! ॥१८१॥
एवं प्रलपन् सचिवैर्व्यबोधि कथमपि नृपोऽकरोत् सूनोः । मृतकृत्यमल्पशोकः, कालेनैवं मनसि दध्यौ ॥१८२॥
ये दण्डसात् सुमेरुं, पृथिवीं वा छत्रसात् क्षमाः कर्तुम् । तेपि स्वमन्यमवितुं नालं, किं हन्त पुनरितरे ! ॥१८३॥
पीयूषपोषपुष्टः, पविभीषणपाणिरमरकोटिवृतः । सुरपतिरपि सुरलोकाच्च्यवते पक्वं फलमिव द्रोः ॥१८४॥
षष्टिं पुत्रसहस्रान्, सगरश्चक्र्यपि न रक्षितुमधीशः । ज्वलनप्रभाद्यमादिव, ततोऽपि किं त्वं बलिष्ठतरः ? ॥ १८५॥

कृत्वा पातकमपि यान्, पश्येदुत्पश्यतामपि हि तेषाम् । रङ्क इव यमेन भवं, गतशरणो नीयते कृष्ट्वा ॥१८६॥
नीतस्ततश्च नरके, सहते खलु वेदनाः परमघोराः । जन्मान्तरानुधावीनि देहिनामहह ! कर्माणि १८७॥
जननी मे जनको मे,भ्राता मे सुतकलत्रवर्गो मे । मिथ्यैव बुद्धिरेषा, न देहमपि वस्तुतः स्वीयम् ॥१८८॥
पुत्रादीनामेषां, भिन्नस्थानात्समेयुषां स्थाने । एकत्र निवासः खलु, विहगानामिव तरौ सायम् ॥१८९॥
गच्छन्ति ततोपि पुनः पृथक् पृथक् स्थानकेषु देहभृतः । एकत्र निशि सुषुप्ता, निशावसाने यथा पान्थाः ॥१९०॥
अरघट्टघटीन्यायादथैहिरेयाहिरां क्रियां सततम् । इह कुर्वतां तनुभृतां, को हन्त स्वः परः को वा ? ॥१९१॥
एवं यावत् संवेगसंगतश्चिन्तयत्यवनिनाथः । तावत् तत्रोद्याने, कुमारनन्दी गुरुः प्राप ॥१९२॥
गुर्वागमनं ज्ञात्वा, गत्वा तत्र प्रणम्य मुनिनाथम् । उचितस्थाने निषसाद, देशनामथ गुरुर्विदधे ॥१९३॥
दिग्भ्यः सर्वाभ्योऽपि, स्वतोऽन्यतश्चापतद्विपन्निवहाः । यमदन्तयन्त्रसंस्थाः, कष्टं जीवन्ति तनुभाजः ॥१९४॥
जीवातुभिरगदगणैरायुर्वेदेन सप्रभेदेन । मृत्युञ्जयादिभिर्वरमन्त्रैर्नहि रक्ष्यते मृत्योः ॥१९५॥
अहह खलमार्यमधनं, महाधनं मन्दमेधसं प्राज्ञम् । कवलयति सततमशरणमविशेषेणैव समवर्ती ॥१९६॥
तापापहमजरामरपदप्रदं श्रमणधर्मममृतसमम् । मुक्त्वा तदत्र भुवने, क्वचिदपि नान्यच्छरणमस्ति ॥१९७॥
इत्याकर्ण्य नरेशो, विनम्य यतिपतिपदौ जगादेति । यतिधर्मेच्छोरनिशं पालितगृहमेधिधर्मस्य ॥१९८॥
पूर्वभवार्जितगुरुतररोगभरप्रसरविधुरदेहस्य । दीक्षां गृहीतुमनलंभूष्णोरुचितं किमधुना मे ? ॥१९९॥

अल्पायुष्कत्वमथो जानन्नृपतेर्गुरुर्बभाणैवम् । स्वातीचारान् विकटय, यमांश्च पुनरुच्चर नरेश ! ॥२००॥
क्षमयस्व प्राणिगणं,व्युत्सृज सर्वाणि पातकपदानि । जिनसिद्धसाधुधर्मं, सम्यक् शरणं प्रपद्यस्व ॥२०१॥
गर्हस्व दुष्कृतभरं, कुरुष्व सुकृतानुमोदनं भूप ! । शुभभावनां च भावय, मुदितोऽनशनं प्रपद्यस्व ॥२०२॥
पञ्चनमस्कारं स्मर, विमुञ्च ममतां च राज्यराष्ट्रादौ । इति गुरुगिरो निशम्य, प्रमुदितचित्तो महीभर्त्ता ॥२०३॥
निजतनये हरिषेणे, हर्षेण निवेश्य वसुमतीभारम् । संघं च क्षमयित्वा, विधाप्य पूजां जिनगृहेषु ॥२०४॥
सुगुरोः समक्षमनशनमुररीचक्रे समाहितमनस्कः । स्वाध्यायध्यानपरो, वासरसप्तकमतीयाय ॥२०५॥
विदलच्चरणावारककर्मचयोऽत्रान्तरे प्रभाचन्द्रः । विहिताञ्जलिर्गुरुं प्रति विज्ञपयामासिवानेवम् ॥२०६॥
दीक्षा जगृहे न मया, प्रभोऽल्पसत्त्वेन पूर्वमधुना किम् । सा समुचिता गृहीतुं नवेति गुरुराह भो भूप ! ॥२०७॥
एकाहमपि प्राणी, प्रव्रज्यां पालयेदनन्यमनाः । यदि नहि गच्छेन्मोक्षं, स भवेद्वैमानिकोऽवश्यम् ॥२०८॥
तत् संस्तारकदीक्षामधुनापि, विधेहि धेहि समभावम् । श्रुत्वैवं मुदितमनाः, संस्तारकयत्यभून्नृपतिः ॥२०९॥
अनिशं श्रुतिपत्रपुटेन पिबन् समयामृतं विगततृष्णः । अवगाढो हंस इव, स्फूर्जन्निरवधिसमाधिह्रदे ॥२१०॥
पक्षं विहितानशनः, पञ्चनमस्कृतिमनुस्मरन् मनसि । मृत्वा स वैजयन्ते, महर्द्धिरमरः समुत्पेदे ॥२११॥
ग्रामपुरकर्बटादिषु, सार्द्धं विहरन् प्रभासमुनिपतिना । श्रीप्रभमुनिररिदमनक्षितिपतिजनपदमथायासीत् ॥२१२॥
तत्र च निशम्य लोकात् प्रभेन्दुराजस्य मरणवृत्तान्तम् । वैराग्योपगतमना एवं स महामना दध्यौ ॥२१३॥

धन्यः कृतकृत्योऽयं, कृतार्थजन्मा नृपः प्रभाचन्द्रः । पण्डितमरणं लब्धं, भवकोटिसुदुर्लभं येन ॥२१४॥
सुरगिरिधीरेणापि च, मर्त्तव्यं फेरुभीरुणापि तथा । उभयोर्नियते मरणे, धीरतया तद्वरं मरणम् ॥२१५॥
तद् द्वेधाकृतसंलेखनस्य, चिरविहितविमलचरणस्य । अभ्युद्यतमरणं खलु, विधातुमुचितं ममाप्यधुना ॥२१६॥
एवं विभाव्य स मुनिर्गुरूननुज्ञाप्य पापरिपुमुक्तः । प्रतिसमयशुध्यदध्यवसायो देहेऽपि च निरीहः ॥२१७॥
समशत्रुमित्रभावो, निर्जन्तुशिलातलं समनुसृत्य । विदधे विधिना सुमना अनशनमथ पादपोपगमम् ॥२१८॥
अत्रान्तरे चरमुखादरिदमननृपो निशम्य तद्वृत्तम् । आगम्य तत्र हृष्टस्तस्य मुनेरिति नुतिं चक्रे ॥२१९॥
जय जय मुनीश! विकसितशतदलदलपटलविमलकीर्त्तिभर !। निःशेषसत्त्वसंहतिरक्षादक्षाशय ! सुधीर ! ॥२२०॥
शुचिसत्यवचनरचनाप्रपञ्चपीयूषशमितभवदाह !। दशनविशोधनमात्रेपि, परधने निःस्पृहमनस्क ! ॥२२१॥
जितभुवनमदनमदकलकुम्भस्थलदलनकेसरिवरीष्ठ !। पदलग्नधूलिलीलापरिमुक्तप्राज्यसाम्राज्य ! ॥२२२॥
मैत्रीप्रमोदकरुणामाध्यस्थ्यमहार्णवावगाढाय । अतिदुष्करतरतपसे, नमोनमस्ते महाभाग ! ॥२२३॥
इति तेन नूयमानोऽपि, सर्वथोत्कर्षवर्जितः स मुनिः । तत्कालं त्रुटितायुः, परमध्यानं समधिरूढः ॥२२४॥
मुक्त्वा तनूमवक्रयकुटीपरीत्यागहेलयाऽत्रैव । सर्वार्थवरविमाने, त्रिदशवरिष्ठः समजनिष्ट ॥२२५॥
हर्षप्रकर्षकलितैरथ तस्य कलेवरस्य संनिहितैः । विबुधैर्विदधे महिमा, गन्धोदककुसुमवर्षेण ॥२२६॥
देवः स तत्र हस्तोच्छ्रयो निशाकरकरप्रतिमरोचिः । त्रियुतत्रिंशज्जलधिस्थितिरहमिन्द्रो विगतमानः ॥२२७॥

सुखशय्यामधिशयितो, निष्प्रतिकर्मा सदा विमललेश्यः । मुक्तस्थानान्तरगतिरकृतोत्तरवैक्रियविकारः ॥२२८॥
आयुःसागरसंख्यैः, पक्षैः कुर्वन् सुगन्धिनिःश्वसितम् । वर्षसहस्रैस्तावद्भिरेष आहारयन् मनसा ॥२२९॥
भिन्नां च लोकनालीं, विलोकयन्नवधिसंपदा मुदितः । निर्वृतिसुखदेशीयं सुखमनुभूय प्रवरतेजाः ॥२३०॥
स्वस्वस्थानाच्च्युत्वा श्रीप्रभजीवः प्रभेन्दुजीवश्च । अपरविदेहे मुक्तिं, लप्स्येते शुद्धचरणेन ॥२३१॥
एवं संयुत एकविंशतिगुणैः स श्रीप्रभः क्ष्मापतिः, साधुश्रावकधर्मभारधरणे धौरेयकोऽजायत ।
तद् भो भव्यजनाः! सनातनसुखस्थानाप्तिबद्धादरा, एतान् मूलगुणानुपार्जितुमहो यत्नं विधत्तान्वहम् ॥२३२॥

इति श्रीप्रभमहाराजकथा ।

एवं च स्थिते विशेषतः पूर्वाचार्याणां श्लाघामाह—

**ता सुट्ठु इमं भणियं, पुव्वायरिएहि परहियरएहिं । इगवीसगुणोवेओ, जोग्गो सइ धंमरयणस्स ॥१४१॥**

यत एभिर्गुणैर्युक्तो धर्मं कर्तुं शक्नोति, ततः सुष्ठु शोभनमिदं भणितमुक्तं पूर्वाचार्यैः—पूर्वकालसंभवसूरिभिः परहितरतैरन्यजनोपकारकरणलालसैः, किं तदित्याह—एकविंशतिगुणैरुपेतो—युक्तो योग्य उचितः 'सइ' त्ति सदा धर्मरत्नस्य—पूर्वव्यावर्णितस्वरूपस्येति ।

अथ प्रकृतशास्त्रार्थमनुवदन्नुपसंहारगाथायुगलमाह—

धम्मरयणत्थियाणं, देसचरित्तीण तह चरित्तीणं। लिंगाइं जाइं समए, भणियाइं मुणियतत्तेहिं ॥१४२॥
तेसि इमो भावत्थो, नियमइविहवाणुसारओ भणिओ। सपराणुग्गहहेउं, समासओ संतिसूरीहिं ॥१४३॥

धर्मरत्नोचितानामुक्तस्वरूपाणां देशचारित्रिणां—श्रमणोपासकानां तथा चारित्रिणां—साधूनां लिङ्गानि—चिह्नानि यानि समये-सिद्धान्ते भणितान्यभिहितानि मुणितत्त्वैरवबुद्धसिद्धान्ततत्त्वैरिति प्रथमगाथार्थः। तेषामयमुक्तस्वरूपो भावार्थस्तात्पर्यं निजमतिविभवानुसारतः—स्वबुद्धिसंपदनुरूपं भणितः—सिद्धान्तमहाम्भोधेः पारस्य लब्धुमशक्यत्वाद्यावदवबुद्धं तावद्भणितमिति भावः। किमर्थं पुनरियान् प्रयासः कृत इत्याह—स्वपरयोरनुग्रह—उपकारः स एव हेतुः कारणं यस्य भणनस्य तत् स्वपरानुग्रहहेतु क्रियाविशेषणमेतत्। स्वपरानुग्रहोऽप्यागमादेव भविष्यतीति चेद्, तत्रागमे कोऽप्यर्थः क्वापि भणितस्तमल्पायुषोऽल्पमेधसश्चैदंयुगीना नावगन्तुमीशा इति समासतोऽल्पग्रन्थेन भणितः। कैरित्याह—शान्तिसूरिभिर्जिनप्रवचनावदातमतिभिः परोपकारैकरसिकमानसैश्चन्द्रकुलविमलनभस्तलनिशीथिनीनाथैरिति द्वितीयगाथार्थः।

अथ शिष्याणामर्थित्वोत्पादनायोक्तशास्त्रार्थपरिज्ञानस्य फलमुपदर्शयन्नाह—

जो परिभावइ एयं, सम्मं सिद्धन्तगब्भजुत्तीहिं। सो मुत्तिमग्गलग्गो, कुग्गहगत्तेसु नहु पडइ ॥१४४॥

यः—कश्चिल्लघुकर्मा परिभावयति—सम्यगालोचयत्येतं—पूर्वोक्तं धर्मलिङ्गभावार्थं सम्यग्—मध्यस्थभावेन सिद्धान्तगर्भाभिरागमसाराभिर्युक्तिभिरुपपत्तिभिः, स प्राणी मुक्तिमार्गे—निर्वाणनगराध्वनि लग्नो—गन्तुं प्रवृत्तः कुग्रहा—दुःषमाभाविनो मतिमोहविशेषास्त- 

एव गर्त्ता अवटा—गतिविघातहेतुत्वादनर्थजनकत्वाच्च तेषु नैव पतति, हुशब्दस्यावधारणार्थत्वाद्, अत एव सुखेन सन्मार्गेण गच्छतीति।

उक्तं प्रकरणार्थपरिभावनस्यानन्तरं फलम्, अधुना परंपरफलमाह—

**इय धम्मरयणपगरणमणुदियहं जे मणंमि भावन्ति। ते गलियकलिलपंका, निव्वाणसुहाइं पावन्ति ॥१४५॥**

इत्यनन्तरोक्तं धर्मरत्नमुक्तशब्दार्थं तत्प्रतिपादकं प्रकरणं शास्त्रविशेषो धर्मरत्नप्रकरणमनुदिवसं—प्रतिदिनमुपलक्षणत्वात् प्रतिप्रहरमित्याद्यपि द्रष्टव्यम्, ये केचिदासन्नमुक्तिगमना मनसि—हृदये भावयन्ति—विवेकसारं चिन्तयन्ति, ते शुभशुभतराध्यवसायभाजो गलितोऽपेतः कलिलपङ्कः—पातकमलोत्करो येभ्यस्ते गलितकलिलपङ्का 'निव्वाणसुहाइं' ति निर्वाणं—सिद्धिस्तत आधारे आधेयोपचारादिह निर्वाणशब्देन निर्वाणगता जीवा उच्यन्ते सिद्धा इत्यर्थः। ते च गतिस्थानावगाहनाभिरेवं सूत्रे चिन्त्यन्ते। तत्र गतिः—

"लाउय एरंडफले, अग्गी धूमे य इसुधणुविमुक्के। गइ पुव्वपओगेणं, एवं सिद्धाण वि गईओ ॥१॥

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया। इहं बोंदिं चइत्ता णं, तत्थ गन्तूण सिज्झइ" ॥२।

स्थानम् तु—

ईसीपब्भाराए, सीयाए जोयणंमि लोगन्तो। बारसहिं जोयणेहिं, सिद्धी सव्वट्ठसिद्धाओ ॥३॥

निम्मलदगरयवन्ना, तुसारगोक्खीरहारसरिवन्ना। उत्ताणयछत्तयसंठिया य भणिया जिणवरेहिं ॥४॥

एगा जोयणकोडी लक्खा बायाल तीस य सहस्सा। दोय सय अउणवन्ना सिद्धिसिलाए इमा परिही ॥५॥

बहुमज्झदेसभाए, अट्ठेव य जोयणाइं बाहल्लं। चरिमन्तेसु य तणुई अंगुलसंखिज्जइभागमिति ॥६॥

अवगाहना पुनः शरीराभावात्सिद्धजीवप्रदेशावगाढाकाशप्रदेशरूपेह गृह्यते ।

तत्र—

ईसीपब्भाराए, उवरिं खलु जोयणस्स जो कोसो । कोसस्स य छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥१॥
तिन्नि सया तित्तीसा, धणुतिभागो य होइ उक्कोसा । चत्तारि य रयणीओ, रयणि तिभागूणिया मज्झा ॥२॥
ओगाहणा जहन्ना, समहियअट्ठंगुला य इगरयणी । सेलेसिसंठियतणुत्तिभागहीणा तदाकारा ॥३॥ इति ।

ततो निर्वाणगतानि सौख्यानि—सिद्धशर्माणि प्राप्नुवन्ति-लभन्ते ।

तानि पुनरेवमागमे व्यावर्ण्यन्ते—

नवि अत्थि माणुसाणं, तं सुक्खं नवि य सव्वदेवाणं । जं सिद्धाणं सुक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥१॥
जह नाम कोइ मिच्छो, नगरगुणे बहुविहे वियाणंतो । न चएइ परिकहेउं, उवमाइ तहिं असंतीए ॥२॥

म्लेच्छज्ञातं त्वेवम्—

कोइ नरिंदो नियपट्टणाउ विवरीयसिक्खतुरएण । अडवीए पक्खित्तो, खुहापिवासाहिं परिभूओ ॥१॥
पायवतलंमि पडिओ, केणावि पुलिंदएण करुणाए । विहिओ पउणसरीरो, वरसलिलप्फलप्पयाणेणं ॥२॥
मिलियंमि य नियसिन्ने, नेइ कयन्नुत्ति तं निवो नयरे । ठावइ वरपासाए, परिहावइ पवरचीराइं ॥३॥
वरभोयणपमुहेहिं, दिव्वाहारेहिं पीणइ पुलिंदं । अह सो कयाइ सुमरइ, नियजंमभुवं पुलिंदनरो ॥४॥

मुणिऊण इमं रन्ना, विसज्जिओ सो गओ नियं अडविं । मिलिओ सयणाण इमेहि, पुच्छिओ कत्थ पत्तो सि ? ॥५॥
सो कहइ नरवरेणं, नयरे नीओ म्हि, ते पयंपंति । केरिसयं तं नयरं, सो जंपइ पल्लितुल्लंति ॥६॥
ते बिंति कत्थ वसिओ, सो भासइ मणिमयंमि पासाए । ते बिंति केरिसो सो, सो साहइ उडयसारिच्छो ॥७॥
ते बिंति किं परिहियं, तुमए सो भणइ पट्टवत्थाइं । ते बिंति केरिसाइं ? सो संसइ वक्कलसमाइं ॥८॥
ते बिंति किं च भुत्तं ?, वज्जरइ स मोयगा भणंति इमे । ते केरिसा ? पुलिंदो, बुल्लइ ते पक्कबिल्लसमा ॥९॥
इय अडविपसिद्धेहिं, दिट्ठंतेहिं अदिट्ठनयराण । जह सो सयणाण पुरो नयरसरूवं परूवेइ ॥१०॥
तह केवलीहिं सुमुणियसिद्धिसुहेहिंपि अणुवमत्तेण । तं वुत्तुमसक्कं, तहवि किंचि उवमाइ साहेमि ॥११॥
सयलाहिवाहिरहिओ, महुराहारेहिं पीणियसरीरो । तरुणो कलासु कुसलो, वियड्ढमित्तेहिं परियरिओ ॥१२॥
सुणमाणो संपीणियकन्नं किंनरकयं सरसगेयं । पिच्छंतो बहुविहहावभावरम्मं रमणिनट्टं ॥१३॥
कुसुममयनाहिघणसारचंदणामोयमोइयग्घाणो । कप्पूरपूरपरिगयपगिट्ठतंबोलसुरहिमुहो ॥१४॥
पट्टंसुयपच्छाइयमहल्लपल्लंकहंसतूलिगओ । पेसलपसन्नसंनिहियकामिणीविहियचडुकम्मो ॥१५॥
इय अणुकूले विसए, सेवंतो जं सुहं इमो लहइ । तं इक्कसिद्धसुक्खस्स, होइ नाणंतभागेवि ॥१६॥

तथा चार्षम्—

"जह सव्व कामगुणियं,पुरिसो भुत्तूण भोयणं कोइ । तण्हाछुहाविमुक्को, अच्छिज्ज जहा अमियतित्तो ॥१७॥

इय सव्वकालतित्ता, अउलं निव्वाणमुवगया सिद्धा । सासयमव्वाबाहं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता" ॥१८॥ इत्यादि ।

इदमुक्तं भवति–सम्यक् सिद्धान्तार्थपरिभावनपरायणानां तदुक्तानुष्ठानकरणप्रवृत्तानां प्रतिक्षणप्रवर्द्धमानोत्तरोत्तरशुभाध्यवसायनीरपूरप्रक्षालितसकलघनघातिकर्मकालुष्याणामविकलसकलकेवलबलावलोकितलोकालोकानां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टतो देशोनपूर्वकोटिं यावत् कृतवसुमतीतलपावित्र्याणां शैलेशीकरणवशक्षपितनिःशेषभवोपग्राहिकर्म्मप्रकृतिसंहतीनां भव्यसत्त्वानां संभाव्यत एव क्षेत्रकालसंहननादिसमग्रोदग्रसामग्रीवशात् पारम्पर्येण निर्वाणसुखप्राप्तिरिति ।

## इति श्रीधर्मरत्नवृत्तिः समाप्ता ।

विष्णोरिव यस्य विभोः, पदत्रयी व्यानशे जगन्निखिलम् । सद्धर्मरत्नजलधिः, स श्रीवीरो जिनो जयतात् ॥१॥

कुन्दोज्ज्वलकीर्त्तिभरैः, सुरभीकृतसकलविष्टपाभोगः । शतमखशतविनतपदः, श्रीगौतमगणधरः पातु ॥२॥

तदनुसुधर्मस्वामिजंबूप्रभवादयो मुनिवरिष्ठाः । श्रुतजलनिधिपारीणा, भूयांसः श्रेयसे सन्तु ॥३॥

क्रमशश्चैत्रावालकगच्छे कविराजराजिनभसीव । श्रीभुवनचन्द्रसूरिर्गुरुरुदियाय प्रवरतेजाः ॥४॥

तस्य विनेयः प्रशमैकमन्दिरं देवभद्रगणिपूज्यः । शुचिसमयकनकनिकषो बभूव भुवि विदितभूरिगुणः ॥५॥

तत्पादपद्मभृङ्गा निस्संगाश्चङ्गतुङ्गसंवेगाः । संजनितशुद्धबोधा जगति जगच्चन्द्रसूरिवराः ॥६॥

तेषामुभौ विनेयौ, श्रीमान् देवेन्द्रसूरिरित्याद्यः । श्रीविजयचन्द्रसूरिर्द्वितीयकोऽद्वैतकीर्त्तिभरः ॥७॥

स्वान्ययोरुपकाराय, श्रीमद्देवेन्द्रसूरिणा । धर्मरत्नस्य टीकेयं, सुखबोधा विनिर्ममे ॥८॥

प्रथमां प्रतिमप्रतिमं बिभ्राणो गुरुजनेषु भक्तिभरम् । विद्वान् विद्यानन्दः सानन्दमना लिलेखास्याः ॥ ९ ॥
श्रीहेमकलशवाचकपण्डितवरधर्मकीर्तिमुख्यबुधैः । स्वपरसमयैककुशलैस्तदैव संशोधिता चेयम् ॥ १० ॥
यद्गदितमल्पमतिना सिद्धान्तविरुद्धमिह किमपि शास्त्रे । विद्वद्भिस्तत्त्वज्ञैः प्रसादमाधाय तच्छोध्यम् ॥ ११ ॥
बह्वर्थमल्पशब्दं विवरणमिति रचयता मया कुशलम् । यदवापि धर्मरत्नप्राप्तिर्जगतोऽपि तेनास्तु ॥ १२ ॥

इति प्रशस्तिः ॥ श्रीरस्तु । शुभं भवतु ॥

संवत् १६५३ वर्षे आश्विनशुक्ले त्रयोदशीभृगुवासरे महीशानपुरे जीर्णपद्रे मुनिवच्छाख्येन लिखितमिति शुभं भवतु लेखकवाचकयोः ॥ छः ॥ छः ॥ ग्रन्थाग्रं सर्वसंख्यया १०१२० । श्रीः ॥ छः ॥ छः ॥

# टिप्पनम् ।

(प. १५२-२ श्लो. २३) करगरंति=जल्पन्ति ।

(प. १५३-१ श्लो. ३०) मुग्गडपविट्ठं=मुद्गरप्रविष्टं व्यन्तरविशेषग्रस्तमित्यर्थः ।

(प. १५३-१ श्लो. ३३) "गजमेतार्यमहामुनिस्कन्दकशिष्यादिसाधुचरितानि" । अत्र गजशब्देन गजसुकुमाल उच्यते, पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् ।

(प. १५३-१ श्लो. ३४) पसखमा-पसा अखमा, प्राकृतत्वात् स्वरस्य स्वरे परे लुकि पसखमा-एष क्रोध इत्यर्थः ।

(प. १५३-१ श्लो. ३८) पोयाइयन्तए=पोतायमानः प्रवहण इवेत्यर्थः ।

(प. १५३-२ श्लो. ४१) धराविय=धारयित्वा-ग्राहयित्वेर्थः ।

(प. १५४-१ श्लो. १) 'सुहवास'त्ति । सुखवासा शुभवासा च, मोदयुक्ता गन्धगुटिका इव मथुरापुर्यस्ति । मथुरापुरी 'सुखवासा' सुखः—सुखकारको वासो यस्या सा, मोदयुता-हर्षयुता च। गन्धगुटिकापक्षे शुभवासा-सुवासिता मोदयुता-गन्धयुता च ।

(प. १५४ श्लो. ४) जन्ते पउरे पउरे निएवि=यातः प्रचुरान् पौरान् दृष्ट्वेत्यर्थः ।

(प. १५७-१ श्लो. ५) ओलग्गिउं लग्गो=अवलगितुं-सेवितुं लग्नः । (श्लो. ९) 'अभयकुमारमल्लिणो=अभयकुमारमाश्रित इत्यर्थः। (श्लो. ११) ओहामियरिउसेणो'० ओहामिया-अभिभूता रिपुसेना येन सः (ब. व्री.)

(प. १५७-२ श्लो. १८) असिखेडयहत्थो=असिखेटकौ हस्ते यस्य सः (ब. व्री.) खेटकः-ढाल इति भाषायाम् ।



॥३१५॥

(प. १५८-१ श्लो. १) नेसत्थिआवणुव्व बहुसस्सा। वणिगापण इव बहुशस्या-बहुधान्या, बहुभिः प्रशस्या च।

(१६२-२ श्लो. ७०) सागारियसंदिट्ठ० सागारिकः—उपाश्रयस्वामी, संदिष्टः-स्वामिनियुक्तः, प्रत्येकमेको वाऽनेके वा भवन्ति, ततश्च चतुर्भङ्गी भवति। ते च शय्यातरा एको वा अनेके वा वर्जनीयाः। अनेकेषु शय्यातरेषु एकं स्थापयेत्।

(प. १६२-२ श्लो. ७४) लिङ्गस्थस्यापि-लिङ्गमात्रधारिणोऽपि शय्यातरो वर्ज्यः। स साधुः शय्यातरपिण्डं परिहरतु वा भुङ्क्तां वा। साधुगुणैर्युक्तस्य वा अयुक्तस्य शय्यातरो वर्ज्यः। तत्र रसापणो-मद्यापणो दृष्टान्तः। महाराष्ट्राख्ये देशे सर्वेष्वपि मद्यहट्टेषु मद्यं भवतु वा मा वा, तत्परिज्ञापनार्थं ध्वजो बध्यते, तं च दृष्ट्वा सर्वेऽपि परिहरन्ति, एवमसावपि साधुगुणैर्युक्तो वा भवतु अयुक्तो वा तथाप्यस्य रजोहरणध्वजो दृश्यते इति कृत्वा तस्य शय्यातरः परिह्रियते इति।

(प. १६३-१ श्लो. ८८) तुप्पियस्स=घृतादिस्नेहलिप्तस्य।

(प. १६८-२ श्लो. ६) तवणिनिमित्तं-अन्नादिभक्ष्यद्रव्यनिमित्तमित्यर्थः।

(प. १७०-१ श्लो. ३) मुणिचित्तं व सकरुणं० करुणा-दया नवमल्लिका च, तया सहितम्। सअज्जुणं-अर्जुनः—मध्यमपाण्डवः, वृक्षविशेषश्च तेन समन्वितम्। (श्लो. ४) उव्वूढखमाभारं० उद्व्यूढक्षमाभारं=क्षमा-अक्रोधः पृथिवी च, तस्या भारः क्षमाभारः, उद्व्यूढः-धृतः क्षमाभारो येन सः तम्। निव्व्यूढा दया येन सः तम्, निव्व्यूढं दकं-जलं येन तम्। प्ररूढः-संजातः गुरुवंशो यस्य, प्ररूढाः संजाता गुरवो वंशा यस्मिन् शैले तम्। (श्लो. ११) दोसपडिहत्थं-दोषपूर्णमित्यर्थः।

(प. १७०- श्लो. १५) दुःखरिंछोली=दुःखश्रेणिः।

(प. १७१-२ श्लो. १) सुपुरुषशरीरे इव सुकरे-सुष्ठु करः-राजग्राह्यो भागः हस्तश्च यस्मिन्, 'वरवच्छे' वराः वृक्षाः, वरं वक्षश्च यस्मिन्, एवं भूते श्रीपुरे समुद्र इव नदीनः-नदीनाम् इनः-स्वामी समुद्रदत्तः श्रेष्ठी न दीनः समृद्ध इत्यर्थः।

(प. १७२-२ श्लो. २७) तेणुत्तं० तेनोक्तं मम गुरुकं-महत् कुड्डं-आश्चर्यम्।

(प. १७५-२ श्लो. २) सुनओ० वसणं-व्यसनं-कष्टं तेन विरहितः नरवरः, वसनं-वस्त्रं तेन विरहितः शशिशेखरः-शिवः, जडासंग-वज्जिओ-जटासंगवर्जितः शिवो न भवति, किन्तु जडासंगः-मूर्खजनसंपर्कः, तेन विरहितो नरवरो भवति।

(प. १८०-२ श्लो. १) अच्छरसोहजुयाए० हरिसभया इव यमुनानद्या उपगूढा मथुरा पुर्यस्ति। हरिः-कपिः, इन्द्रश्च, कथंभूतया हरिसभया यमुनानद्या च? अच्छरसोहजुयाए=स्वच्छजलौघयुतया, अप्सरःशोभायुतया च। अणिमिसकलियाइ-अनिमिषाः-मत्स्याः देवाश्च, तैः कलिता, तथा।

(प. १९०-१ श्लो. २१) कत्थवि० कुत्रापि कोऽपि पउत्थो-प्रोषितो देशान्तरं गत इत्यर्थः।

(प. १९२-२ श्लो. १८) सव्वमजाया कहं मुत्ता=सर्वमर्यादा कथं मुक्ता?

(प. १९५-१ श्लो. ७३) जगजगडणपवणाइं। जगडणं-पोडनम्, जगत्पीडनप्रवणानि।

(प. १९५-२ पङ्क्तिः १३) राजा रोक्ष्यति. रुज्धातोः स्यति प्रत्यये रूपं भङ्क्ष्यतीत्यर्थः।

(प. १९६-२ श्लो. १) लंपागलोगपरिमुक्का-लुण्टाकलोकपरिमुक्ता।

(प. १९८-१ श्लो. ४८) चरियाउ=चरिका-परिव्राजिकेत्यर्थः। (श्लो. ५०) मुहपडियपिंपो=मुखपतिता पिंपा (पिप्पलफलं) यस्य सः।

(प. १९९-१ श्लो. १) पाउसकालंमि व० बहुशस्ये-बहुधान्ये बहुभिः प्रशस्ये च। (श्लो. १४) जलहत्थइ-क्षिपति।

(प. १९९-२ श्लो. १६) करहय० करभककण्ठः-उष्ट्रकण्ठः, तद्वत् कडारेण-पिङ्गलवर्णयुक्तेन। विसमविस० विषमविषप्रसरेण चिंचइए-मण्डितान् वृश्चिकान् मुञ्चति। (श्लो. १८) सहियउवसग्ग० सोढ उपसर्गपट्टः—उपसर्गप्रवाहो येन सः।

(प. २०१-१ श्लो. २१) तुम्हवि एसु च्चिय पहुत्ति-युष्माकमपि एष एव पन्थाः।



(प. २०२-१ श्लो. ४५) आलवणरमणपमुहंपि=संभाषणक्रीडादिकमपीत्यर्थः। (श्लो. ४६) जिणपालिओ० बेसो-द्वेष्यः।

॥३१६॥

(प. २०३-२ श्लो. १) जलहिजल० जलधिजलमेव स्नेहस्तेन पूर्णे, सुमेरुरेव दण्डो यस्य सः तस्मिन्, सुज्योतिःकान्तियुक्ते

जम्बुद्वीपे दीपे इव। ( श्लो. ८ ) उम्मुक० उन्मुक्ता पक्का-दृप्ता इक्का येन सः। ( श्लो. १० ) उप्पिच्छसत्थनाहं=उप्पिच्छो-त्रस्तः सार्थनाथः यस्मिन् तत्। (श्लो. ११) गलहत्थिओ-पराभूतः।

(प २०७-१ श्लो. १) संसारकत्तवारं=कत्तवारं-मिथ्याभूतमपारमार्थिकमित्यर्थः। ( श्लो. १) विद्दुमसिरिपरिकलियं-विशिष्टा द्रुमा विद्रुमाः प्रवाला वा तेषां श्रीस्तया परिकलितम्। बहुसमृद्धाः पोता डिम्भाः प्रवहणानि च तैरलंकृतम्।

(प. २०९ श्लो. ७६) जइ आगमेसिभद्दा० आगमिष्यद् भद्रं येषां ते आगमिष्यद्भद्राः-भविष्यत्कल्याणाः हरिकुलप्रभु-श्रेणिकाद्याः।

(प. २२२-२ श्लो. १)गयवज्जियंपि=गदवर्जितमपि-रोगवर्जितमपि सगयं-सगजं केनापि अहयंपि-अहतमपि सर्वदा सुहयं-सुखदं काञ्चनपुरमस्ति।

(प. २१९-२ श्लो. २) साय सयं गोसद्धं० सायं-दैवसिके उच्छ्वासशतम्, गोसे-प्रातःकाले अर्ध पञ्चाशदित्यर्थः।

(प. २२९-१ श्लो. ३१) सुंकवालेहिं-शुल्कपालैः। ( श्लो. ३२) उस्सुंकुति-उच्छुल्काः शुल्करहिताः, ( श्लो. ३४) लच्छिपडिहत्थं-लक्ष्मीपूर्णम्।

(प. २३३-२ श्लो. १) श्रीपरिकालिता० रामो-बलरामः, आरामः-उद्यानः, गदो-रोगः गदा-आयुधविशेषः।

(प. २३४-२ श्लो. ४०) जीवो नास्ति, समक्षादर्शनतः—प्रत्यक्षादर्शनात्, खरविषाणमिव इति हेतुसद्भावे साध्यसद्भावादन्वय-व्याप्तिः, यत्तु न-यन्न नास्ति पुनस्तत्तथा-न समक्षादर्शनम्, यथाभूतचतुष्टयमिति साध्याभावे हेत्वभावाद् व्यतिरेकव्याप्तिः।

(प. २३९-२ श्लो. ४१) रणसवडंमुह-रणाभिमुखेत्यर्थः।

(प. २४१-२ श्लो. ३०) सायरपल्लमाणमणहे-सागरोपमपल्योपमप्रमाणं अनघान् भोगान् भुक्त्वा।

(प. २४३-१ श्लो. ७९) दूरं पत्तो० चुज्जं-आश्चर्यम्।

(प. २४३-२ श्लो. ८५) हा कह जाणंतु० 'वसारसा' वशा-हस्तिनी, तस्या रसात्।

( प. २४४-२ श्लो. १ ) अत्थिर० नगरायमहीव सुकनका सुपथा सुप्रभा वा एवंभूता नगरा नाम नगरी।

( प. २४९-२ श्लो. १२ ) तस्स य० दसवलभत्ता-बुद्धभक्ताः। ( श्लो. १९ ) मा झरसु-मा स्मरेत्यर्थः।

( प. २५१ श्लो. ३ ) नाहियवाई-नास्तिकवादी।

( प. २५१-२ श्लो. ६६ ) अप्पाहिय-शिक्षयित्वेत्यर्थः।

( प. २५९-१ श्लो. ५९ ) आदन्नो-व्याकुलः।

( प. २७६-१ श्लो. ४ ) वुत्थो-उषितः।

( प. २७९-१ श्लो. ५ ) तइलोय० त्रिलोकलोकानां चमढणं-आक्रमणं, तेन विढत्तो-उपार्जितो जयो येन स मदनमल्लः, तस्य बलं तस्य दमनः।

( प. २८१-२ श्लो. १३ ) बलिमड्डाए-बलात्कारेण।



॥३१७॥

# शुद्धिपत्रकम्

| पत्रं पृष्ठं च | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|---|
| १५१—२ | १ | रूचिम् | रुचिम् |
| ,, | ,, | मित्यथः | मित्यर्थः |
| ,, | २ | पूवार्द्धनाह | पूर्वार्द्धमाह |
| ,, | १३ | चित्त | चित्ते |
| १५२ | १ | जोगस्स | जोग्गस्स |
| १५३—२ | १३ | ०त्तराद्धमाह | ०त्तरार्द्धमाह |
| १५४—२ | १० | गयर्कित | गयवित्तं |
| १५७—१ | ११ | विणय | विणयं |
| १५९—१ | ११ | रुव्या | रुच्या |
| १६१—१ | १२ | निवृत्ता | निर्वृत्ता |
| १६२—२ | ९ | वइज्ज | वइज्ज |
| ,, ,, | १० | रसायणो | रसापणो |
| १६५—२ | १ | कहति | कहंति |
| १६६—१ | ६ | गव्छति | गच्छति |
| १९९—२ | ६ | ०मिच्छतो | ०मिच्छत्तो |
| २००—२ | ९ | बारं | वारं |
| २०१—१ | १० | देविप | देवीए |
| २०५—२ | १० | सया | तया |
| २०९—२ | १२ | आगमे सिभद्दाह० | आगमेसिभद्दा ह० |
| २१३—२ | १२ | ०कोकीजी० | ०केकिजी० |
| २२१—२ | १२ | सटङ्कः | संटङ्कः |
| २२३—२ | ५ | ०विक्मगुणो | विक्कमगुणो |
| २३६—२ | ६ | कोऽपि | केऽपि |
| २४४—२ | ९ | तगरा | नगरा |
| २४६—२ | ६ | ०रागरचनम् | ०रागवचनम् |
| २४८—१ | ९ | स्थितिपरावर्तः | तिथिपरावर्तः |

| पत्रं पृष्ठं च | पङ्क्तिः | अशुद्धम् | शुद्धम् |
|---|---|---|---|
| २६३—२ | ९ | वित्तीर्णं | वितीर्णं |
| २६६—१ | ३ | शिवभद्र० | शिवचन्द्र० |
| २६९—२ | ४ | पडि धो | पडिबंधो |
| २७८—२ | ७ | ०यात्सहेत | योत्सहेत |
| २८८—१ | १ | गुणराढ्यानां | गुणैराढ्यानां |
| २८९—२ | ११ | खेदमति | खेदमेति |
| ,, ,, | १२ | क्षौभ० | क्षोभ० |
| २९०—१ | २ | बह्वीभियु० | बह्वीभिर्यु० |
| २९१—१ | १० | षट्र्त्रिशिका | षट्त्रिंशिका |
| ३००—२ | २ | पक्षोगुयै० | पक्षो यै० |
| ३०३—२ | १० | ०तारकामागः | ०तारकामार्गः |
| ३०४—२ | २ | रोध्या | रोध्याः |
| ३०६—२ | ३ | विनस्यति | विनश्यति |
| ३०७—२ | १२ | युधे | युधे (युधि) |
| ३१२—२ | ४ | मुणितत्त्वै० | मुणिततत्त्वै० |




॥३१८॥